मनोरजक भौतिकी

Я И ПЕРЕЛЬМАН

ЗАНИМАТЕЛЬНАЯ ФИЗИКА

КНИГА I

«Наука»

या॰ इ॰ पेरेलमान

मनोरंजक भौतिकी



मीर प्रकाशन मास्को



पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लिमिटेड



राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.

अनुवादक देवेंद्र प्र वर्मा

PHYSICS FOR ENTERTAINMENT

Ya Perelman

Book 1

На языке хинди

सोवियत मघ म मुद्रित

सस्करण प्रथम 1982

सस्करण द्वितीय 1989

ISBN 5-03-000432 7

ISBN 5 03 000433 5

सपादक की ओर से

या इ पेरेलमान लबी अवधि तक मनोरजक भौतिकी की सामग्रियो को सशोधित व सवधित करते रहे। उनके जीवनकाल मे इस पुस्तक का अतिम (तेरहवा) सस्करण सन 1936 मे प्रकाशित हुआ था। तब से भौतिकी मे असख्य खोजें हुइ, पर उनका प्रतिबिबन पुस्तक का आकार और स्वरूप बदले बिना सभव नही है। इसके अतिरिक्त, मनस्वी लेखक ने पुस्तक की अतवस्तु का चयन कुछ इस प्रकार किया है कि उसे आज भी अद्यातीत नही कहा जा सकता। यह कृति भौतिकी के मूलभूत सिद्धातो को सरल रूप में समझाने का प्रयास है। इन्ही कारणो से बाद के सस्करणो मे कोई मौलिक परिवतन नही लाया गया है।

लेखकीय (तेरहवें संस्करण के प्राक्कथन से)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने कोई नया ज्ञान देने का प्रयास नहीं किया है। पाठक जो कुछ जानता है, और अच्छी तरह जानता है — इसमें गहराई देने की कोशिश की गयी है, ताकि उसका भौतिकी का ज्ञान गहन, सजीव व गहरा हो और वह विभिन्न क्षेत्रों में उसका प्रयोग कर सके। इसके लिए अनेक सारगर्भित पहेलियों व प्रश्नों, मनोरंजक कहानियों व रोचक समस्याओं, विरोधाभासों आदि पर मनन करना चाहिये। दैनिक जीवन में दर्शनीय और विख्यात विज्ञान-कथाओं में वर्णित परिघटनाओं का भौतिकीय मूल्यांकन करना भी इष्ट है। आखिरी प्रकार की सामग्रियों का लेखक ने विशेष उपयोग किया है: जूल वेर्न, वेल्स, मार्क ट्वेन आदि के उपन्यासों व कहानियों से अनेक उद्धरण पुस्तक में उद्धृत हैं। उनमें वर्णित कल्पनातीत प्रयोग सिर्फ मनोरंजक ही नहीं हैं, सजीव उदाहरणों के रूप में उनकी शैक्षिक भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण हो सकती है।

संकलनकर्ता ने विषय को रोचकता व पुस्तक को मनोरंजक रूप देने का भरसक प्रयत्न किया है। उसने इस मनोवैज्ञानिक सत्य का अनुसरण किया है कि रुचि से मनोयोगिता बढ़ती है, कठिन विषय सुगम हो जाता है और इससे ज्ञान का आत्मसातन सचेत व दीर्घकालीन होता है। ऐसे संकलनों के लिये जो परंपरा है, उसके विपरीत 'मनोरंजक भौतिकी' में रोचक व प्रभावशाली भौतिकीय प्रयोगों के वर्णन को बहुत ही कम स्थान दिया गया है। इस पुस्तक का अभिप्राय प्रयोग की सामग्री प्रस्तुत करने वाले संकलनों से भिन्न है। 'मनोरंजक भौतिकी' का मुख्य लक्ष्य वैज्ञानिक कल्पना की कार्यशीलता को जाग्रत करना, पाठक में भौतिक विज्ञान की आत्मा के अनुरूप मनन करने की आदत डालना और उसकी स्मृति में भौतिकीय ज्ञान का जीवन की विभिन्न दैनिक परिघटनाओं के साथ साहचर्य

स्थापित करना है। पुस्तक की ससाधना मे सकलनकर्ता ने उसी अनुदेश का पालन किया है, जिसे व्ला० इ० लेनिन ने निम्न शब्दो मे लिखा था "लोकप्रिय लेखक सरलतम व सर्वज्ञात तथ्यो से आरम्भ करता है। सुगम तर्कों व सही चुने उदाहरणो के सहारे इन तथ्यो के मुख्य निष्कर्षों को दिखाते हुए वह मननशील पाठक को एक के बाद एक प्रश्नो की ओर ले जाता है और इस प्रकार उसे गभीर विचारों व गहन सिद्धातो का दर्शन कराता है। पाठक स्वय नहीं सोचता, सोचने की इच्छा नही रखता या उसे सोचना नही आता— यह सब मान कर लोकप्रिय लेखक नही चलता। इसके विपरीत, वह अविकसित पाठक म गभीर मानसिक काय की इच्छा देखता है और इस कठिन गभीर काय को करने मे सहायक होता है, वह हाथ पकड कर पाठक को चलना सिखाता है, ताकि आगे वह स्वय चल सके।"

कई पाठको ने इस पुस्तक की जन्म-कहानी मे रुचि दिखायी है, अत यहा हम उसके बारे मे चद सूचनायें दे रहे हैं।

"मनोरजक भौतिकी का 'जन्म' करीब पच्चीस साल पूर्व हुआ था और वह लेखक-कृत पुस्तक-परिवार का प्रथम सदस्य था (अब इस परिवार मे दसियो सदस्य हैं)।

पाठको के पत्र गवाह हैं कि "मनोरजक भौतिकी' सोवियत सघ के सुदूर कोनो तक फैलने मे सफल हो गयी है।

पुस्तक का इतना बडा प्रचार भौतिकी के ज्ञान मे लोगो की सजीव रुचि को दर्शाता है और साथ ही सामग्रिया की कोटि के लिये लेखक पर गभीर जिम्मेवारी डालता है। "मनोरजक भौतिकी" के हर नये सस्करण मे असख्य छोटे-बडे परिवतन इसी दायित्व की चेतना के परिणाम हैं। यू कहा जा सकता है कि पुस्तक का लेखन पूरे 25 वर्ष चलता रहा। इस अतिम सस्करण मे प्रथम सस्करण के मूलपाठ से सिर्फ आधा रह गया है। चित्र सारे के सारे नये हैं।

कुछ पाठको ने लेखक से अनुरोध किया है कि पुस्तक की ससाधना न हो, ताकि "चद नये पृष्ठो के लिये हर नया सस्करण न खरीदना पडे"। पर यह कारण शायद ही लेखक को अपनी कृति और अच्छा बनाने के दायित्व से मुक्त कर सके। मनोरजक भौतिकी" का रूप भले ही ललित हो, वह ललित साहित्य नही वज्ञानिक साहित्य है। इसका विषय—भौतिकी—

निरंतर नूतन सामग्रियों से परिपूरित होता रहता है और पुस्तक में इन सामग्रियों का समावेश समय-समय पर होते रहना चाहिये।

दूसरी तरफ से यह सुनना पड़ता है कि "मनोरंजक भौतिकी" में ऐसे विषयों को स्थान नहीं दिया जा रहा है, जैसे रेडियो-तकनीक की नवीनतम उपलब्धियां, परमाण्वीय नाभिक का विघटन, आधुनिक भौतिकी के सिद्धांत, आदि। इस तरह के ताने नासमझी के परिणाम हैं। "मनोरंजक भौतिकी" का अपना निश्चित लक्ष्य है और ऐसे विषयों पर प्रकाश डालना अन्य पुस्तकों का काम है।

"मनोरंजक भौतिकी" के साथ (इसके दूसरे खंड को छोड़कर) लेखक की कुछ अन्य कृतियां भी संबद्ध हैं। इनमें से एक का नाम है "पग-पग पर भौतिक विज्ञान"। यह कुछ कम परिपक्व पाठक के लिये है, जिसने अभी तक सिलसिलेवार ढंग से भौतिकी का अध्ययन शुरू नहीं किया है। इसके विपरीत दो पुस्तकें उनके लिये हैं जो स्कूल में भौतिकी का अध्ययन समाप्त कर चुके हैं। ये हैं "मनोरंजक यांत्रिकी" और "क्या आप भौतिकी जानते हैं?"। अंतिम पुस्तक को 'मनोरंजक भौतिकी' पुस्तक-माला का अंत मान सकते हैं।

1936 या. पेरेलमान

अध्याय 1

वेग गतियो का योग

हमारी गति

प्रतियोगिता में एक अच्छा दौडाक 1 5 km की दूरी लगभग 3 min 50 s मे तय करता है (1958 का विश्व कीतिमान 3 min 36 8 s है)। इसके साथ पदल-यात्री की साधारण भिप्रता (1 5 m/s) की तुलना करने के लिए यदि एक छोटा-सा कलन करे, तो ज्ञात होगा कि वह एक सेकेण्ड मे 7 m दौडता है। वैसे इन गतियो की तुलना पूण नहीं कही जा सकती पदल-यात्री एक घटे म 5 km की दर से घटो चलता रह सकता है, पर प्रतियोगिता मे भाग लेन वाला दौडाक अपना अधिकतम वेग एक छोटे कालातर मे ही कायम रख सकता है। पदल सेना कीतिमान खिलाडी से तिगुनी धीमी – एक सेकेड म 2 m या लगभग 7 km प्रति घटे – चलती है। सेना अपनी क्षिप्रता मे बडे उतार चढाव ला सकती है, पर गौड प्रतियोगिता मे भाग लेने वाले ऐसा नहीं कर सकते।

धीमी चाल के लिए मुहावरो की तरह प्रयुक्त होने वाले घोघे और कछुवे जसे जतुओ की गति के साथ आदमी की साधारण चाल की तुलना मनोरजक हो सकती है। "घोघे की चाल" मुहावरे से जो घोघे को ख्याति प्राप्त हुई है, शत प्रतिशत यायसगत है। वह एक सेकेड मे 1 5 mm या एक घटे मे 5 4 m रेगता है। यह मनुष्य की चाल से ठीक एक हजार गुना कम है। दूसरा क्लासिकल सुस्त जीव कछुवा घोघे से थोडा ही तेज चलता है उसकी साधारण गति है 70 m प्रति घटे।

घोघे और कछुवे की तुलना में आदमी काफी फुर्तीला नजर आता है पर यदि उसकी तुलना परिवेश की अन्य प्राकृतिक गतियो से की जाये, तो वह बिल्कुल दूसरे प्रकाश मे नजर आएगा। यह सच है कि वह अधिकतर मैदानी नदियो की धारा को दौड मे हरा सकता है और मद समीर से कुछ ही पीछे रहता है, पर एक सेकेड में 5 m उडने वाली मक्खी के साथ

आदमी सिर्फ स्कीइंग पर ही प्रतियोगिता कर सकता है। खरहे या शिकारी कुत्ते को आदमी सरपट दौड़ते घोड़े पर भी नहीं हरा सकता। गरुड़ के साथ आदमी सिर्फ हवाई जहाज पर ही प्रतियोगिता कर सकता है।

आदमी द्वारा आविष्कृत मशीन उस विश्व के भिन्नतम जीव में परिणत कर रही हैं।



चित्र 1. मोटर-कार जील 111

कुछ ही समय पहले सोवियत संघ में जलगत डैना वाला यात्री स्टीमर बनाया गया है, जो अपना वेग 60 70 km/h तक बढ़ा सकता है। जमीन पर आदमी पानी की अपेक्षा अधिक तेज चल सकता है। सोवियत संघ में रेलवे के कुछ भागों में गाड़ी का वेग 100 km/h तक पहुँच जाता है। हल्की सी नयी ऑटो-कार जील 111 (चित्र 1) अपना वेग 170 km/h तक बढ़ा सकती है। सात लोगों के बैठने लायक कार 'चाइका" का वेग 160 km/h तक पहुँचता है।

इन गतियों को आधुनिक हवाई जहाज काफी पीछे छोड़ चुके हैं। सोवियत संघ के कई यात्री हवाई मार्गों पर बड़े बड़े मल्टी सीटर जहाज तु-134 और तु-154 (चित्र 2) उड़ते हैं। उनकी उड़ान का औसत वेग 800 km/h के लगभग है। हाल तक हवाई जहाज बनाने वालों के सामने "ध्वनि बाधा पार कराने की समस्या थी वे विमानों को ध्वनि के वेग (330 m/s या 1200 km/h) से अधिक तेज उड़ाना चाहते थे। यह अब संभव हो चुका है। नन्हे, पर शक्तिशाली रिएक्टिव मोटरों वाले विमानों का वेग 2000 km/h के निकट पहुँच सकता है।

मानव निर्मित उपकरण और भी अधिक वेग उपलब्ध कर सकते हैं। वातावरण की घनी परतों की सीमा के निकट उड़ने वाले पृथ्वी के कृत्रिम स्पूतनिक (सहयात्री, रूसी से) या सटेलाइट (अंगरक्षक, रोमन से) लगभग 8 km/s वेग से गतिमान हैं। सौर मंडल के अन्य ग्रहों की ओर



चित्र 2 यात्री प्रतिवारी विमान तु 144

उड़ने वाले अंतरिक्षी उपकरणों का आरम्भिक वेग द्वितीय अंतरिक्षी वेग (धरातल के समीप 11 2 km के लगभग) से अधिक होता है।

पाठक वेगों की निम्न तालिका के साथ परिचय कर सकता है

घोंघा	1 5 mm/s	5 4 m/h
कछुवा	20 »	70 »
मछली	1 m/s	3 6 km/h
पदल यात्री	1 4 »	5 »
घुड़सवार (दुलकी चाल)	1 4 »	6 »
" (सरपट चाल)	3 5 »	12 6 »
मक्खी	5 »	18 »
स्की करने वाला	5 »	18 »
घुड़सवार (छलांगी चाल)	8 5 »	30 »
जलगत डनों वाला स्टीमर	16 »	58 »
खरहा	18 »	65 »
गरुड़	24 »	86 »
शिकारी कुत्ता	25 »	90 »
रेलगाड़ी	28 »	100 »
कार जील 111	50 »	170 »
कार रेस की मोटरगाड़ियां (कीर्तिमान)	174 »	633 »
तु 104	220 »	800 »
वायु में ध्वनि	330 »	1200 »
नन्हा रिएक्टिव विमान	550 »	2000 »
पृथ्वी, अपने कक्ष पर	30 000 »	108 000 »

क्या व्लादीवस्तोक से 8 बजे सुबह उड़ कर उसी दिन 8 बजे सुबह मास्को पहुँचा जा सकता है? प्रश्न बिल्कुल अर्थहीन नहीं है। यह सचमुच संभव है। इस उत्तर को समझने के लिए सिर्फ यह स्मरण करना है कि मास्को व व्लादीवस्तोक के समयों में 9 घंटे का अंतर है। यदि विमान इस कालांतर में व्लादीवस्तोक से मास्को की दूरी तय कर सकता है, तो वह मास्को उसी समय पहुंचेगा, जिस समय व्लादीवस्तोक से उड़ा था।

व्लादीवस्तोक – मास्को की दूरी लगभग 9 000 km है। अतः जहाज का वेग 9000 : 9 = 1000 km/h होना चाहिए। आधुनिक स्थितियों में ऐसा वेग बिल्कुल संभव है।

ध्रुववर्ती अक्षांशों पर सूरज (या और सही कहें, पृथ्वी) को दौड़ में पकड़ने के लिये बहुत कम वेग की आवश्यकता होगी। 77° अक्षांश (नोवाया ज़िमल्या नवोर्वी) पर 450 km/h वेग से गतिमान जहाज इतने कालांतर में उतना दूर उड़ सकता है जितना उसी कालांतर में धरातल का कोई बिंदु पृथ्वी के घूर्णन के कारण अक्ष के चारों ओर घूमता है। ऐसे विमान के यात्री को सूरज थमा हुआ दिखेगा: वह आकाश में अचल लटका रहेगा और अस्त होने की दिशा में नहीं बढ़ेगा (संदेह नहीं कि इसके लिए विमान की उपयुक्त दिशा होनी चाहिए)।

पृथ्वी की परिक्रमा में चंद्रमा को हराना और भी सरल है। चाँद पृथ्वी की घूर्णन गति से 29 गुना धीमे पृथ्वी की परिक्रमा करता है। (यहाँ रैखिक गतियों की नहीं, बल्कि कोणिक गतियों की तुलना की गयी है)। अतः घंटे में 25–30 km चलने वाला साधारण स्टीमर मध्यवर्ती अक्षांशों पर ही चाँद को दौड़ में हरा दे सकता है।

"गँवार गये परदेस" नामक निबंध में मार्क ट्वेन ऐसी ही एक घटना की याद दिलाते हैं। न्युयोर्क से आजोर द्वीपों तक जाते वक्त अटलांटिक महासागर पर 'सुंदर गर्म मौसम था। रातें दिन से भी बेहतर थीं। हमें एक विचित्र घटना देखने को मिली: चाँद हर शाम एक ही समय आकाश के एक ही बिंदु पर टंग जाया करता था। चाँद के इस मौलिक आचरण का कारण पहले तो हमारे लिए रहस्य बना रहा, पर बाद में हम समझ गये कि बात क्या है: हम देशांतर रेखा पर 20 मिनट प्रति घंटे की दर

से पूर्व की ओर चल रहे थे, अर्थात् हम ऐसी चाल से चल रहे थे कि याद से पीछे न रहे!"

सेकेंड का सहस्रांश

हम समय को अपने मानवीय मानदंड से नापने के आदी हैं, इसीलिये सेकेंड का सहस्रांश हमारे लिये शून्य जैसा ही है। इतने लघु अंतराल हमारे व्यवहार में कुछ ही समय से प्रयुक्त हो रहे हैं। जब लोग सूरज की स्थिति या छाया की लंबाई द्वारा समय निर्धारित करते थे, उस जमाने में मिनट की परिशुद्धता भी अकल्पनीय थी (चित्र 3), लोग मिनट को कोई इतना बड़ा परिमाण मानते ही नहीं थे कि उसे नापने की आवश्यकता पड़ती। प्राचीन मनुष्य इतना शांत (बिना किसी जल्दबाजी के) जीवन जीता था कि उसकी सूर्य-, जल-, वायु-घड़ियों में मिनट के अंश चिह्नित भी नहीं थे (चित्र 4,5)। सिर्फ XVIII-वीं शती के आरंभ से डायल पर मिनट की सुई को स्थान मिला। सेकंड की सुई XIX-वीं शती के आरंभ में प्रकट हुई।

सेकेंड के सहस्रांश में क्या कुछ घट सकता है? बहुत कुछ! यह सच है कि ट्रेन इस कालांतर में सिर्फ तीन सेंटीमीटर आगे बढ़ेगी, पर इसी



चित्र 3 आकाश में सूर्य की स्थिति (बायें) और छाया की लंबाई (दायें) के आधार पर समय-निर्धारण।

क्या व्लादीवस्तोक से 8 बजे सुबह उड़ कर उसी दिन 8 बजे सुबह मास्को पहुँचा जा सकता है? प्रश्न बिल्कुल अर्थहीन नहीं है। यह सचमुच संभव है। इस उत्तर को समझने के लिए सिर्फ यह स्मरण करना है कि मास्को व व्लादीवस्तोक के समयों में 9 घंटे का अंतर है। यदि विमान इस कालांतर में व्लादीवस्तोक से मास्को की दूरी तय कर सकता है, तो वह मास्को उसी समय पहुँचेगा, जिस समय व्लादीवस्तोक से उड़ा था।

व्लादीवस्तोक – मास्को की दूरी लगभग 9 000 km है। अतः जहाज का वेग 9000 : 9 = 1000 km/h होना चाहिए। आधुनिक स्थितियों में ऐसा वेग बिल्कुल संभव है।

ध्रुववर्ती अक्षांशों पर सूरज (या और सही कहें, पृथ्वी) को दौड़ में पकड़ने के लिये बहुत कम वेग की आवश्यकता होगी। 77° अक्षांश (नोवाया जिमल्या, नवोर्वी) पर 450 km/h वेग से गतिमान जहाज दिये कालांतर में उतना दूर उड़ सकता है, जितना उसी कालांतर में धरातल का कोई बिंदु पृथ्वी के घूर्णन के कारण अक्ष के चारों ओर घूमता है। ऐसे विमान के यात्री को सूरज थमा हुआ दिखेगा, वह आकाश में अचल लटका रहेगा और अस्त होने की दिशा में नहीं बढ़ेगा (संदेह नहीं कि इसके लिए विमान की उपयुक्त दिशा होनी चाहिए)।

पृथ्वी की परिक्रमा में चंद्रमा को हराना और भी सरल है। चाँद पृथ्वी की घूर्णन गति से 29 गुना धीमे पृथ्वी की परिक्रमा करता है। (यहां रैखिक गतियों की नहीं, बल्कि कोणिक गतियों की तुलना की गयी है)। अतः घंटे में 25–30 km चलने वाला साधारण स्टीमर मध्यवर्ती अक्षांशों पर ही 'चाँद को दौड़ में हरा दे सकता है'।

'गँवार गये परदेस' नामक निबंधों में मार्क ट्वेन ऐसी ही एक घटना की याद दिलाते हैं। न्यूयार्क से आजोर द्वीपों तक जाते वक्त अटलांटिक महासागर पर 'सुंदर गर्म मौसम था। रातें दिन से भी बेहतर थीं। हमें एक विचित्र घटना देखने को मिली: चांद हर शाम एक ही समय आकाश के एक ही बिंदु पर टंग जाया करता था। चाँद के इस मौलिक आचरण का कारण पहले तो हमारे लिए रहस्य बना रहा, पर बाद में हम समझ गये कि बात क्या है: हम देशांतर रेखा पर 20 मिनट प्रति घंटे की दर

से पूव की ओर चल रहे थे, अर्थात हम ऐसी चाल से चल रहे थे कि चाद से पीछे न रह।"

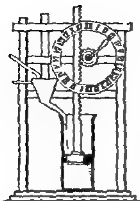
सेकेड का सहस्त्राश

हम समय को अपने मानवीय मानदड से नापने के आदी हैं, इसीलिये सेकड का सहस्त्राश हमारे लिये शून्य जसा ही है। इतने लघु अतराल हमारे व्यवहार मे कुछ ही समय से प्रयुक्त हो रहे हैं। जब लोग सूरज की स्थिति या छाया की लबाई द्वारा समय निर्धारित करते थे, उस जमाने मे मिनट की परिशुद्धता भी अकल्पनीय थी (चित्र 3), लोग मिनट को कोई इतना बडा परिमाण मानते ही नही थे कि उसे नापने की आवश्यकता पडती। प्राचीन मनुष्य इतना शात (बिना किसी जल्दबाजी के) जीवन जीता था कि उसकी सूय-, जल-, वायु-घडिया मे मिनट के अश चिह्नित भी नही थे (चित्र 4,5)। सिफ XVIII-वी शती के प्रारभ से डायल पर मिनट की सुई को स्थान मिला। सेकेड की सुई XIX-वी शती के प्रारभ मे प्रकट हुई।

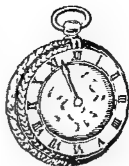
सेकेड के सहस्त्राश मे क्या कुछ घट सकता है? बहुत कुछ! यह सच है कि ट्रेन इस कालातर मे सिर्फ तीन सेटीमीटर आगे बढेगी, पर इसी



चित्र 3 आकाश मे सूय की स्थिति (बायें) और छाया की लबाई (दायें) के आधार पर समय-निर्धारण।



चित्र 4 प्राचीन काल में प्रयुक्त जल घड़ी।



चित्र 5 पुरानी जेबी घड़ी।

कालांतर में ध्वनि 33 cm, हवाई जहाज लगभग आधा मीटर, सूर्य के परिभ्रमण में पृथ्वी 30 m और प्रकाश 300 km चल चुकेगा।

हमारे परिवेश में जीने वाले नन्हे जीवों में यदि सोचने की क्षमता होती, तो वे सेकेंड के सहस्रांश को शायद इतना नगण्य नहीं मानते। उदाहरणार्थ, कीड़े पतंगे इस परिमाण (राशि) को पूर्णतया अनुभव कर सकते हैं, उनके लिये सेकंड का सहस्रांश पूर्णतया अनुभवगत है। मच्छर एक सेकंड की अवधि में 5–6 सौ बार पंख फड़फड़ाता है, अर्थात् सेकेंड के हजारवें अंश में वह उन्हें उठाने व गिराने में सफल हो जाता है।

आदमी अपने अंगों को इतनी तेजी से गतिमान नहीं कर सकता जितना कीड़े पतंगे। हममें सबसे क्षिप्र गति है पलक झपकाना। 'पल', 'पल भर में', 'पलक मारते' आदि व्यंजनों का आदि स्रोत हमारा पलक झपकाना ही है। यह इतना जल्द होता है कि पलक मुंदने से हम अधकार भी नोट नहीं करते। पर बहुत ही कम लोग जानते होंगे कि कल्पनातीत क्षिप्रता का समानार्थक 'पलक झपकाना' दरअसल काफी धीमी प्रक्रिया साबित होगी, यदि उसे सेकंड के सहस्रांश में नापा जाय। परिशुद्ध मापों से ज्ञात होता है कि एक पूरा 'पलक" औसतन 2/5 सेकंड अर्थात् 400 सेकंड-सहस्रांश के बराबर होता है। पलक झपकाना निम्न चरणों में संपन्न होता है पलक का गिरना (75–90 सेकंड सहस्रांश), गिरे पलक

की अचल अवस्था (130–170 सहस्त्राश) और उनका उठना (लगभग 170 सहस्त्राश)। स्पष्ट है कि अपने शाब्दिक अर्थ मे "पलक" समय की पर्याप्त बडी राशि है, जिसके दरम्यान पलक थोडा विश्राम भी करने मे सफल हो जाती है। यदि सेकेंड का सहस्त्राश हमारे लिये अनुभवगत होता, तो 'एक पल' मे हम पलको की दो धीमी तैरती गतियां को देखते, जो विश्राम के अंतराल से विभक्त होती।

ऐसी स्नायु प्रणाली के कारण दुनिया हमे इतनी बदली हुई दिखती कि उसे हम पहचान भी नही पाते। हमारी आंखो के समक्ष वैसे ही आश्चर्यजनक चित्र उभरते, जिनका वर्णन अंग्रेज लेखक वेल्स ने "नवीनतम त्वरित्र" नामक कहानी मे किया है। कहानी के पात्र एक काल्पनिक मिक्सचर पी लेते हैं, जो उनकी स्नायु प्रणाली को इस प्रकार प्रभावित करता है कि त्वरित घटनाएं उन्हे धीमी दृष्टिगोचर होती हैं।

ये रहे इस कहानी से कुछ उदाहरण

"–आपने कभी देखा है कि पर्दा खिडकी से इस प्रकार चिपका हो?

मैंने पर्दे पर निगाह डाली और ध्यान दिया कि वह अपनी जगह पर थम-सा गया है, उसका कोना हवा के झोंके से मुडा है और फहरने की बजाय वैसे ही रुक गया है।

–कभी नही देखा,–मैंने कहा।–कितनी विचित्र बात है!

–और यह क्या है?–उसने पूछा और गिलास पर से उंगलियो की जकड ढीली कर दी।

–मेरी उम्मीद थी कि गिलास फर्श पर चूर चूर हो जाएगा, पर वह हिला भी नही वह हवा मे स्थिर लटका था।

–आप अवश्य ही जानते होंगे,–गिबेन ने बताया,–कि स्वतंत्र गिरती हुई वस्तु प्रथम सेकंड मे 5m नीचे आती है। और हमारा गिलास अभी ये ही 5m तय कर रहा है। लेकिन आप समझ रहे हैं कि अभी सेकेंड का सौंवा अंश भी नही बीता है।[1] इससे आप मेरे त्वरित्र की शक्ति का अंदाजा लगा सकते हैं।

[1] ध्यान मे रखना चाहिये कि अपने स्वतंत्र अभिपातन के प्रथम सेकेंड के प्रथम शतांश मे पिंड 5 m का शतांश नही, बल्कि 10 000-वां अंश तय करता है (सूत्र $S = gt^2/2$ के अनुसार) I यह आधा मिलिमीटर होगा। प्रथम सेकेंड-सहस्त्राश मे पिंड सिर्फ 1/200 mm तय करता है।

गिलास धीरे धीरे नीचे आ रहा था। खिड़की व गिलास के बीच हाथ भर का फासला उसके ऊपर, नीचे

मैंने खिड़की से झाँक कर देखा। एक साइकिल सवार एक ही स्थान पर जमा हुआ था। उसके पीछे धूल की गुबार लटकी थी। इस क्षण वह एक टमटम का पीछा कर रहा था, जो हमारे सिर घटने स्थान से एक इंच भी नहीं बढ़ रहा था।

हमारा ध्यान एक बग्घी की ओर आकर्षित हुआ, जो मुश्किल से बढ़ रहा था। पहिए का ऊपरी हिस्सा, घोड़े के पैर, चाबुक का छोर, गाड़ीवान का निचला जबड़ा (उसने अभी अभी कुछ चबाना शुरू किया था)—यह सब धीमे ही सही, पर चल रहे थे, बाकी सब कुछ इस पुरानी गाड़ी में बेजान था। लोग उसमें मूर्तियों की तरह बैठे थे।

एक आदमी के हाथ-पर ठीक उस क्षण थम गये थे, जब वह तेज हवा में अखबार तह करने के लिये असमानवीय प्रयत्न कर रहा था। पर हमारे लिये इस हवा का कोई अस्तित्व नहीं था।

मेरे अंगों में इस 'स्वरित्र' के असर के बाद से जो कुछ भी मैंने कहा है, सोचा है या किया है, अन्य लोगों की नजर में पूरे ब्रह्मांड की दृष्टि में मात्र एक पल था।'

सम्भवतः पाठक के लिये यह जानना दिलचस्प हो कि आधुनिक विज्ञान के साधनों से समय का कितना छोटा अन्तराल मापा जा सकता है। इस शती के आरम्भ में सेकंड का 10 000-वाँ अंश मापा जा सकता था। आज की प्रयोगशालाओं में भौतिकविद सेकेंड का 100 000 000 000 वाँ अंश माप सकते हैं। यह अंतराल पूरे सेकंड से उतना ही छोटा है, जितना 3 000 वर्ष की अवधि से एक सकंड।

काल विस्तारक

अपना 'नवीनतम स्वरित्र' लिखते वक्त वेल्स ने शायद ही सोचा होगा कि इस तरह की चीज सचमुच कभी न कभी बनेगी। पर इस दिन को उसके जीवन-काल में ही आना था। वह खुद अपनी आँखों से उन चित्रों

को देख सका (पर्दे पर ही सही!), जिन्हे कभी उसकी कल्पनाशक्ति ने जन्म दिया था। तथाकथित "काल विशालक" हमे पर्दे पर उन घटनाम्रो को धीमी गति से दिखाता है, जो अक्सर बहुत तेजी के साथ घटती हैं।

"काल-विशालक" सिनेमा का कैमरा है, जो साधारण मूवी-कैमरो की तरह एक सेकेंड मे 24 ही नही, इससे कई गुनी अधिक तस्वीरे लेता है। इस कमरे से तस्वीर ली गयी परिघटना को यदि एक सेकेंड मे 24 तस्वीरो की साधारण गति से पर्दे पर दिखाया जाये, तो दर्शक को परिघटना लमडी हुई लगती है, क्योकि पर्दे पर वह दुगुनी तिगुनी धीमी गति से घटती है। पाठको ने अवश्य ही ऐसी अस्वाभाविक छलांगें व धीमी की गयी अन्य घटनायें पर्दे पर देखी होगी। इसी प्रकार के और भी जटिल कमरो से घटनायें अधिक मद की जा सकती हैं, जो लगभग वैसी ही होगी, जिनका वर्णन वेल्स ने किया था।

सूर्य-परिक्रमा की गति कब तेज—रात में या दिन मे ?

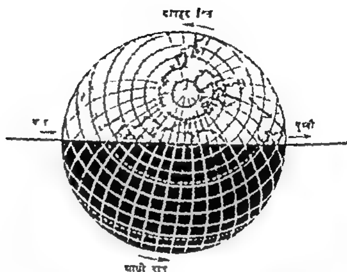
पेरिस के अखबारो मे एक विज्ञापन छपा, जिसमे 25 सेंटिम मे बिना किसी थकावट के यात्रा की सस्ती विधि बताने का वादा किया गया था। कई लोगो ने विश्वास कर के उक्त रकम भेज दी। जवाब मे उन्हे पत्र मिला, जिसका आशय इस प्रकार था

"भाइयो, आराम से बिस्तर मे बैठे रहिये। याद रखें कि हमारी पृथ्वी घूमती है। पेरिस मे (49-वे अक्षाश पर) आप हर दिन 25 000 km से अधिक दूरी तय करते हैं। और यदि आप सुरम्य दृश्यो को पसद करते हैं, तो खिडकी के पर्दे हटा दें और तारक मंडित आकाश की वाह-वाही किया करे।

बाद में इस धधे के अपराधी पर जब ठगी का मुकदमा चलाया गया, उसने फैसला सुन कर जुर्माना अदा कर दिया और, जैसा कहते हैं नाटकीय मुद्रा में खडा हो कर गौरव से गैलीली के प्रसिद्ध शब्द दुहराने लगा

—जो भी कहे वह घूमती है!

अभियुक्त एक तरह से सही भी था, क्योकि हर पृथ्वीवासी पृथ्वी की धुरी के चारो ओर घूम कर ही "यात्रा" नही करता। वह कही और अधिक वेग से पृथ्वी के साथ सूर्य की परिक्रमा भी करता है। अपने सभी



चित्र 6 पृथ्वी के रात्रि वाले अर्द्ध में लोग सूर्य की परिक्रमा अधिक तेजी से करते हैं अपेक्षाकृत दिन वाले अर्द्ध में।

वासियों के साथ हमारा ग्रह अपने अक्ष के गिर्द घूर्णन ही नहीं करता, वह हर सेकंड 30km की दूरी व्योम में भी तय करता है।

इस संदर्भ में एक रोचक प्रश्न उठाया जा सकता है कब हम अधिक तेजी से सूरज की परिक्रमा करते हैं—दिन में या रात में?

प्रश्न चकराने वाला है पृथ्वी पर तो हमेशा ही एक तरफ दिन रहता है और एक तरफ रात। फिर इस प्रश्न का अर्थ क्या है? शायद कुछ भी नहीं।

पर ऐसी बात नहीं है। यह तो नहीं पूछा जा रहा है कि कब सारी पृथ्वी तेज या धीमी चलती है। प्रश्न है कि कब हम, पृथ्वी पर जीने वाले लोग, तेजी से तारों के बीच भ्रमण करते हैं। और यह प्रश्न निरर्थक बिल्कुल नहीं कहा जा सकता। सौर-मंडल में हमारी गति द्विविध है हम सूर्य की परिक्रमा करते हैं और साथ ही पृथ्वी की धुरी का भी चक्कर लगाते हैं। दोनों गतियों के योग का परिणाम हमेशा एक जैसा नहीं होता। यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम पृथ्वी के किस अर्ध में हैं—रात वाले में या दिन वाले में। चित्र 6 पर एक नजर डालिये और आप समझ

जायेंगे कि आधी रात को पृथ्वी की घूर्णन गति उसकी अग्रगामी गति के साथ जुड़ जाती है और दोपहर दिन में इसके विपरीत उसमें घट जाती है। अर्थात आधी रात को हम सौरमंडल में दोपहर की अपेक्षा अधिक तेजी से गतिमान रहते हैं।

चूँकि विष्वत (विषुवत रेखा) के बिंदु एक सेकेंड में लगभग आधा किलोमीटर भागते हैं, विष्वक कटि पर अधरात्रि और दोपहर की गतियों में पूरे एक किलोमीटर प्रति सेकेंड का अंतर है। ज्यामिति से परिचित लोग सरलतापूर्वक कलन कर सकते हैं कि लेनिनग्राद के लिये (जो 60-वें अक्षांश पर है) यह अंतर दुगुना कम है आधी रात को लेनिनग्राद के निवासी सौर-मंडल में प्रति सेकेंड आधा किलोमीटर अधिक तय करते हैं, बनिस्बत कि दिन में।

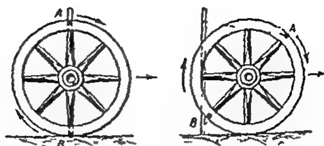
10581
29.3.90

चक्के का चमत्कार

घोड़ागाड़ी के चक्के की किनारी (या साइकिल के टायर) पर रंगीन कागज का एक टुकड़ा चिपका दें। जब गाड़ी (या साइकिल) चलने लगे, कागज के टुकड़े को ध्यान से देखते रहें। आप एक विचित्र बात गौर करेंगे कागज जबतक चक्के के निचले भाग में है, वह आराम से स्पष्ट दिखता रहता है ऊपरी भाग में वह इतनी तेजी से घूमता है कि आप मुश्किल से उसकी झलक ले पाते हैं।

ऐसा लगता है मानो चक्के के निचले भाग की अपेक्षा ऊपरी भाग अधिक तेजी से गतिमान है। किसी चलती बग्गी के चक्के में ऊपर और नीचे की तीलियों को देखा जाये, तो यही बात नजर आयेगी। ऊपरी तीलियाँ एक-दूसरे से स्पष्टतः अलग नहीं दिखती हैं, जबकि नीचे की तीलियाँ स्पष्ट रूप से अलग अलग दिखती हैं। इससे भी मानो यही निष्कर्ष निकलता है कि चक्के का ऊपरी भाग निचले की अपेक्षा अधिक तेजी से घूमता है।

इस विचित्र रहस्य की कुंजी क्या है? यही कि लुढ़कते चक्के का ऊपरी भाग निचले की अपेक्षा सचमुच में अधिक तेज घूमता है। पहली दृष्टि में तथ्य असंभव सा लगता है, पर एक सरल तर्क इसमें विश्वास दिलाने के लिये काफी रहेगा। लुढ़कते चक्के का हर बिंदु दो प्रकार से गतिमान होता है वह अक्ष की परिक्रमा करता है और अक्ष के साथ-साथ आगे



चित्र 7 कैसे देखा जाये कि चक्के के निचले भाग की अपेक्षा ऊपरी भाग अधिक तेज घूमता है। अचल खडी छडी से बिंदुओ A व B की दूरियों की तुलना करें (दायें आरेख में)।

भी बढता है। पृथ्वी के गोले की तरह ही यहा भी दो गतियो का सयोजन होता है जिसका परिणाम चक्के के ऊपरी और निचले भागो के लिये पृथक होता है। ऊपर चक्के की घूर्णन गति उसकी अग्रगामी गति के साथ जुडती है क्योकि दोनो गतियो की दिशायें समान हैं। नीचे घूर्णन गति की दिशा विपरीत है अत वह अग्रगामी गति में से घट जाती है। इसीलिये स्थिर अवलोकक के सापेक्ष चक्के का ऊपरी भाग निचले की अपेक्षा अधिक तेजी से स्थानातरित होता है।

उपरोक्त बात की सत्यता एक सरल प्रयोग द्वारा जाँची जा सकती है। टमटम के चक्के के पास जमीन मे एक छडी लब रूप से गाड दें। छडी चक्के की धुरी के ठीक सामने होनी चाहिये। चक्के की किनारी पर सबसे ऊपरी और सबसे निचले बिदुओ पर कोयले या खल्ली से निशान लगा दें ये निशान छडी के ठीक सामने होगे। अब टमटम को दायें लुढकायें (चित्र 7), ताकि अक्ष छडी से करीब 20–30 सेटीमीटर आगे बढ जाये। ध्यान दें कि आपके निशानो का स्थानातरण किस प्रकार हुआ है। ऊपरी चिह्न A विशेष रूप से आगे बढा होगा, जबकि निचला निशान B छडी के लगभग पास ही होगा।

चक्के का सबसे सुस्त हिस्सा

हमने देखा कि गाडी के चक्के मे सभी बिदु समान क्षिप्रता से स्थानातरित नही होते। लुढकते चक्के का कौन सा भाग सबसे धीमा होता है?

समझना कठिन नहीं है कि चक्के में सबसे धीमी गति उन बिंदुओं की है, जो दिये क्षण में जमीन को स्पर्श करते हैं। ठीक-ठीक कहा जाये, तो ये बिंदु जमीन छूते वक्त बिल्कुल अचल होते हैं।

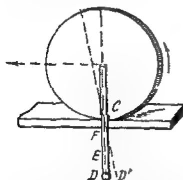
उपरोक्त बात सिर्फ लुढ़कते चक्के के बारे में सही है, अचल अक्ष पर घूमते चक्कों के साथ यह बात सही नहीं उतरती। उदाहरणार्थ, मोटो-गाड़ियों में लगे गति-सामक चक्र के ऊपरी और निचले भाग समान वेग रखते हैं।

प्रश्न है, मजाक नहीं

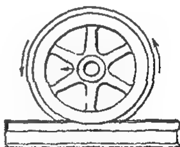
यह प्रश्न भी कुछ कम मनोरंजक नहीं है लेनिनग्राद से मास्को जाने वाली ट्रेन में ऐसे बिंदु होते हैं या नहीं, जो पटरियों के सापेक्ष उल्टा मास्को से लेनिनग्राद की ओर गतिमान हों?

ज्ञात होता है कि ऐसे बिंदु हर चक्के पर हर क्षण विद्यमान होते हैं। किस जगह होते हैं ये?

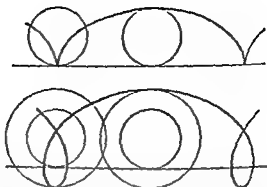
आप अवश्य ही जानते होंगे कि ट्रेन के चक्कों की किनारी पर होंठ जैसा गोट निकला रहता है। इसी गोट के निचले बिंदु ऐसे होते हैं, जो ट्रेन के चलते वक्त आगे की बजाय पीछे की ओर स्थानांतरित होते हैं।



चित्र 8 वृत्ताकार वस्तु और तीली के साथ प्रयोग। जब चक्का बायीं ओर लुढ़कता है, तीली के बाहर निकले हिस्से के बिंदु F E, D उल्टी दिशा में गतिमान होते हैं।



चित्र 9 जब ट्रेन के चक्के बायीं ओर घूमते हैं, उनकी बाहर निकली किनारी के निचले भाग दायीं ओर अर्थात विपरीत दिशा में गतिमान होते हैं।



चित्र 10 ऊपर के आरेख में दिखायी गयी वक्र रेखा (चक्राभ) वह पथ दिखाती है, जिसपर चक्के की किनारी का हर बिंदु भ्रमण करता है। नीचे—वक्र रेखा, जिसे ट्रेन के चक्के के निचले भाग के हर बिंदु निरूपित करते हैं।

इस बात की सत्यता आप निम्न प्रयोग द्वारा सरलतापूर्वक जाँच सकते हैं। किसी वृत्ताकार वस्तु (जैसे एक सिक्के या बटन) पर मोम से माचिस की एक तीली इस प्रकार चिपका लें कि वह त्रिज्या पर से गुजरती हुई कोर से काफी बाहर निकली रहे। खड़े स्केल के कोर में बिंदु C पर सिक्के को रख कर दायें से बायीं ओर लुढ़कायेंगे (चित्र 8), तो तीली के निकले हुए भाग के बिंदु F, E D आगे नहीं, पीछे खिसकेंगे। बिंदु वृत्त के कोर से जितना ही दूर होगा, उतना ही अधिक वह पीछे खिसकेगा (बिंदु D का स्थान D हो जाएगा)।

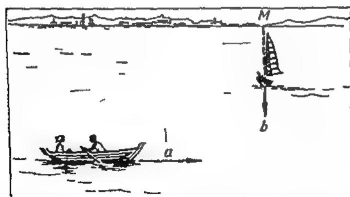
ट्रेन में चक्के की गोट की गति वैसी ही होती है, जैसी हमारे प्रयोग में तीली के निकले हुए भाग की।

अब आपको इस बात से आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि ट्रेन में ऐसे बिंदु भी हैं, जो आगे की बजाय पीछे चलते हैं। यह सत्य है कि ऐसी गति सिर्फ सेकेंड के क्षुद्रांश में ही सीमित रहती है। पर जो भी हो, हमारी सामान्य धारणा के बावजूद ट्रेन में उसके विरुद्ध स्थानांतरण भी होते हैं। उक्त बात चित्र 9 व 10 द्वारा स्पष्ट की गयी हैं।

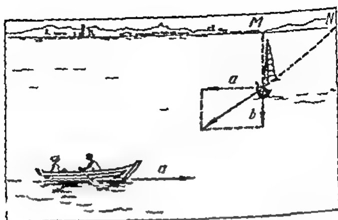
नाव कहां से चली?

कल्पना कर कि एक चप्पूदार नाव झील मे चल रही है और हमारे चित्र 11 मे तीर *a* उसकी गति की दिशा और वेग द्योतित करता है। उसके पथ के साथ समकोण बनाती रेखा पर एक पाल वाली नाव आ रही है। तीर b उसकी दिशा और वेग दर्शाता है। यदि आप से पूछा जाये कि यह नाव कहां से चली थी, तो आप बेशक तट पर बिंदु M दिखा देंगे। पर यही प्रश्न यदि चप्पूदार नाव के यात्रियो को दिया जाये, तो वे बिल्कुल ही दूसरा बिंदु बतायेंगे। क्या?

कारण यह है कि यात्री दूसरी नौका का अपने पथ के लब चलती नही देखते। वे अपनी गति महसूस नही करते उन्हें लगता है कि वे एक ही स्थान पर खडे हैं और चारो ओर की चीजें उनकी खुद की गति से (पर विपरीत दिशा मे) चल रही हैं। अत उनके लिये पाल वाली नौका तीर b की दिशा मे ही नहीं बल्कि चप्पूदार नौका के विपरीत छिन्न तीर a की दिशा मे भी चल रही है (दे चित्र 12)। पाल वाली नौका की वास्तविक व प्रतीयमान दोनो गतियां समातर चतुर्भुज के नियम से जोडी जाती हैं। परिणाम स्वरूप यात्रियो को लगता है कि पाल वाली



चित्र 11 पाल वाली नाव का पथ चप्पूदार नाव के पथ के लब है। तीर a व b वेग द्योतित करते हैं। चप्पू चलाने वालो को क्या दिखेगा।



चित्र 12 चप्पू चलाने वालो को लगता है कि पाल वाला नाव बिंदु M से नही, N से आ रही है, अर्थात वह उनके पथ के लंब नहीं, तिरछा चल रही है।

नाव b और a भुजाओ से बने समांतर चतुर्भुज के कर्ण पर चल रही है। यही कारण है कि यात्री पाल वाली नाव की रवानगी का स्थान M नही बता कर बिंदु N बताते हैं, जो उनकी गति की दिशा में बहुत दूर है (चित्र 12)।

जिस प्रकार चप्पूदार नाव के यात्री पाल वाली नाव के प्रस्थान का स्थल गलत निर्धारित करते हैं उसी प्रकार हम भी तारों से हमारी आँखो तक आती किरणो के उदगम का स्थान आकाश मे गलत बताते हैं। कारण यही है कि हम अपनी उस गति को ध्यान मे नही रखते, जिससे हम पृथ्वी पर बठे उसके कक्ष पर सूरज की परिक्रमा करते हैं। इसीलिये तारे हमे पृथ्वी की गति-पथ पर थोडा आगे विस्थापित लगत हैं। यह सही है कि पृथ्वी का वेग प्रकाश-वेग की तुलना म नगण्य है (10 000 गुना कम है) और इसीलिये तारो का आभासी विस्थापन नगण्य होता है। पर फिर भी उसे खगोलिकी के उपकरणो से ज्ञात किया जा सकता है। एसी परिघटना को प्रकाश का विपथन कहते हैं।

यदि ऐसे प्रश्नो म आपकी दिलचस्पी हो गयी हो, तो नाव वाले प्रश्न की शर्तो को बिना परिवर्तित किये बताने की कोशिश करे

1) पाल वाली नाव के यात्रियो के लिये चप्पूदार नाव की दिशा क्या होगी?

2) पाल वाली नाव के यात्रियो के दृष्टिकोण से चप्पूदार नाव किस स्थान पर पहुँचेगी?

इन प्रश्नो का उत्तर देने के लिये आपको a रेखा पर (चित्र 12) गतियो का समातर चतुर्भुज बनाना होगा, उसका कण दिखायेगा कि पालवाली नाव के यात्रियो को चप्पूदार नाव तिरछी चलती नजर आयेगी मानो वह तट पर लगने जा रही हो।

अध्याय 2

गुरुत्व और भार उत्तोलक दाब

उठिये

यदि मैं आप से कहूं "अभी आप कुर्सी पर ऐसे बठेंगे कि उठ नही सकें हालांकि आप बधे नही होंगे," आप इसे बेशक मजाक मानेंगे।

ठीक है। आप ऐसे बठिये जसे चित्र 13 म आदमी बठा है धड़ सीधा हो और पर कुर्सी के नीचे न मुडे हो। अब खडे होने की कोशिश करे, शर्त है कि परो की स्थिति न बदले और धड आगे न झुके।

नही हो रहा है? पेशियो की लाख कोशिश से भी आप खड नहीं हो सकते, जबतक आप पैरो को कुर्सी के नीचे नही मोडते या धड आगे नही झुकाते।

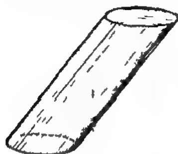
इसका कारण समझने के लिये हमे पिडो के सतुलन पर व्यापक रूप से और आदमी के सतुलन पर विशेष रूप से बात करनी होगी। खडी वस्तु सिर्फ उस स्थिति म नही गिरती, जब उसके गुरुत्व केंद्र से खीची गयी साहुल रेखा (सीधी, लबवत खडी रेखा) उसके आधार के दायरे (आलब-क्षेत्र) मे पडती रहती है। अत चित्र 14 का नत बेलन अवश्य ही गिरेगा। यदि वह इतना चौडा होता कि उसके गुरुत्व केंद्र से खीची गयी साहुल रेखा उसके आलब-क्षेत्र मे ही पडती तो बेलन नही गिरता। पीसा की झुकी मीनार या अर्खांगेल्स्क का 'गिरता घटाघर' इतना झुका होने पर भी नही गिरता, क्योकि उनके गुरुत्व केंद्र से चली साहुल रेखा उनके आधार के दायरे से बाहर नही पडती (दूसरा



चित्र 13 इस मुद्रा मे बठे रह कर खडा नही हो सकते।

एक गौण कारण यह भी है कि वे काफी गहरी नीव पर खडे हैं)।

खडा आदमी तभी तक नही गिरता, जब तक कि उसके



चित्र 14 यह बेलन गिर जायेगा, क्योकि उसके गुरुत्व केंद्र से खीची गयी शाहुल रेखा उसके आधार-क्षेत्र के बाहर पड रही है।



चित्र 15 अर्खांगेल्स्क का 'गिरता' घंटाघर (पुराने फोटोग्राफ से)।

गुरुत्व केंद्र से गुजरती साहुल रेखा उसकी एडियो से घिरे क्षेत्र के भीतर गिरती है। इसीलिये एक पैर पर खडा होना कठिन है, तनी रस्सी पर खडा होना और भी मुश्किल है आधार या आलंब-क्षेत्र बहुत ही कम है और साहुल-रेखा के लिये उसकी सीमा से बाहर निकल आना बहुत सरल है। आपने कभी ध्यान दिया है कि पुराने नाथ नाविको की चाल कितनी बेढब होती है? उनकी सारी जिदगी हिचकोले खाते जहाजो पर बीतती है, जहा उनके शरीर के गुरुत्व केन्द्र से गुजरती साहुल रेखा किसी भी क्षण उनकी एडियो से घिरे क्षेत्र के बाहर चली आ सकती है। इसीलिये वे इस तरह चलने की आदत बना लेते हैं कि उनके शरीर का आधार अधिक से अधिक स्थान घेर कर रखे, अर्थात पैर अधिक से अधिक खुले हो। इससे नाविको को हिचकोलो के बीच आवश्यक स्थिरता प्राप्त होती है। स्वाभाविक है कि स्थिर जमीन पर चलते वक्त भी उनकी यह आदत नही छूटती। इसका विपरीत उदाहरण भी दिया जा सकता है, जिसमे सतुलन बनाये रखने की



चित्र 16 खड़े आदमी के गुरुत्व केंद्र से गुजरती शाहुल रेखा दोनों तलवों से घिरे क्षेत्र में पड़ती है।

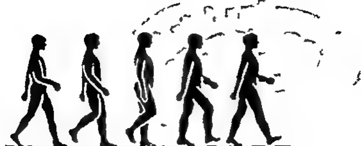
आवश्यकता मुद्रा की सुंदरता का आधार बन जाती है। आपने कभी ध्यान दिया है कि सिर पर बोझ ढोने वालों की आकृति कितनी सुडौल होती है? सिर पर घड़ा लिये स्त्री के रूप की मनोहरता सभी को ज्ञात है। सिर पर बोझ ढोते वक्त सिर और धड़ को बिल्कुल सीधा रखना पड़ता है हल्का सा झुकाव भी गुरुत्व केंद्र को आलंब-क्षेत्र से बाहर कर देगा (क्योंकि इस स्थिति में गुरुत्व केंद्र विशेष रूप से ऊपर उठ आया है!) और आकृति का संतुलन बिगाड़ देगा।

अब बैठे से खड़े होने के प्रयोग की ओर लौटें। बैठे हुए आदमी के धड़ का गुरुत्व केंद्र शरीर के भीतर मेरुदंड के पास नाभि से करीब 20 सेंटीमीटर ऊपर होता है। यहां से नीचे की ओर शाहुल रेखा खींचें वह ठीक कुर्सी के नीचे, एड़ियों के पीछे पहुँचेगी। पर आदमी खड़ा हो सके, इसके लिये आवश्यक है कि यह रेखा एड़ियों के बीच पड़ी हो।

अतः उठते वक्त हमें या तो छाती आगे की ओर झुकानी चाहिये या पैरों को पीछे कर के गुरुत्व केंद्र को टेक देनी चाहिये। कुर्सी पर से उठते वक्त हम अक्सर यही करते हैं। लेकिन यदि हमें दोनों में से कुछ भी करने की अनुमति नहीं है, तो जैसा कि आप देख चुके हैं उठना मुश्किल है।

चलना और दौड़ना

दैनिक जीवन में जो चीजें हम लाखों हजारों बार दुहराते हैं, हमें अच्छी तरह ज्ञात होनी चाहिये। सोचा यही जाता है, पर हमेशा ऐसा नहीं होता। इसके सुंदर उदाहरण हैं—चलना और दौड़ना। इनसे बढ़ कर हमारे लिये परिचित शायद ही कोई दूसरी गति हो। पर कितने ऐसे लोग मिलेंगे, जो अच्छी तरह जानते हैं कि चलने और दौड़ने में शरीर आगे कैसे बढ़ता है और इन दो प्रकार की गतियों में क्या अंतर है? देखें कि शरीरक्रिया



चित्र 17 आदमी का चलना। शरीर की क्रमिक मुद्रायें।

विज्ञान चलने व दौड़ने के बारे में क्या कहता है।[1] मुझे विश्वास है कि अधिकतर लोगों के लिये यह वर्णन नया होगा।

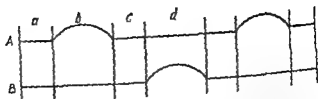
"मान लें कि आदमी एक पैर पर खड़ा है, उदाहरणार्थ दायें पैर पर। अब कल्पना करें कि वह हल्के से पिछली एड़ी उठाता है और साथ ही धड़ को आगे झुकाता है।[2] स्पष्ट है कि इस स्थिति में गुरुत्व केंद्र आलंब-क्षेत्र से बाहर निकल आयेगा और आदमी आगे की ओर गिरेगा। लेकिन जैसे ही उसका गिरना शुरू होता है, हवा में लटका उसका बायां पैर जल्दी से आगे बढ़ता है और गुरुत्व केंद्र से खिंचे लंब के पाद से कुछ दूर जमीन पर रुकता है। इससे लंब दोनों पैरों के आलंब बिंदुओं से घिरे क्षेत्र में आ जाता है और आदमी का गिरना रुक जाता है। संतुलन पुनः कायम हो जाता है और आदमी एक कदम पूरा कर लेता है।

आदमी इस उबताने वाली स्थिति में रुका रह सकता है, पर यदि वह आगे बढ़ना चाहता है, तो वह शरीर को थोड़ा आगे झुकाता है, गुरुत्व केंद्र से खींचे लंब को टेक-क्षेत्र के बाहर ले जाता है और फिर गिरने के क्षण पैर आगे बढ़ा देता है–लेकिन इस बार बायां नहीं, दायां पैर।

---

[1] अवतरण प्रो. पोल बेट के 'जैविकी पर व्याख्यान' से लिये गये हैं, चित्र संकलनकर्ता की तरफ से।

[2] चलने की प्रक्रिया में आधार बिंदु को इस प्रकार धकेलते वक्त आदमी अपने भार के साथ साथ उस पर लगभग 20 kg का अतिरिक्त दाब डालता है। इसी से यह निष्कर्ष निकलता है कि चलते वक्त आदमी जमीन को अधिक जोर से दबाता है, बनिस्बत कि जब वह खड़ा रहता है।– या. पे.



चित्र 18 चलते वक्त पैरों की गति का आरेख। ऊपरी रेखा A एक पैर की गति दिखाती है और निचली रेखा B—दूसरे पैर की। सरल रेखाएं पैरों से जमीन टेकने के क्षणों को दिखाती हैं और चाप—जब पैर बिना टेक के गतिमान रहते हैं। आरेख से स्पष्ट है कि अंतराल a के दरम्यान दोनों पैर जमीन पर टिके हैं, अंतराल b में—पैर A ऊपर उठा हुआ है, B जमीन पर टिका है, अंतराल c में—दोनों पैर पुनः जमीन पर हैं। जितनी ही तेजी से आदमी चलेगा, अंतराल a, उतने ही छोटे होंगे (तुलना करें चित्र 20 में दौड़ के आरेख से)।



चित्र 19 आदमी का दौड़ना—क्रमिक मुद्रायें (ऐसे भी क्षण हैं, जब दोनों पैर उठे हुए होते हैं)।

एक और कदम पूरा हो जाता है। इस प्रकार, चलने की क्रिया आगे की ओर गिरने का सिलसिला है, जो हर बार पीछे पड़े पैर द्वारा ऐन मौके पर रोक लिया जाता है।

बात को और नजदीक से देखें। मान लें कि पहला कदम पूरा होने जा रहा है। इस क्षण दायां पैर अभी भी जमीन छू रहा है और बायां जमीन पर आ रहा है। यदि कदम बहुत छोटा नहीं है तो दायीं एड़ी पीछे से कुछ उठी होनी चाहिये। संतुलन तोड़ने के लिये यदि शरीर आगे झुकाना है, तो यही करना होगा। बायां पैर एड़ी के सहारे जमीन पर उतरता है। इसके बाद जब सारा तलवा जमीन छूने लगता है दायां पैर बिल्कुल हवा में उठ जाता है। इसके साथ ही बायां पैर, जो अब तक घुटनों पर



चित्र 20 दौड में पैरो की गति का आरेख (तुलना करें चित्र 18 से)। स्पष्ट दिख रहा है कि दौड़ते आदमी के लिये ऐसे क्षण b d f होते हैं, जब दोनों पर हवा में उठे रहते हैं। चलने की क्रिया से दौड़ इसी बात में भिन्न होती है।

मुड़ा हुआ था, कमर की तिमिरा पेशियो के सिकुड़ने से क्षण भर को सीधा हो जाता है। थोड़ा मुड़ा हुआ दायां पैर तभी बिना जमीन छूए आगे बढ़ सकता है और शरीर की गति के अनुसार अगले कदम के लिये पुन एड़ी के सहारे जमीन पर उतर आता है।

इसके बाद गतियो का यही सिलसिला बायें पैर के साथ शुरू होता है, जो इस समय जमीन पर सिर्फ उगलियो के सहारे टिका होता है और उठने की तैयारी करने लगता है।

चलने से दौड़ने में अतर यह है कि जमीन पर खड़ा पैर पेशियों के अचानक सिकुड़ने से सीधा तनता है और शरीर को इस तरह आगे फेंक देता है कि वह क्षण भर को जमीन से बिल्कुल अलग हो जाता है। इसके बाद वह पुन जमीन पर दूसरे पैर के सहारे गिरता है, जो शरीर के हवा मे उछलते वक्त शीघ्रता से आगे बढ़ चुका होता है। इस प्रकार, दौड़ने की क्रिया एक पैर से दूसरे पर छलांगों का सिलसिला है।

जहा तक क्षतिज पथ पर चलने से खर्च हुई मानव-ऊर्जा का प्रश्न है, वह शून्य के बराबर नही है, क्योंकि हर कदम के दौरान आदमी का गुरुत्व केन्द्र कुछ सेंटीमीटर ऊपर उठता है। हिसाब लगाया जा सकता है कि क्षतिज पथ पर चलने से सपन्न काय चलने वाले के शरीर को पथ की लबाई के पद्रहवें भाग ऊँचा उठाने से सपन्न कार्य के बराबर होता है।[1]

---

[1] यह कलन प्रो गर्याछकिन की पुस्तक "सजीव चलित्रो का काय" (1914) मे लिया गया है।

3

किसी से यह पूछेंगे, तो आपको बेशक निम्न उत्तर मिलेगा "जड़त्व नियम के अनुसार आगे की ओर, गाडी चलने की दिशा में"। अब आप उससे सविवरण समझाने का अनुरोध करें कि जड़त्व नियम से इसका क्या संबंध है। परिणाम का अंदाजा लगाया जा सकता है आपका साथी पूरे विश्वास के साथ अपने विचारों को सिद्ध करने में लग जायेगा, पर यदि उसे टोका नहीं जाये, तो जल्द ही चक्कर में पड़ जायेगा पता चलेगा कि जड़त्व नियम के अनुसार ठीक उल्टा—गति के विपरीत—कूदना चाहिये।

जड़त्व नियम की यहां सचमुच में गौण भूमिका है,—मुख्य कारण कुछ और है। यदि इस मुख्य कारण को छोड़ दें, तो निष्कर्ष सचमुच में यही निकलता है कि आगे नहीं, पीछे की ओर कूदना चाहिये।

मान लें कि आपको चलती गाडी से कूदना पड़ रहा है। क्या होगा इस स्थिति में?

जिस समय हम चलती गाडी के डब्बे से कूदते हैं, हमारा शरीर डब्बे के वेग से गतिमान रहता है (जड़त्व के कारण) और उसकी प्रवृत्ति आगे चलते जाने की होती है। आगे की ओर कूद कर हम इस वेग को नष्ट करने की बजाय और बढ़ा देते हैं।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि आगे नहीं, पीछे की ओर कूदना चाहिये। क्योंकि पीछे कूदने से प्राप्त वेग उस वेग को घटा देता है, जिससे हमारा शरीर जड़त्व के कारण आगे चल रहा है। इसके फलस्वरूप हमारा शरीर जमीन पर कम शक्ति से गिरने की प्रवृत्ति रखेगा।

पर इसके बावजूद भी, यदि कूदना पड़ता है तो सब आगे ही कूदते हैं। यह सचमुच ही उत्तम विधि है और इतनी खरी है कि पाठक को हम चलती गाडी से पीछे की ओर कूदने की असुविधाओं को जानने की कोशिश न करने की विशेष चेतावनी देते हैं।

फिर बात क्या है?

व्याख्या की त्रुटि है उसका अधूरापन है। आगे कूदें या पीछे, गिरने का खतरा हमेशा है, क्योंकि धड़ जड़त्ववश चलता रहेगा और पैर जमीन को छूते ही रुक जायेंगे[1]। धड़ की गति इस स्थिति में कहीं अधिक होगी, बनिस्बत पीछे कूदने में। पर यहां महत्वपूर्ण बात यह है कि पीछे की अपेक्षा

भागे की ओर गिरना कम खतरनाक है। भागे गिरते वक्त हम भादतवश पर बढा कर गिरना रोक लेते हैं (गाडी का वेग अधिक होने पर कुछ कदम दौड भी लेते हैं)। हम इस तरह की गतियो के भादी हैं, क्योंकि हर रोज चलते वक्त यही करते हैं यात्रिकी के दृष्टिकोण से चलना और कुछ नही, बल्कि भागे की ओर गिरने और पर बढ़ा कर इसे रोकने का सिलसिला है।। पीछे की ओर गिरने से बचने के लिये पैर कुछ भी नही करते (भादी नही हैं) और इसीलिय इसमे खतरा अधिक है। अतत, यदि हम भागे गिरते भी हैं, तो हाथ बढा कर रोकने की कोशिश करते हैं और हमे वैसी चोट नही भाती। यह बात भी कम महत्वपूर्ण नही है।

इस प्रकार, भागे कूदने मे कम खतरा है। इसका कारण जडत्व नियम में नही, खुद हमारे भीतर है। जाहिर है कि ये बातें निर्जीव वस्तुओ पर लागू नही होती चलती गाडी से भागे की ओर फेंकी गयी बोतल के फूटने की भाशका कही अधिक है, पीछे फेंकने पर उसे कम चोट भायेगी। इसी-लिये, यदि कभी भापको चलती ट्रेन से सामान के साथ कूदने की जरूरत पडे तो पहले सामान पीछे की ओर फेंकना चाहिये और तब भागे की ओर कूदना चाहिये।

ट्राम के कडक्टर या टिकट चेकर जसे अनुभवी लोग अक्सर गाडी की गति की ओर मुह कर के पीछे छलांग लगाते हैं। इससे दो फायदे होते हैं जडत्व से प्राप्त हमारा वेग भी कम हो जाता है और पीठ के सहारे गिरने का खतरा भी नही रहता, क्योकि कूदने वाले का मुँह उधर ही है, जिधर गिरने की सभावना है।

खाली हाथ बदूक की गोली पकडना

साम्राज्यवादी युद्ध के समय एक फ्रासीसी पायलट के साथ असाधारण घटना घटी। दो किलोमीटर की ऊँचाई पर उसे सिर के पास कोई छोटी सी चीज उडती नजर भायी। फतिगा समझ कर उसने उसे हाथ से पकड

---

[1] यहा गिरने का कारण एक और दृष्टिकोण से समझाया जा सकता है (दे "मनोरजक यात्रिकी", अध्याय 3 उपशीर्षक "क्षजित रेखा कब भक्षतिज होती है?')।

लिया। जब उसने मुट्ठी खोल कर देखा, उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसके हाथ मे थी जर्मन गोली!

अखबारो मे छपी खबर किस्से वाले गप्पबाज नवाब म्युनहाउजेन की याद दिलाती है, जो तोप से दागे गये गोलो को हाथ से पकड़ लिया करते थे। पर इस खबर मे कोई असभव बात नही है।

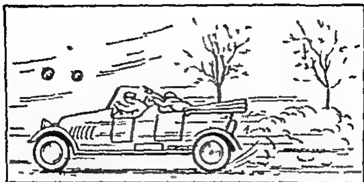
बदूक की गोली अपनी उड़ान के पूरे समय 800–900 m प्रति सेकेड की गति से नही चलती। हवा के प्रतिरोध से उसका वेग धीरे धीरे कम होता है और अत मे उसकी गति सिर्फ 40 मीटर प्रति सेकेड रह जाती है। हवाई जहाज भी इसी गति से उड़ते हैं। अत यह पूरी तरह सभव है कि हवाई जहाज और गोली समान गति से चल रहे हो। इस स्थिति मे पायलट के सापेक्ष गोली अचल रहेगी या बहुत ही धीरे चलेगी। यदि हाथ दस्तानो मे हो तो ऐसी गोली को पकड़ लेने से कुछ नही होगा (हवा के घर्षण से गोली काफी गर्म हो जाती है)।

तरबूज या बम?

यदि स्थिति विशेष मे बदूक की गोली खतरनाक नही रह जाती, तो इसका उल्टा भी सभव है किसी निश्चल पिंड को यदि नगण्य वेग से फेंका जाये, तो भी वह घातक सिद्ध हो सकता है। सन 1924 की लेनिनग्राद तिफलिस मोटर रेस के समय रास्ते मे पड़ने वाले कावकेशस गाँवो के किसान स्वागत के लिये उन पर तरबूज सेव आदि फेंका करते थे। इन निर्दोष हार्दिक प्रेमोपहारो का परिणाम काफी दुखद रहा तरबूज और खरबूज गाड़ियो के कापस पिचका देते थे या तोड़ देते थे और सेव यात्रियो को गभीर चोट पहुचाते थे। इसका कारण स्पष्ट है मोटरो का अपना वेग फेंके गये तरबूजो और सेवो के वेग से जुड़ कर उन्हें घातक तोप के गोलो मे परिणत कर देता था। आसानी से कलन कर के देख सकते हैं कि 10 g की गोली म उतनी ही गति की ऊर्जा है जितनी 120 km/h के वेग से दौड़ती गाड़ी पर फेंके गये 4 kg के तरबूज मे।

तरबूज और गोली की अनिष्टकारी शक्तियो की तुलना नही की जा सकती, क्योकि तरबूज गोली जसा कठोर नही होता।

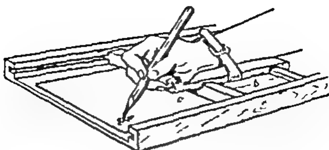
वातावरण की ऊपरी परतो (तथाकथित समतापीय मडल) में जब



चित्र 21 सामने से आती मोटर-कार पर फेंका गया तरबूज तोप के गोले का काम करता है।

क्षिप्र विमानन शुरू होगा और विमानों का वेग लगभग 3000 km/h (बंदूक की गोली के वेग के बराबर) हो जायेगा, तब पायलटों का वास्ता ऐसी घटनाओं से पड़ेगा, जो हम अभी ऊपर देख चुके हैं। ऐसे अतिक्षिप्र विमानों के रास्ते में आने वाली हर छोटी मोटी चीज उसके लिये घातक गोली का काम करेगी। किसी दूसरे विमान द्वारा यूँ ही गिरायी गयी गोलियों से टकराने का परिणाम वैसा ही होगा, जैसा यदि विमान पर ऑटोमेटिक गन से गोलियों की चांदमारी की जाये। गिरती गोलियाँ विमान में उसी शक्ति से छेद करेंगी, जिससे दागी गयी गोली करती है। चूँकि दोनों ही स्थितियों में सापेक्षिक वेग समान हैं (विमान और गोली लगभग 800 m/s के वेग से एक दूसरे के निकट आ रहे हैं), टकराने के अनिष्टकारी परिणाम दोनों ही हालतों में समान होंगे।

इसके विपरीत, यदि दागी गयी गोली विमान के पीछे से आ रही है तो, जैसा अब हम जानते हैं, वह पायलट के लिये खतरनाक नहीं है। इस तथ्य को, कि लगभग समान वेग से एक ही दिशा में गतिमान पिंड एक-दूसरे को बिना टकराव के स्पर्श करते हैं, सन् 1935 में एक इंजन चालक बोर्शेव ने बहुत निपुणता से काम में लाया उसने अपनी ट्रेन को 36 डब्बों वाली ट्रेन के साथ टकराने से बचा लिया। घटना दक्षिण के येननिकोव-आलशानुका पथ की है। बोर्शेव की ट्रेन से कुछ आगे एक और ट्रेन चल रही थी। आगे वाली ट्रेन पर्याप्त वाष्प न मिलने के कारण रुक



चित्र 22 चलती गाडी मे लिखने के लिये सुविधाजनक प्रयुक्ति।

गयी। उसका चालक इजन और कुछ डब्बो के साथ आगे स्टेशन की ओर बढ़ गया। बाकी 36 डब्बे उसे वही छोड देने पड़े। चूँकि इन डब्बो को रोकने की व्यवस्था नही की गयी थी, वे पीछे की ओर ढलान पर करीब 15 km/h के वेग से लुढक पड़े। कोर्सेव की ट्रेन के लिये खतरा पैदा हो गया। बुद्धिमान चालक स्थिति भाँपते ही अपनी ट्रेन रोक कर करीब 15 km/h की गति से बढ़ने लगा। इस युक्ति से वह 36 डब्बो की टुकड़ी अपनी ट्रेन से बिना किसी नुकसान के रोक सका।

चलती ट्रेन मे लिखना आसान करने वाला साधन इसी सिद्धात पर बना है। चलती ट्रेन मे लिखना सिर्फ इसलिये कठिन होता है कि पटरियो के जोड़ो पर उत्पन्न हिचकोले कागज और नीब को एक ही साथ नही लगते। यदि ऐसा कुछ किया जाये कि कागज और नीब को एक ही साथ धक्के लगें, तो दोनो एक दूसरे के सापेक्ष गतिहीन रहेंगे और चलती ट्रेन मे लिखना कठिन नही रह जायेगा।

यह चित्र 22 मे दिखाये गये साधन द्वारा सभव है। कलम वाला हाथ तख्ते a के साथ बाध दिया जाता है, जो पटरियो b के गड्ढे मे आगे पीछे हो सकता है। पटरिया भी डब्बे के टेबुल पर रखे तख्ते मे आगे पीछे हो सकती हैं। स्पष्ट है कि हाथ पर्याप्त स्वतत्र है, ताकि वह अक्षरो के बाद अक्षर और पक्तियो के बाद पक्तिया लिख सके। और साथ ही तख्ते पर पडे कागज को लगने वाला हर धक्का उसी क्षण उसी शक्ति से हाथ को भी लगता है, जिसमे कलम है। अतएव इन परिस्थितियो मे लिखना उतना ही सरल होता है जितना खड़े डब्बे मे लिखना। सिर्फ

एक चीज बाधा डालती है—कागज पर नजर उछलती रहती है, क्योंकि हाथ और सर को हिचकोले एक ही साथ नहीं लगते।

तराजू के चबूतरे पर

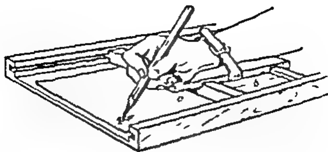
दशमलव प्रणाली के तराजू सिर्फ उस स्थिति में आपके शरीर का सही भार बताते हैं, जब आप उनके चबूतरे पर बिल्कुल बिना हिले डुले खड़े रहते हैं। आप थोड़ा भी झुकेंगे कि तराजू आपके झुकने के क्षण आपका वजन कम कर दिखायेगा। क्यों? क्योंकि धड़ के ऊपरी भाग को झुकाने वाली पेशियां उस क्षण शरीर के निचले भाग को ऊपर तानती है, जिससे टेक पर (जिस पर आप खड़े हैं) दबाव कम हो जाता है। इसके विपरीत, जब आप पेशियों की कोशिश से धड़ झुकाना रोक देते हैं, तो उनसे शरीर के ऊपरी और निचले भागों को अलग-अलग भिन्न दिशाओं में धक्के मिलते हैं। शरीर के निचले भाग द्वारा नीचे की ओर धक्के खाने से शरीर के आलंब पर दबाव बढ़ जाता है और फलतः तराजू आपका वजन भी उतना ही बढ़ा हुआ दिखा देता है।

संवेदनशील तुला के परिणामों में हाथ उठाने से भी अंतर आ जाना चाहिये। यह अंतर आपके वजन में प्रतीयमान वृद्धि के बराबर होगा। हाथ को उठाने वाली पेशियां कंधे पर टेक लगाती हैं, अतः उसे धड़ सहित नीचे की ओर धक्का देती हैं चबूतरे पर दबाव बढ़ जाता है। हाथ को रोकते वक्त हम दूसरी पेशियों को कार्यशील करते हैं, जो कंधे को ऊपर की ओर खींचती हैं, ताकि वह हाथ के सिरे से करीब आ जाये। इससे टेक पर दाब घट जाता है।

हाथ नीचे गिराते वक्त हम इसके विपरीत शरीर के वजन में कमी ला देते हैं, और जब हाथ का गिरना रोकते हैं—वजन बढ़ा देते हैं। तात्पर्य यह है कि अपनी आंतरिक शक्तियों की क्रियाशीलता से हम अपना वजन घटा बढ़ा सकते हैं (यदि वजन को टेक या आलंब पर दबाव के अर्थ में लिया जाये)।

चीजें कहां अधिक भारी होंगी?

पिंडों को पृथ्वी जिस बल से आकर्षित करती है, वह धरातल से ऊपर उठने पर क्रमशः घटता है। यदि हम एक किलोग्राम के मुग्दर को 6400 km



चित्र 22 चलती गाडी म लिखने के लिये सुविधाजनक प्रयुक्ति।

गयी। उसका चालक इजन और कुछ डब्बो के साथ आगे बढ गया। बाकी 36 डब्बे उसे वही छोड देने पडे। चूंकि रोकने की व्यवस्था नही की गयी थी, वे पीछे की ओर 15 km/h के वेग से लुढक पडे। बोर्शेव की ट्रेन म लिये गया। बुद्धिमान चालक स्थिति भांपते ही अपनी ट्रेन 15 km/h की गति से बैक करने लगा। इस युक्ति की टुकडी अपनी ट्रेन से बिना किसी नुकसान के रा

चलती ट्रेन म लिखना आसान करने वाला साधन है। चलती ट्रेन म लिखना सिर्फ इसलिये कठिन के जोडो पर उत्पन्न हिचकोले कागज और नीव लगते। यदि ऐसा कुछ किया जाये कि कागज और धक्के लगें, तो दोनो एक दूसरे के सापेक्ष गतिही मे लिखना कठिन नही रह जायेगा।

यह चित्र 22 मे दिखाये गये साधन द्वारा हाथ तख्ते a के साथ बाध दिया जाता है, आगे पीछे हो सकता है। पटरिया भी आगे पीछे हो सकती हैं। स्पष्ट है कि हाथ अक्षरो के बाद अक्षर और पक्तियो के बाद ही तख्ते पर पडे कागज को लगने वाला से हाथ को भी लगता है जिसमे लिखना उतना ही सरल होता है।

पृथ्वी-कण मुग्दर के एक ही तरफ नहीं है, उसके चारों ओर हैं। चित्र 23 पर नजर डालिये। आप देखेंगे कि पृथ्वी में गहराई पर रखा हुआ मुग्दर नीचे के कणों द्वारा तो आकर्षित हो ही रहा है, साथ-साथ ऊपर की ओर ऊपरी कणों द्वारा भी आकर्षित हो रहा है। सिद्ध किया जा सकता है कि अंततोगत्वा सिर्फ उस गोले के आकर्षण का महत्व रह जाता है, जिसकी त्रिज्या पृथ्वी के केंद्र से मुग्दर तक है। इसीलिये पिंड का भार पृथ्वी की गहराई में जाने के साथ-साथ तेजी से घटना चाहिये। पृथ्वी-केंद्र पर पहुँच कर उसका भार बिल्कुल खत्म हो जायेगा, क्योंकि उसके गिर्द के कण उसे सभी दिशाओं में समान बल से खींचेंगे।

अतः पिंड का अधिकतम भार पृथ्वी-तल पर ही होता है तल से ऊपर या नीचे (गहराई में) जाने पर उसका भार कम हो जाता है[1]।

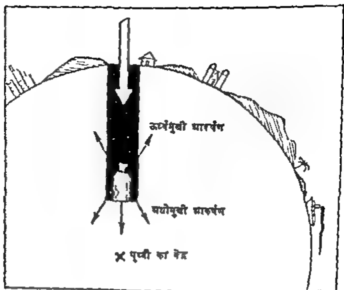
गिरते पिंड का वजन

आपने कभी ध्यान दिया है कि जिस क्षण लिफ्ट नीचे उतरना शुरू करती है, कितना अजीब सा महसूस होता है? शरीर क्षण भर को असाधारण रूप से हल्का हो जाता है, मानो आप गहरी खाई में गिर रहे हैं यह और कुछ नहीं, बल्कि भारहीनता की अनुभूति है। गति के प्रथम क्षण, जब पैरों तले फर्श नीचे गिरना शुरू हो जाता है, आप फर्श का वेग तुरंत प्राप्त नहीं करते, जड़त्व के कारण वहीं उसी ऊँचाई पर रुके रह जाते हैं। इसीलिये आपका शरीर फर्श को लगभग नहीं दबाता, अर्थात् शरीर का भार काफी कम हो जाता है। पर पल भर बाद ही यह विचित्र अनुभव समाप्त हो जाता है आपका शरीर त्वरित वेग से गिरने लगता है जबकि लिफ्ट का वेग स्थिर, समरूप होता है। लिफ्ट से अधिक तेज गिरने की कोशिश में आपका शरीर पुनः फर्श पर दबाव डालने लगता है, अर्थात् आपका भार पूर्णतया वापिस लौट आता है।

किसी मुग्दर को कमानीदार तुला के अंकुश से लटका दें। अब तुला

---

[1] यह पूर्णतया सत्य होता यदि पृथ्वी का घनत्व सर्वत्र एक रूप से समान होता पर केन्द्र की ओर जाने पर पृथ्वी का घनत्व बढ़ता है। इसीलिये गुरुत्व-बल पृथ्वी की गहराई में जाने पर शुरू-शुरू थोड़ा बढ़ता है और बाद में घटने लगता है।



चित्र 23 पृथ्वी की गहराई म गुरुत्व शक्ति कम क्यो हो जाती है।

की ऊंचाई पर ले जायें, तो आकर्षण-बल 2^2, अर्थात 4 गुना कम हो जाएगा। मुग्दर स्प्रिंग तुला पर 1000 g की बजाय सिर्फ 250 g भारी नजर आयेगा। गुरुत्वाकर्षण नियम के अनुसार बाह्य पिंडो को पृथ्वी इस प्रकार आकर्षित करती है, मानो उसका सारा द्रव्यमान उसके केंद्र मे जमा हो और आकर्षण का बल दूरी के वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती होता है। हमारे उदाहरण म पृथ्वी के केंद्र से मुग्दर की दूरी दुगुनी बढ गयी है, इसीलिये आकर्षण 2 गुना अर्थात चौगुना कम हो गया है। धरातल से 12800 km ऊपर, अर्थात् पृथ्वी के केंद्र से तिगुनी दूरी पर गुरुत्वाकर्षण बल 3^2 या 9 गुना कम हो जाता है। अत ऐसे बिंदु पर 1000 ग्राम भारी मुग्दर का भार मात्र 111 g रहेगा।

स्वभावत ऐसा विचार भी उठ सकता है कि मुग्दर को गहराई मे, अर्थात् पृथ्वी केंद्र के निकट ले जाने पर उसका वजन बढना चाहिये वहा पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण अधिक होगा। पर यह खयाल गलत है पृथ्वी *की गहराई मे भी पिंड का वजन नहीं बढता, वह घटता ही है।*

इसका कारण यह है कि इस स्थिति मे मुग्दर को आकर्षित करने वाले

पृथ्वी-कण मुग्दर के एक ही तरफ नही है, उसके चारो ओर हैं। चित्र 23 पर नजर डालिये। आप देखेंगे कि पृथ्वी म गहराई पर रखा हुआ मुग्दर नीचे के कणो द्वारा तो आकर्षित हो ही रहा है, साथ-साथ ऊपर की ओर ऊपरी कणो द्वारा भी आकर्षित हो रहा ह। सिद्ध किया जा सकता है कि अततोगत्वा सिर्फ उस गोले के आकर्षण का महत्व रह जाता है, जिसकी त्रिज्या पृथ्वी के केंद्र से मुग्दर तक है। इसीलिये पिंड का भार पृथ्वी की गहराई मे जाने के साथ-साथ तेजी से घटना चाहिये। पृथ्वी-केंद्र पर पहुँच कर उसका भार बिल्कुल खत्म हो जायेगा, क्योकि उसके गिर्द के कण उसे सभी दिशाओ मे समान बल से खीचेंगे।

अत पिंड का अधिकतम भार पृथ्वी-तल पर ही होता है तल से ऊपर या नीचे (गहराई मे) जाने पर उसका भार कम हो जाता है[1]।

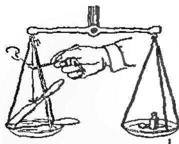
गिरते पिंड का वजन

आपने कभी ध्यान दिया है कि जिस क्षण लिफ्ट नीचे उतरना शुरू करती है, कितना अजीब सा महसूस होता है? शरीर क्षण भर को असाधारण रूप से हल्का हो जाता है, मानो आप गहरी खाई मे गिर रहे हैं यह और कुछ नही, बल्कि भारहीनता की अनुभूति है। गति के प्रथम क्षण, जब परो तले फर्श नीचे गिरना शुरू हो जाता है, आप फर्श का वेग तुरत प्राप्त नही करते, जडत्व के कारण वही उसी ऊँचाई पर रुके रह जाते हैं। इसीलिये आपका शरीर फर्श को लगभग नही दबाता, अर्थात् शरीर का भार काफी कम हो जाता है। पर पल भर बाद ही यह विचित्र अनुभव समाप्त हो जाता है आपका शरीर त्वरित वेग से गिरने लगता है, जबकि लिफ्ट का वेग स्थिर, समरूप होता है। लिफ्ट से अधिक तेज गिरने की कोशिश मे आपका शरीर पुन फर्श पर दबाव डालने लगता है अर्थात आपका भार पूर्णतया वापिस लौट आता है।

किसी मुग्दर को कमानीदार तुला के अकुश से लटका दें। अब तुला

---

[1] यह पूर्णतया सत्य होता, यदि पृथ्वी का घनत्व सर्वत्र एक रूप से समान होता, पर केंद्र की ओर जाने पर पृथ्वी का घनत्व बढता है। इसीलिये गुरुत्व-बल पृथ्वी की गहराई मे जाने पर शुरू-शुरू थोडा बढता है और बाद म घटने लगता है।



चित्र 24 गिरती वस्तु की भारहीनता दिखाने के लिये प्रयोग।

को झटके से नीचे गिरने दें (उसे हाथ से छोड़े नही) और ध्यान दें कि उसकी सुई किस ओर जाती है (आसानी के लिये तुला की दरार मे कागज का एक टुकड़ा फँसा दें और उसकी स्थिति पहले से नोट कर ले)। आपको विश्वास हो जायेगा कि गिरते वक्त सुई मुग्दर का पूर्ण भार नही दिखाती उससे काफी कम दिखाती है। यदि स्वतन्त्र रूप से गिरती तुला की सूई को आप देख सकते तो आप देखते कि गिरते वक्त मुग्दर बिल्कुल भारहीन है सूई शून्य पर रुकी है।

भारी से भारी पिंड भी स्वतन्त्र रूप से गिरते वक्त भारहीन रहता है इसका कारण समझना आसान है। पिंड का ' भार ' हम उस बल को कहते हैं, जिससे वस्तु अपने लटकन बिंदु को खीचता है या आधार को दबाता है। तुला के साथ गिरता हुआ पिंड तुला की कमानी बिल्कुल नही तानता क्योंकि कमानी उसके साथ साथ नीचे आ रही होती है। गिरने की प्रक्रिया मे पिंड किसी चीज को खीचता नही है, और न ही किसी चीज पर दबाव डालता है। अत गिरते हुए पिंड का भार कितना होगा-यह पूछने का अर्थ है पूछना पिंड कितना भारी है, जबकि वह भारहीन अवस्था म है?

XVII-वी शती मे ही यांत्रिकी के प्रतिष्ठापक गलीली ने लिखा था[1] हम कधो पर बोझ तब महसूस करते हैं, जब हम उसके गिरने मे बाधा डालने की कोशिश करते हैं। पर यदि हम बोझ के वेग से ही नीचे की ओर गतिमान हो जायें, तब फिर कैसे वह हमे दाबेगा, तब कैसे वह हमें थकायेगा? यह वही हुआ, जसे हम किसी को भाला भोकना चाहते हैं और वह हमारे आगे उसी वेग से भागा जा रहा है, जिससे हम भाले के साथ उसकी ओर दौड़ रहे हैं।'

निम्न प्रयोग स्पष्ट रूप से उपरोक्त विचारो की सत्यता सिद्ध करता है, आप इसे सरलतापूर्वक कर सकते हैं।

---

[1] "नवीन विज्ञान के दो क्षेत्रों से सबद्ध गणितीय प्रमाण" नामक कृति मे।

सरल तुला के एक पलड़े पर बादाम फोड़ने वाली सँडसी इस प्रकार से रखें कि उसकी एक भुजा पलड़े पर हो और दूसरी भुजा डंडी के छोर से डोरी के सहारे लटकी हो (चित्र 24)। दूसरे पलड़े पर इतने बाट रखें कि तुला संतुलित हो जाय (डंडी क्षैतिज रहे)। माचिस की तीली जला कर डोरी के पास लायें, डोरी जल जायेगी और सँडसी की लटकी भुजा पलड़े पर गिरेगी।

तुला के साथ क्या होगा? भुजा गिरने के क्षण सँडसी वाला पलड़ा ऊपर उठेगा, नीचे झुकेगा या स्थिर रहेगा?

अब, जब आप जान चुके हैं कि गिरता हुआ पिंड भारहीन होता है, सही उत्तर आप स्वयं बता दे सकते हैं पलड़ा पल भर को ऊपर उठेगा।

सच भी है यद्यपि ऊपरी भुजा निचली से जुड़ी है, स्थिरावस्था की अपेक्षा गिरते समय वह निचली भुजा को कम शक्ति से दबाती है। सँडसी का कुल भार पल भर को घटता है और स्वाभाविक है कि पलड़ा ऊपर उठ जाता है।

तोप से चांद पर

सन् 1865–1870 के दरम्यान फ्रांस में जूल वेर्न का "तोप से छूटे, चांद पर पहुँचे" नामक विज्ञान-गल्प प्रकाशित हुआ था। इसमें एक असाधारण विचार है एक विशाल तोप के गोले में आदमियों समेत यान भर कर चांद पर भेजना! पुस्तक में इस योजना का इतना विज्ञान-सम्मत वर्णन है कि अधिकांश पाठकों के मन में उत्सुकता उठती है क्या सचमुच में इस विचार को मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता? ऐसे प्रश्न के बारे में बातें करना निश्चय ही दिलचस्प रहेगा।[1]

---

[1] पृथ्वी से कृत्रिम उपग्रहों और अंतरिक्षी राकेटों के छोड़े जा चुकने के बाद हम कह सकते हैं कि अंतरिक्ष यात्राओं के लिये राकेटों का प्रयोग होगा, तोप के गोलों का नहीं। पर उड़ने के क्षण जब राकेट के सभी ईंधन-कक्ष कार्यशील हो जाते हैं, राकेट की गति उन्हीं नियमों का पालन करती है, जिनका कि तोप के गोले। इसीलिये लेखक की ये बातें अप्रासंगिक नहीं हैं।—संपादक

पृथ्वी से गोले की ऊँचाई वही रह जाती है, जो बिंदु A पर थी, तो इसका अर्थ है कि वह पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है और उसके पथ की वक्रता का केंद्र पृथ्वी का ही केंद्र है। अब रह जाता है खंड AB (चित्र 25) की लंबाई ज्ञात करना। यह उस क्षैतिज पथ की लंबाई है, जो गोला प्रथम सेकेंड में तय करता है। इससे हमें ज्ञात होगा कि तोप के गोले को किस वेग से फेंकना चाहिये। त्रिभुज AOB की सहायता से यह कलन करना बिल्कुल कठिन नहीं है। OA–पृथ्वी की त्रिज्या (करीब 6 370 000 m) है, OC=OA BC=5 m, अतः OB=6370005 m। पिथागोरस प्रमेय में इन आंकड़ों का प्रयोग करने से प्राप्त होता है

$$AB^2 = (6\,370\,005)^2 - (6\,370\,000)^2$$

अंकिक क्रियायें सपन्न करने पर ज्ञात होता है कि पथ AB करीब 8 km के बराबर है।

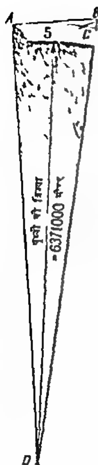
इस प्रकार, यदि हवा नहीं होती (क्षिप्र गतियों के लिये वह बहुत बड़ी बाधा है), तो 8 km/s वेग से क्षतिज दिशा में फेंका गया गोला पृथ्वी पर कभी वापस नहीं गिरता, वह उपग्रह की भाँति उसका अनवरत चक्कर लगाता रहता।

पर यदि गोले को और भी अधिक वेग से फेंका जाय, तब कहाँ उड़ेगा वह? नभ-यांत्रिकी में सिद्ध किया जाता है कि 8 9 km/s (10 km/s तक) के आरंभिक वेग से चला हुआ गोला पृथ्वी के गिर्द दीर्घवृत्त निरूपित करता है। दीर्घवृत्त उतना ही दीर्घ (लमड़ा हुआ) होगा, जितना बड़ा गोले का आरंभिक वेग होगा। आरंभिक वेग 11 2 km/s होने पर गोले का पथ एक खुला, असवृत्त वक्र (परवलय) होगा, अर्थात गोला पृथ्वी से सदा के लिये दूर होता जायेगा (चित्र 26)।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि तोप के गोले के भीतर बैठकर चाँद तक पहुँचना सिद्धांततः संभव है इसके लिये इतना ही आवश्यक है कि गोले को पर्याप्त वेग से फेंका जाये।[1]

---

[1] इसमें उत्पन्न होने वाली कठिनाइयाँ बिल्कुल दूसरी तरह की हैं। 'मनोरंजक भौतिकी" के दूसरे भाग तथा मेरी अन्य पुस्तक "अंतर्ग्रही यात्रायें" में इस प्रश्न का सविस्तार अध्ययन किया गया है।



चित्र 25 तोप का गोला पृथ्वी पर कभी वापस न गिरे, इसके लिये उसके आवश्यक वेग का कलन।

पहले यह देखें कि कम से कम सैद्धांतिक तौर पर तोप इस प्रकार दागी जा सकती है या नहीं कि उसका गोला पृथ्वी पर कभी वापस न गिरे। सिद्धांत इसकी सम्भावना को मानता है। तोप से क्षैतिज छोड़ा गया गोला पृथ्वी पर ही क्यों गिरता है? क्योंकि पृथ्वी गोले को आकर्षित करते हुए उसके पथ को वक्रित करती है, गोला सरल रेखा पर नहीं, वक्र रेखा पर चलता है, जो निरंतर पृथ्वी की ओर मुड़ती जाती है और इसीलिये अन्ततोगत्वा वह जमीन पर आ गिरता है। यह सत्य है कि धरातल भी वक्र है पर गोले का पथ उससे कहीं अधिक वक्रित होता है। यदि गोले के पथ की वक्रता इतनी कम कर दी जाये कि वह पृथ्वीतल की वक्रता के बराबर हो जाये, तो गोला कभी भी पृथ्वी पर नहीं गिरेगा! वह पृथ्वी के केंद्र को अपना केंद्र बना कर एक वक्र पर चलता रहेगा, अन्य शब्दों में वह पृथ्वी का एक उपग्रह बन कर रह जायेगा जैसे कोई दूसरा चंद्रमा हो।

पर क्या किया जाय कि तोप से छुटा गोला पृथ्वीतल से कम वक्रित पथ पर चले? इसके लिये उसे सिर्फ पर्याप्त वेग देना आवश्यक है। चित्र 25 पर ध्यान दें, जिसमें पृथ्वी के गोले के एक अंश का काट दिखाया गया है। पहाड़ की चोटी (बिंदु A) पर एक तोप रखा है। पहाड़ की ऊँचाई नगण्य मान लेते हैं। क्षैतिज दिशा में तोप से प्रक्षिप्त गोला एक सेकंड बाद बिंदु B पर होता, यदि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति बाधक नहीं बनती। पर आकर्षण शक्ति स्थिति में परिवर्तन ला देती है। उसके प्रभाव के कारण गोला एक सेकेंड बाद बिंदु C पर होगा। पाँच मीटर–यह वही दूरी है, जो शून्य में धरातल के निकट स्वतंत्र गिरती हुई वस्तु अपनी गति के प्रथम सेकेंड में तय करती है। यदि 5 मीटर नीचे आने के बाद भी

पृथ्वी से गोले की ऊँचाई वही रह जाती है, जो बिंदु A पर थी, तो इसका अर्थ है कि वह पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है और उसके पथ की वक्रता का केंद्र पृथ्वी का ही केंद्र है। अब रह जाता है पथ AB (चित्र 25) की लंबाई ज्ञात करना। यह उस क्षैतिज पथ की लंबाई है, जो गोला प्रथम सेकेंड में तय करता है। इससे हमें ज्ञान होगा कि तोप से गोले को किस वेग से फेंकना चाहिये। त्रिभुज AOB की सहायता से यह कलन करना बिल्कुल कठिन नहीं है। OA–पृथ्वी की त्रिज्या (करीब 6 370 000 m) है, OC=OA, BC=5 m, अतः OB=6370005 m। पिथागोरस प्रमेय में इन आँकड़ों का प्रयोग करने से प्राप्त होता है

$$AB^2 = (6\,370\,005)^2 - (6\,370\,000)^2$$

गणितीय क्रियायें संपन्न करने पर ज्ञात होता है कि पथ AB करीब 8 km के बराबर है।

इस प्रकार, यदि हवा नहीं होती (क्षिप्र गतियों के लिये वह बहुत बड़ी बाधा है), तो 8 km/s वेग से क्षैतिज दिशा में फेंका गया गोला पृथ्वी पर कभी वापस नहीं गिरता, वह उपग्रह की भाँति उसका अनवरत चक्कर लगाता रहता।

पर यदि गोले को और भी अधिक वेग से फेंका जाये, तब कहाँ उड़ेगा वह? नभ-यांत्रिकी में सिद्ध किया जाता है कि 8 9 km/s (10 km/s तक) के आरंभिक वेग से चला हुआ गोला पृथ्वी के गिर्द दीर्घवृत्त निरूपित करता है। दीर्घवृत्त उतना ही दीर्घ (लमडा हुआ) होगा, जितना बड़ा गोले का आरंभिक वेग होगा। आरंभिक वेग 11 2 km/s होने पर गोले का पथ एक खुला, असवृत्त वक्र (परवलय) होगा, अर्थात गोला पृथ्वी से सदा के लिये दूर होता जायेगा (चित्र 26)।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि तोप के गोले के भीतर बैठकर चाँद तक पहुँचना सिद्धांततः संभव है इसके लिये इतना ही आवश्यक है कि गोले को पर्याप्त वेग से फेंका जाये।[1]

---

[1] इसमें उत्पन्न होने वाली कठिनाइयाँ बिल्कुल दूसरी तरह की हैं। "मनोरंजक भौतिकी" के दूसरे भाग तथा मेरी अन्य पुस्तक "अंतर्ग्रही यात्रायें" में इस प्रश्न का सविस्तार अध्ययन किया गया है।



चित्र 26 8 km/s और इससे अधिक वेग से प्रक्षिप्त गोले के पथ।

(उपरोक्त विचारक्रम इस मान्यता पर आधारित है कि गोले की गति में वातावरण बाधक नहीं बनता। पर वायु प्रतिरोध की उपस्थिति के कारण इतने बड़े वेगों को प्राप्त करना दरअसल काफी मुश्किल है, या हो सकता है कि बिल्कुल ही असंभव है।)

चंद्र यात्रा जूल वेर्न की कल्पना और सच्चाई

जिन लोगों ने उपरोक्त उपन्यास को पढ़ा है, उन्हें चंद्र-यात्रा का एक मनोरंजक क्षण याद होगा। गोला ऐसे स्थान को पार कर रहा होता है, जहाँ पृथ्वी और चांद—दोनों का आकर्षण-बल समान है। यहां की घटनायें सचमुच में परिकथाओं की याद दिलाती हैं गोले की सभी वस्तुएं भारहीन हो जाती हैं और यात्री उछल-उछल कर बिना किसी आधार के हवा में लटक जाते हैं।

वर्णन बिल्कुल सही किया गया है पर उपन्यासकार ने इस पर ध्यान नहीं दिया कि समान आकर्षण वाले बिंदु को पार करने के पहले और बाद भी यही अवस्था होनी चाहिये थी। यह सरलतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है कि गोले के भीतर यात्रियों और सभी अन्य वस्तुओं को सुदूर उड़ान के प्रथम क्षण से ही भारहीन हो जाना था।

यह असंभव लगता है, पर मुझे विश्वास है कि आप जल्द ही आश्चर्य करेंगे 'इतनी बड़ी गलती पर मैंने खुद क्यों नहीं ध्यान दिया!'

जूल वेन के इसी उपन्यास से एक उदाहरण लें। आप निश्चय ही यात्रियों के आश्चर्य को नहीं भूले होंगे, जब उन्होंने मरे कुत्ते की लाश को बाहर फेंक दिया और देखा कि लाश वापस जमीन पर नहीं गिर रही है, गोले के साथ साथ आगे चली आ रही है। उपन्यासकार ने इस परिघटना का सही वर्णन किया है और उसकी सही व्याख्या की है। शून्य में सभी वस्तुएं सचमुच समान वेग से गिरती हैं पृथ्वी का आकर्षण सभी वस्तुओं को समान त्वरण प्रदान करता है। हमारे उदाहरण में भी पृथ्वी का आकर्षण गोले और लाश दोनों को समान अभिपाती वेग (समान त्वरण) देता है। यदि और सही कहें तो, तोप से प्राप्त आरम्भिक वेग दोनों ही के लिये समान रूप से कम होता है, समान रूप से घटता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि पथ के हर बिंदु पर गोले का वेग और लाश का वेग आपस में बराबर हैं। इसीलिये गोले से फेंकी गयी लाश उनके साथ चलती रहती है, उनसे पीछे नहीं छूटती।

लेकिन उपन्यासकार ने इस पर ध्यान नहीं दिया यदि कुत्ते की लाश गोले के बाहर होने पर पृथ्वी की ओर नहीं गिरती, तो गोले के भीतर क्या गिरती है? आखिर एक ही तो बल बाहर और भीतर काम कर रहा है! गोले के भीतर कुत्ते के शरीर को बिना किसी आलंब के रखने पर उसे जैसे का तैसे व्योम में लटक जाना चाहिये उसका वेग बिल्कुल गोले के वेग के बराबर है, अतः गोले के सापेक्ष वह अचल रहता है।

जो बात कुत्ते के लाश के लिये सही है, वही यात्रियों के शरीरों और गोले के भीतर अन्य सभी वस्तुओं के लिये सही है पथ के हर बिंदु पर उन सबका वेग वही है, जो गोले का है, अतः उन्हें गिरना नहीं चाहिये, चाहे वे निरालंब ही क्यों न हों। उड़ते गोले के फर्श पर खड़ी कुर्सी के पैरों को ऊपर कर के छत पर टिका दिया जा सकता है, वह "नीचे" नहीं गिरेगी, क्योंकि वह छत के साथ-साथ आगे चलना जारी रखेगी। यात्री इस कुर्सी पर पैर ऊपर और सिर नीचे कर के बैठा रह सकता है, पर फर्श पर गिरने की कोई प्रवृत्ति उसे महसूस नहीं होगी। कौन सा बल उसे गिरने को बाध्य कर सकता है? यदि वह गिरती ही, अर्थात फर्श के निकट आने लगती तो इसका अर्थ होता कि गोला कहीं अधिक वेग से चल रहा है, बनिस्बत कि यात्री (अन्यथा कुर्सी फर्श के निकट नहीं

पाती)। पर यह संभव नहीं है। हम जानते हैं कि गोले के भीतर सभी वस्तुएं वही त्वरण रखती हैं, जो स्वयं गोले का है।

उपन्यासकार ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। उसने सोचा कि मुक्त रूप से गतिमान गोले के भीतर वस्तुएं, जो मिश्र आकर्षण बल के प्रभाव में हैं, अपने आसनों पर उसी तरह दबाव डालेंगी, जैसे गोले की अचलावस्था में डाला करती थीं। जूल वर्न भूल गया कि पिंड और उसका आधार एक दूसरे पर दाब नहीं डाल सकते, यदि वे व्योम में गतिमान हैं और समान त्वरण रखते हैं, जो उन्हें आकर्षण बल द्वारा मिल रहा है (अन्य बाह्य बल – वायु का संवाहक व प्रतिरोधी बल – अनुपस्थित हैं)।

निष्कर्ष निकलता है कि गोले के भीतर हवा में स्वतंत्र उड़ानें भरने के लिये यात्री उसी क्षण से भारहीन हो गये होंगे, जिस क्षण गोला तोप के प्रभाव से बाहर निकला होगा। उसी की तरह गोले के भीतर अन्य सारी वस्तुएं भी भारहीन हो गयी होंगी। भारहीनता के आधार पर यात्री सरलतापूर्वक निर्धारित कर सकते थे कि वे व्योम में उड़ रहे हैं या तोप की नली में ही स्थिर बैठे हैं। पर उपन्यासकार वर्णन करता है कि नभ यात्रा के आरंभ में आधे घंटे तक लोग सिर खपाते रहे कि वे उड़ रहे हैं या जमीन पर ही पड़े हैं

"–निकोल, हम उड़ भी रहे हैं या नहीं?

निकोल और अरदान ने देखा कि गोले में किसी प्रकार का कंपन नहीं है।

–सचमुच! हम उड़ रहे हैं या नहीं? –अरदान ने प्रश्न दुहराया।

–या आराम से फ्लोरीडा की धरती पर लेटे हैं? –निकोल ने पूछा।

–या मेक्सीकन खाड़ी के तल पर? –मिशेल ने जोड़ा"।

इस प्रकार के संदेह स्टीमर-यात्रियों के मन में उठ सकते हैं, पर स्वतंत्र रूप से गतिमान गोले के यात्रियों के मन में नहीं। स्टीमर के यात्री का भार बना रहता है, पर गोले में यात्री अवश्य ही ध्यान देंगे कि वे बिल्कुल भारहीन हो गये हैं।

यह कल्पित गोला-यान एक अजूबा सा नजर आयेगा। यह एक नन्ही सी दुनिया होगी, जिसमें पिंडों के भार नहीं होते, हाथ से छूट कर वे

गिरने की बजाय वहीं रुके रहते हैं, वस्तुए किसी भी स्थिति मे सतुलन नही खोती, गिरे बोतल से पानी नही छलकता। यह सब "चद्र-यात्रा" के लेखक की दृष्टि से छूटा रह गया, और ये आश्चयजनक सभावनायें उपन्यासकार की कल्पना का कितना विस्तृत करने का सामथ्य रखती हैं।[1]

खोटे तराजू से सही तौल

सही तौल के लिये क्या अधिक महत्त्व रखता है तराजू या बाट?

यदि आप सोचते हैं कि दोनो ही का समान महत्त्व है, तो आप गलत हैं खोटे तराजू से भी सही तौल ज्ञात किया जा सकता है, यदि हमारे पास सही बाट हो। खोटे तराजू से सही तौल ज्ञात करने के कई तरीके हैं, इनमे से दो को हम देखेंगे।

पहली विधि महान रसायनज्ञ दिमित्री मदलीव द्वारा बतायी गयी थी। शुरू में किसी भी एक पलडे पर कोई भारी वस्तु रखते हैं। उसका भार तौली जाने वाली वस्तु के भार से अधिक होना चाहिये। दूसरे पलडे पर बाटो की मदद से इस भार को सतुलित करते हैं। इसके बाद बाटो वाले पलडे पर तौली जाने वाली वस्तु रखते हैं और इतने बाट हटा लेते हैं कि टूटा हुआ सतुलन पुन स्थापित हो जाये। हटाये गये बाटो का भार ही इष्ट भार होगा, क्योकि तौली जाने वाली वस्तु बिना सतुलन बिगाडे उनका स्थान ले सकती है।

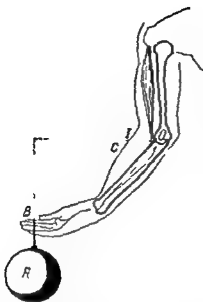
इस विधि को स्थायी भार की विधि कहते हैं। यह विशेष कर उस स्थिति मे सुविधाजनक है, जब एक के बाद एक कई वस्तुओ को तौलने की जरूरत पडती है। प्रारभिक भार अपनी जगह से नही हटाते, उसका उपयोग सभी तौलो में करते हैं।

दूसरी विधि, जिसे उसका अविष्कार करने वाले वैज्ञानिक के नाम पर

---

[1] भारहीनता की परिस्थितियो का यथाथ वणन आज अतरिक्ष यात्रियो की जुबानी सुना जा सकता है। राकेटो मे खीचे गये चल चित्र भी प्रदशित किये जाते हैं। टेलीवीजन के पर्दे पर अतरिक्ष मे उडते यात्रियो और उनके भारहीन 'राकेटी-जीवन' को देखने का सयोग हमे अक्सर प्राप्त होता रहता है। — सपादक

4



चित्र 27 आदमी की केहुनी द्वितीय श्रेणी का उत्तोलक है। बल बिंदु I पर क्रियाशील है, उत्तोलक का टेक बिंदु O पर है, प्रतिरोध (भार R) बिंदु B पर लग रहा है। IO की दूरी से BO करीब 8 गुना अधिक है। (चित्र XVII-वी शती के फ्लोरेंस वासी वैज्ञानिक बोरेल की एक रचना 'जीव-जंतुओं की गतियां' से ली गयी है। इस पुस्तक में पहली बार शरीरक्रिया विज्ञान में यांत्रिकी के नियमों का उपयोग किया गया है)

"बोर्डे विधि" कहते हैं, इस प्रका है एक पलड़े पर तौली जाने वाल वस्तु रखते हैं और दूसरी पर रे रखना शुरू करते हैं। तराज़ू सन्तुलित हो जाने पर वस्तु हटा लेते हैं (बालू नहीं छूते) और उसकी जगह बाट रखना शुरू करते हैं। जब संतुलन पुनः स्थापित हो जाता है, बाटों का भार तौल जाने वाली वस्तु के भार के बराबर होता है। कारण स्पष्ट है बाट बिना संतुलन बिगाड़े पल से वस्तु को प्रतिस्थापित कर सकते हैं। इसीलिये इस विधि को 'प्रति स्थापन विधि" भी कहते हैं।

यदि आपके पास सही बाट हैं तो आप इस विधि का उपयोग कमानीदार तुला के साथ भी कर सकते हैं, जिसमें सिर्फ एक पलड़ा होता है। इसमें बालू की आवश्यकता भी नहीं है। तौल जाने वाली वस्तु को पलड़े पर रख कर नोट कर लें कि तुला की सुई पैमाने के किस अंश (चिह्न) पर रुकी है फिर वस्तु को हटा कर पलड़े पर इतने बाट रखते हैं कि सुई पुनः उसी चिह्न पर आ रुके। स्पष्ट है कि इन बाटों का कुल भार ही वस्तु का भार होगा

स्वयं से भी शक्तिमान

हाथ से आप कितना बड़ा बोझ उठा सकते हैं? मान लें कि 10 kg। आप सोचते हैं कि आपके हाथों में पेशियों की शक्ति यही है? गलतफहमी

है। पेशिया वही अधिक शक्तिशाली हैं। उदाहरणार्थ, आप अपने हाथ के तथाकथित द्विशिरा पेशी की क्रिया पर ध्यान दें (चित्र 27)। उसका एक सिरा केहुनी की हड्डी के पास जुडा है (यही हड्डी हाथ रूपी उत्तोलक की टेक भी है)। बोझ इस सजीव उत्तोलक के दूसरे सिरे पर क्रियाशील है। भार से टेक बिंदु, अर्थात जोड, तक की दूरी पेशी के सिरे से टेक तक की दूरी से 8 गुनी अधिक है। अर्थात यदि बोझ 10kg है, तो पेशी उसे 8 गुने अधिक बल से उठाती है। हाथ द्वारा 8 गुना अधिक बल लगा कर पेशी 10 kg नही, 80 kg उठा सकती है।

हम बिना किसी अतिशयोक्ति के कह सकते हैं कि हर आदमी अपने आप से कही अधिक शक्तिशाली होता है, अर्थात हमारी पेशिया जो बल लगाती हैं, वह हमारी क्रियाओ मे प्रकट होने वाले बल से काफी बडा होता है।

क्या इस प्रकार की सरचना को मितव्ययी या विवेकसगत कहा जा सकता है? प्रथम दृष्टि मे नही लगता—यहा हम बल की बरबादी देखते हैं, जिसके बदले में कुछ भी नही मिलता। पर यात्रिकी के एक पुराने स्वर्ण नियम" का स्मरण करे ताकत की बरबादी कदमो की आबादी। बल मे हानी स्थानातरण मे लाभ देता है और इसीलिये वेग भी अधिक प्राप्त होता है। 8 गुना बल खर्च करने से हाथ 8 गुना जरद हिल डुल सकता है।

जीवो मे पेशियो के जुडने की जो विधि हम देखते हैं, वह हाथ पैर को फुर्तीलापन देता है। जीवनसघर्ष मे यह बात शक्ति से कही अधिक महत्त्व रखती है। हम काफी सुस्त जीव होते, यदि हमारे हाथ-पर इस सिद्धात पर नही बने होते।

तीक्ष्ण वस्तुए चुभती क्यों हैं?

आपने कभी इस प्रश्न पर सोचा हैं कि सुई इतनी आसानी से क्यो चीजो के आर-पार चुभ कर निकल जाती है? मोटे कपडे या गत्ते को पतली सुई से भोकना क्यो आसान है बनिस्बत कि भोथी काटी से? देखने पर लगता है कि दोनो ही स्थितिया मे बल समान लगते हैं।

बल समान हैं, पर दबाव या दाब समान नही है। प्रथम स्थिति मे

सारा बल सुई की नोक पर सकेंद्रित हो जाता है और दूसरी स्थिति में वही बल बड़े क्षेत्र पर वितरित होता है, क्योंकि काटी भोथी है। अत सुई का दाब भोथी काटी के दाब से कहीं अधिक है, हालांकि हाथ से हम समान बल लगाते हैं।

हर आदमी यही कहेगा कि 20 दांतो वाला हेंगा (ट्रैक्टरो मे चक्रदार हगे होते हैं) अधिक गहराई तक जमीन ढीली कर सकता है, बनिस्बत की उसी भार का 60 दांतो वाला हगा। क्यो? क्योंकि दूसरी स्थिति की अपेक्षा पहली मे हर दांत पर अधिक बोझ पड़ता है।

जब भी दाब का सवाल उठे, बल के सिवा उस क्षेत्र को भी ध्यान म रखना चाहिये, जिस पर बल कार्यशील है। जब हमे कहा जाता है कि एक आदमी का वेतन 100 रूबल है, हम नही जानते कि यह कम है या अधिक। इसके लिये जानना चाहिये कि यह वेतन मासिक है या वार्षिक। ठीक इसी प्रकार से बल की क्रिया इस पर निर्भर करती है कि वह एक वर्ग सेंटीमीटर पर वितरित है या वर्ग मिलिमीटर के सौंवे भाग पर सकेंद्रित है।

भुरभुरे बर्फ पर स्की पहन कर आप चल सकते हैं, पर बिना स्की के आप बर्फ मे धस जाते हैं। क्यो? क्योंकि प्रथम स्थिति म आपके शरीर का दाब कही बड़े तल पर वितरित होता है। उदाहरणतया, यदि तलुवों के क्षेत्रफल से स्की के तल का क्षेत्रफल 20 गुना कम है, तो पैरो की अपेक्षा स्की से हम बर्फ को 20 गुनी कम शक्ति से दबाते हैं। भुरभुरा बर्फ इस दाब को सह जाता है, पर खाली पैरो से पड़ने वाले दाब को नही सह पाता।

इसी कारणवश दलदली जमीन पर काम करने वाले घोड़ो के खुरो पर खास 'जूते' पहनाये जाते हैं, जिससे पैरो की टेक का क्षेत्रफल बढ़ जाता है और जमीन पर दाब घट जाता है। कुछ दलदली हिस्सा में रहने वाले लोग भी ऐसे 'जूते' पहना करते हैं।

नदी या तालाब पर यदि बर्फ की परत काफी पतली हो, तो उस पर खड़े होकर नही, लेटकर रेंगते हुए चलते हैं, ताकि शरीर का भार अधिक बड़े क्षेत्र पर वितरित किया जा सके।

और अत म, टंकों और चक्रपट्टी पर चलने वाले ट्रैक्टरो के भुरभुरा जमीन मे नही धसने का गुण इसी से समझाया जा सकता है उनका भार काफी विस्तृत टेक-क्षेत्र पर वितरित रहता है। पट्टे पर चलने वाली 8 टन

से अधिक भारी गाडी जमीन के 8 वर्ग सेंटीमीटर पर 6000 g से अधिक दाब नही डालती। इसी दृष्टिकोण से चक्कों की बजाय पट्टों पर चलने वाली मोटोगाड़ियां दलदल पर भार ढोने के काम मे अधिक उपयोगी हो सकती हैं। इस तरह का ट्रक 2 टन का बोझ ढोने वक्त जमीन के एक वर्ग सेंटीमीटर पर सिर्फ 160 g दाब डालता है। इसीलिये वह दलदली इलाकों मे मजे से चल सकता है।

इन स्थितियो मे बडा क्षेत्रफल-क्षेत्र तकनीकी तौर पर उतना ही उपयोगी है, जितना सुई के उदाहरण मे सूक्ष्म क्षेत्र।

उक्त बातो से स्पष्ट है कि वस्तुओं की नोक सिर्फ अपने नगण्य क्षेत्रफल के कारण ही चुभती है, जिस पर बल वितरित होता है। ठीक इसी कारणवश तेज छूरी अधिक अच्छी तरह काटती है, बनिस्बत कि भोथी बल कम व्योम में संकेंद्रित होता है।

इस प्रकार, तीक्ष्ण वस्तुएं सरलतापूर्वक चुभती और काटती हैं, क्योंकि नोक और धार पर अधिक दाब संकेंद्रित होता है।

सैविफान की तरह

साधारण स्टूल पर बैठने से वह कठोर क्यो लगता है, जबकि उसी लकडी की बनी कुर्सी मुलायम लगती है? कठोर रस्सी से बुनी खाट भी मुलायम लगती है, क्यो?

समझना कठिन नहीं है। साधारण स्टूल पर बैठने की जगह चौरस होती है और हमारा शरीर बहुत छोटे क्षेत्रफल वाले तल पर उसे स्पर्श करता है। धड का सारा बोझ इसी छोटे तल पर संकेंद्रित होता है। कुर्सी पर बैठने लायक जगह थोडी गहरी (नतोदर) होती है। हमारा शरीर उसके तल के साथ अधिक बडे क्षेत्र पर सटा होता है और इसी क्षेत्र पर हमारे धड का भार वितरित होता है। यहां स्पर्श-तल के इकाई क्षेत्रफल पर कम बोझ पडता है। कम दाब होता है।

इस प्रकार, बात सिर्फ दाब के समरूप वितरण मे है। जब हम मुलायम गद्दे पर सोते हैं, हमारे शरीर के ऊबड-खाबड तलो के अनुरूप उसमे गड्ढे आदि बन जाते हैं। हमारे शरीर के निचले भाग के तल पर (जो विस्तर के साथ स्पर्श मे है) दाब का वितरण पर्याप्त समान रूप से होता है,

जिसके कारण हर वर्ग सेंटीमीटर पर कुछ ग्राम के बराबर ही भार रहता है। आश्चर्य नहीं कि इन परिस्थितियों में हम बहुत आराम से महसूस करते हैं।

उपरोक्त बात को संख्याओं में भी व्यक्त किया जा सकता है। वयस्क आदमी के शरीर पर तल का क्षेत्रफल करीब 2 m² या 20000 cm² होता है। मान लें कि जब हम बिस्तर पर लेटते हैं, हमारे शरीर के पूरे तल का करीब 1/4 भाग, अर्थात 0.5 m² या 5000 cm² उसके साथ सटा रहता है। हमारे शरीर का भार (औसत) 60 kg या 60000 g है, अतः हर वर्ग सेंटीमीटर पर सिर्फ 12 ग्राम दाब पड़ता है। जब हम सख्त तख्ते पर लेटते हैं, तो हमारे शरीर के कुछ छोटे उभरे हिस्से ही सम्पर्क बनाते हैं, जिनका कुल क्षेत्रफल कुछेक सौ वर्ग सेंटीमीटर ही होता है। अतः हर वर्ग सेंटीमीटर पर दसेक ग्राम की बजाय कोई आधा किलोग्राम का दाब पड़ता है। यह अन्तर महान है और हम अपने शरीर द्वारा तुरंत ही इसका अनुभव कर लेते हैं और कहते हैं कि काफी "कड़ा' है।

पर सबसे कठोर बिस्तर भी हमें अत्यंत मुलायम लग सकता है, यदि दबाव उसके बड़े हिस्से पर समान रूप से वितरित किया जा सके। कल्पना कीजिये कि आप नर्म गीली मिट्टी पर लेटते हैं। उसपर आपके शरीर की छाप उभर आती है। अब आप उठकर मिट्टी को सूखने दें (सूखने पर मिट्टी 5–10% 'घटती' या 'सिकुड़ती" है, पर मान लें कि ऐसा नहीं होता)। जब वह सूख कर पत्थर की तरह कठोर हो जाये, तो आप पुनः उसपर बने अपने शरीर के सांचे में लेट जायें। आप अपने को मुलायम रूई के गद्दे पर महसूस करेंगे, कोई भी कठोरता नहीं लगेगी, यद्यपि आप अक्षरशः पत्थर पर ही लेटे हैं। आप किस्से के लेविफान की तरह बन जायेंगे, जिसके बारे में लोमोनोसोव ने कविता लिखी है

पत्थरों पर सोता निर्विकार
करता कठोरता का तिरस्कार
वज्र सा जीता शक्तिमान
चट्टानों को नर्म मिट्टी मान।

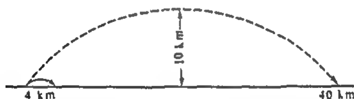
पर कठोरता के प्रति हमारी असंवेदनाशीलता का कारण हमारी 'वज्र शक्ति" नहीं है, बल्कि विस्तृत आलंब क्षेत्र पर हमारे शरीर के भार का समरूप वितरण है।

अध्याय 3

परिवेश का प्रतिरोध

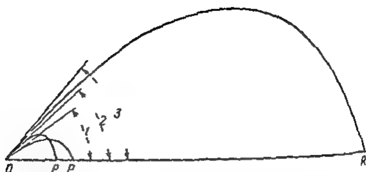
हवा में बुलेट

बुलेट की उडान मे हवा बाधा डालती है, यह सभी जानते हैं। पर हवा की रोध शक्ति कितनी है, इसका सही अन्दाजा बहुत कम ही लोग लगा पाते हैं। अधिकांश लोग सोचते हैं कि हवा जैसा नम परिवेश, जिसे साधारणतया हम महसूस भी नही करते, बदूक की गोली के अबाध वेग म कोई बडी बाधा कैसे डाल सकता है।



चित्र 28 हवा व निर्वात मे गोली की उडान। बडा चाप उस पथ को द्योतित करता है, जिसपर गोली वातावरण की अनुपस्थिति मे चलती। बायें छोटा चाप गोली का हवा म वास्तविक पथ द्योतित करता है।

पर यदि चित्र 28 पर ध्यान देंगे, तो आप समझ जायेंगे कि हवा बुलेट के रास्ते मे सचमुच गभीर रुकावट है। आरेख मे बडा चाप उस पथ को दर्शाता है, जिस पर गोली हवा की अनुपस्थिति मे चलती। 45° के कोण पर करीब 620 m/s के आरभिक वेग से प्रक्षिप्त गोली बदूक से निकल कर बहुत बडा महरावी पथ तय करती, जिसकी ऊचाई 10 km होती और लबाई करीब 40 km होती, पर यथार्थ परिस्थितिया म गोली अपेक्षाकृत अत्यत छोटा चाप बनाती है और बदूक से सिर्फ 4 km की दूरी पर गिर जाती है। उसी आरेख मे दर्शित यह चाप बिल्कुल नगण्य लगता



चित्र 29 अतिदूर मारक तोप के झुकाव कोणों को बदलने पर गोले की उडानों में अंतर, कोण 1 पर गोला p' बिंदु पर गिरता है, कोण 2 पर- p पर, कोण के 3 हो जाने पर उड़ान काफी लंबी हो जाती है, क्योंकि गोला वातावरण की विरल परतों में भ्रमण करता है।

है। यह है परिणाम हवा के प्रतिरोध का। यदि हवा नहीं होती तो दुश्म पर 40 km की दूरी से गोली चलायी जा सकती थी। उनके लिये य 10 km की ऊंचाई से छर्रों की बौछार होती।

अतिदूर की चांदमारी

दुश्मन पर सौ से अधिक किलोमीटर की दूरी से गोली चलान साम्राज्यवादी युद्ध के अंत (1918) में जर्मन तोपों ने शुरू किया, ज अंग्रेज और फ्रांसीसी विमानों ने जर्मनों के हवाई आक्रमण को निष्क्रिय क दिया। जर्मन सैनिक मुख्यालय ने फ्रंट से करीब 110 km से भी दूर फ्रा की राजधानी पर गोले बरसाने के लिये तोपों का सहारा लिया।

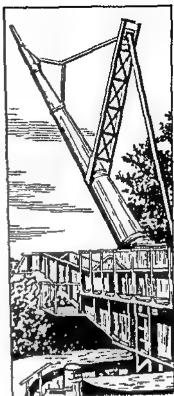
यह विधि बिल्कुल नयी थी, किसी ने भी इसका प्रयोग नहीं कि था। जर्मनों के हाथ यह विधि सिर्फ संयोगवश ही आयी थी। अधिक कोण पर बड़े वृहत कलीबरी तोपों से गोलेबारी करने पर देखा गया कि 20 km की बजाय गोले 40 km की दूरी पर गिरते हैं। यह परिणाम आशातीत था। पता चला कि वृहत आरंभिक वेग से गोले को सीधा ऊपर भेजने प वह ऊंचाई पर स्थित वातावरण के विरल परतों में प्रविष्ट हो जाता है जहां हवा का प्रतिरोध काफी नगण्य होता है। ऐसे क्षीण प्रतिरोधी परिवे

मे गोला अपने उडान पथ का बहुत बडा भाग तय कर लेता है और फिर सीधा नीचे जमीन की ओर गिरने लगता है। चित्र 29 दृष्ट रूप से दिखाता है कि तोप की नली का कोण बदलने पर गोलो के पथो मे कितना बडा अतर हो जाता है।

जर्मनो द्वारा 115 km दूर स्थित पेरिस पर गोले बरसाने के लिये अतिदूरमारी तोपो की परिरचना के आधार मे ये ही प्रेक्षण थे। सन् 1918 की गर्मियो मे यह तोप सफलतापूर्वक बन कर तैयार हो गया। उसने पेरिस पर तीन सौ से अधिक गोले फेंके।

बाद मे इस तोप के बारे मे जो कुछ पता चला, वह इस प्रकार से है।

यह इस्पात की एक विशाल नली थी। यह 34 m लबी थी और पूरी एक मीटर मोटी थी। दीवार की मुटाई 40 cm थी। अस्त्र का वजन 750 टन था। इसके 120 kg भारी गोले



चित्र 30 जर्मन तोप "कालोसल"। बाह्य रूप।

एक मीटर लबे और 21 cm मोटे थे। इसमे 150 kg बारूद डाला था। तोप दागते वक्त यह बारूद 5000 वायुमडलीय दबाव उत्पन्न करता था, जो गोले को 2000 m/s के आरभिक वेग से प्रक्षिप्त करता था। गोलेबारी 52° के उत्थान कोण पर की जाती थी। गोले का उडान-पथ एक विशाल चाप था, जिसका उच्चतम बिंदु जमीन से 40 km ऊपर, अर्थात सुदूर स्ट्रेटोस्फेयर मे था। अपने स्थान से पेरिस तक की दूरी – 115 km – वह 3.5 मिनट मे तय करता था जिसमे से 2 मिनट की उडान स्ट्रेटोस्फेयर में भरता था।

ऐसा था प्रथम अतिदूर मारक तोप, आधुनिक अतिदूर मारक तोपो का पूर्वज।

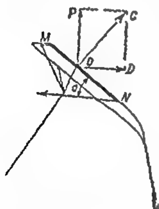
गोली (या गोले) का प्रारंभिक वेग जितना ही अधिक होगा, उस का प्रतिरोध उतना ही प्रबल होगा। यह वेग के अनुपात में नहीं बल्कि और तेजी से, वेग के उच्च घातों के अनुपात में बढ़ता है। यह वेग के परिमाण पर निर्भर करता है।

पतंग की उड़ान

आपने कभी समझने की कोशिश की है कि पतंग ऊपर कैसे उड़ती है, जबकि डोरी उसे नीचे खींचती है?

यदि आप इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं, तो आप यह भी समझ जाएंगे कि विमान कैसे उड़ता है, मैपल (गुलची वृक्ष) के बीज कैसे हवा में तैरते हैं और यहां तक कि बूमरैंग की विचित्र गति के कारणों को भी समझ सकेंगे। ये सारी परिघटनाएं एक ही प्रकार की हैं। वही हवा, जो गोली की गति में गंभीर बाधक होती है, न केवल पतंग व मैपल-बीज के उड़ने का कारण बनती है, बल्कि दसियों यात्रियों समेत भारी विमानों के भी उड़ने में सहायक बनती है।

पतंग के ऊपर उठने के कारण को समझने के लिये हम सरलीकृत आरेख का सहारा लेना पड़ेगा। माना कि रेखा MN (चित्र 31) पतंग का काट द्योतित करती है। जब हम पतंग उड़ाते हैं, हम उसे डोर के सहारे खींचते हैं। पूंछ के भार के कारण वह झुकी स्थिति में उड़ती है। माना कि यह गति दायीं से बायीं ओर की है। a द्वारा क्षितिज के साथ पतंग के झुकाव के कोण को व्यक्त करते हैं। अब देखें कि इस प्रकार से गतिमान पतंग पर कौन से बल कार्यशील हैं। हवा अवश्य ही उसकी गति में बाधा डालेगी और पतंग पर कोई दबाव डालेगी। यह दबाव चित्र 31 में तीर OC द्वारा दर्शाया गया है। चूंकि हवा समतल पर हमेशा लंबरूप से दबाव डालती है, रेखा



चित्र 31 पतंग पर क्रियाशील बल।

OC लब खीची गयी है MN के। बलो का समातर चतुभुज बना कर हम बल OC को दो घटको मे विघटित कर सकते हैं, बल OC की जगह पर हम दो बल OD और OP मिलेगे। उनमे से बल OD हमारे पतग को पीछे खीचता है और इसीलिये उसके आरभिक वग को कम कर देता है। दूसरा बल OP पतग को ऊपर उठाने मे लगा है, वह पतग के भार को कम करता है। यदि बल OP इतना बडा हो कि पतग के भार पर विजय प्राप्त कर ले, तो वह पतग को ऊपर उठा सकता है। यही कारण है कि क्यो पतग ऊपर उठती है, जबकि हम उसे पीछे की ओर खीचते हैं।

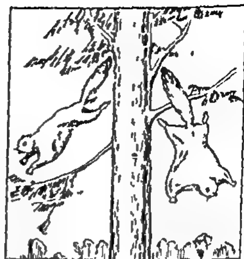
विमान भी पतग ही है, सिर्फ उसमे हमारे हाथो की गति प्रेरक शक्ति की जगह पर पखुडियो या प्रतिकारी चलित्रो की गति गति प्रेरक शक्ति का काम करती है, जो विमान को पीछे की गति दे कर उसे उठने को विवश करती है। यहा पर परिघटना को मोटा-मोटी ही रेखाक्ति किया गया है। दूसरी परिस्थितिया भी हैं, जो विमान के ऊपर उठने म सहायक होती हैं। उनके बारे मे अन्यत्र बात होगी।[1]

सजीव ग्लाइडर

आप देखते हैं कि विमान पक्षियो की नकल नही है, जैसा कि साधारणतया लोग सोचते है वह उडन गिलहरी या उडन-मछली से कही अधिक मिलता जुलता है। वैसे, उपरोक्त जीव अपनी उडने वाली झिल्लियो का उपयोग ऊपर उडने के लिय नही करते, बल्कि सिर्फ लबी छलागा (पामलट के शब्दो मे "तरती उडानो") के लिये करते हैं। उनके लिये बल OP (चित्र 31) पर्याप्त नही होता कि उनके शरीर के बोझ को पूणतया सतुलित कर सके वह सिर्फ उनके भार को कम कर देता है जिसकी मदद से वे बडी-बडी ऊचाइया से भी छलाग लगा सकते हैं (चित्र 32)। उडन गिलहरिया एक पेड की फुनगी (20–30 मी ऊची) से दूसरे पड की निचली शाखाओ पर छलाग लगाया करती हैं। लका और इस्ट इडीज

---

[1] दे "मनोरजक भौतिकी', दूसरी पुस्तक शीषक तरग और भवर"।



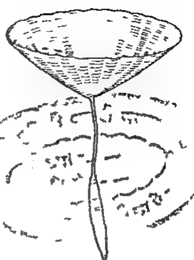
चित्र 32 उडन गिलहरियो की उडान। ऊँचाई से छलाग लगा कर वे 20-30 मीटर दूर उड सकती हैं।

मे काफी बडी उडन गिलहरिया होती हैं, जिन्हे तागुवान कहते हैं। वे आकार मे बिल्ली के बराबर होती हैं। डनो को फैलाने पर उनकी चौडाई आधे मीटर तक हो जाती है। इतनी बडी उडन की झिल्लिया अपेक्षाकृत बड़े वजन के बावजूद भी उन्हे 50 मीटर तक की उडान मे मदद देती हैं। मगुलास्थिक जो जोद व फिलिपाइन द्वीपो पर पाये जाते हैं, 70m तक की छलागे लगा सकते हैं।

पौधे बिना मशीन के उडते हैं

पौधे भी अपने फलो और बीजो को फलाने के लिये ग्लाइडरो का इस्तेमाल करते हैं। अनेक फलो और बीजो म बालो के गुच्छे लगे होते हैं (डडेलियम बकरदाढी कपास आदि की टीक), जो पराशूट का काम करते हैं। बहुतो म अवलब देने के लिये विशेष पख सी झिल्ली लगी होती है। ऐसे वनस्पति-ग्लाइडर शकुलो, मपलो, अल्मस बच, चमखरक, लसोटा व अनक छत्र-पुष्पो म देखे जाते हैं। केर्नेर फोन मरिलाउन की विख्यात पुस्तक 'पादपो का जीवन' मे निम्न पक्तिया पढ सकते हैं

"शांत हवा और धूप के दिन बहुत से बीज ऊर्ध्वमुखी वायु संवहन धाराओं के साथ काफी ऊपर उड़ आते हैं और सूर्यास्त के बाद कुछ दूरी पर अक्सर नीचे उतर आते हैं। इस तरह की उड़ानें पौधों को दूर-दूर तक फैलाने में उतना महत्त्व नहीं रखती, जितना पहाड़ी ऊंचाइयों, सीधी ढलानों पर बने छिद्रों, दरारों, चट्टानों आदि पर बीजों को पहुचाने में। ऐसी जगहों पर बीज दूसरी विधियों से नहीं पहुच सकते हैं। क्षैतिज पवन धारायें बीजों को बड़ी-बड़ी दूरियों पर पहुचा सकती हैं।

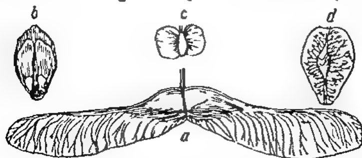


चित्र 33 बकरदाढ़ी का बीज

कुछ पौधों के बीज पख और पैराशूट से सिर्फ तभी तक जुड़े रहते हैं, जबतक कि उड़ते रहते हैं। थिसल के बीज हवा में आराम से उड़ते हैं, पर जैसे ही मार्ग में कोई बाधा आती है, बीज पैराशूट से अलग होकर जमीन पर गिर जाता है। यही कारण है कि दीवारों और बाड़ों के पास थिसल इतना बहुतायत में पनपते हैं। दूसरी स्थितियों में बीज हमेशा पैराशूट से जुड़ा रहता है"।

चित्र 33 व 34 में चंद "ग्लाइडर युक्त" बीज दिखाये गये हैं।

वनस्पति ग्लाइडर कई अर्थों में मानव निर्मित ग्लाइडरों से भी अच्छे हैं। वे अपने वजन की तुलना में कहीं बड़ा बोझ उठा लेते हैं। इसके



चित्र 34 पौधे के उड़ाऊ बीज, a–मैपल b–पाइन c–बरगद d–वच

अतिरिक्त, वानस्पति ग्लाइडर में स्वचालित स्थिरता होती है यदि झाऊँ चमेली के बीज को उलट दिया जाये, तो हवा में उसका उन्नतोदर भाग स्वयं नीचे हो जायेगा। यदि उसके मार्ग में बाधा आती है, तो वह अनुस्थिर नहीं खाता, बल्कि तैरता हुआ नीचे उतर आता है।

पैराशूटीस्ट की विलंबित छलांग

यहा आप पराशूटी-छलांग के निपुण खिलाडियों की वीरतापूर्ण छलांगों को याद कर सकते हैं, जो करीब 10 km की ऊंचाई से पैराशूट खोले बगैर ही छलांग लगाते हैं। अपने पथ का बहुत बड़ा हिस्सा तय करने के बाद ही वे पैराशूट के छल्ले को झटका देते हैं और सिर्फ आखिरी सौ-एक मीटर अपनी छतरियों के सहारे उड़ कर जमीन पर आते हैं।

बहुत से लोग सोचते हैं कि बिना पैराशूट के आदमी वैसे ही गिरता है, जैसे शून्य में पत्थर। पर यदि ऐसी बात होती, तो विलंबित छलांग वास्तविकता से बहुत कम समय तक जारी रह सकती और छलांग के अंतिम क्षण में वेग विशाल होता।

पर हवा का प्रतिरोध वेग बढ़ने में बाधक होता है। विलंबित छलांग में पैराशूटिस्ट का वेग सिर्फ प्रथम दस सेकेंडों में ही प्रथम सौ-एक मीटर तय करते वक्त बढ़ता है। वेग वृद्धि के साथ-साथ हवा के प्रतिरोध में इतनी तेजी से वृद्धि होने लगती है कि शीघ्र ही वह क्षण आ जाता है, जब वेग का बढ़ना रुक जाता है। त्वरित गति समरूप गति में परिणत हो जाती है।

गणन कर के यांत्रिकी के दृष्टिकोण से विलंबित छलांग का चित्र प्राप्त किया जा सकता है। छतरीबाज का त्वरित अभिपातन उसके वजन के अनुसार प्रथम 12 या उससे कुछ कम सेकेंडों तक ही जारी रहता है। इतने समय में करीब 400–500 मीटर नीचे गिरा जा सकता है और 50 m/s का वेग प्राप्त कर लिया जा सकता है। छतरी खुलने तक बाकी सारा पथ वह इसी वेग वाली समरूप गति से गिरता है।

वर्षा की बूंदें भी करीब इसी प्रकार गिरती हैं। फर्क बस इतना है कि अभिपातन का प्रथम अवकाश, जिसमें वेग बढ़ता रहता है, एक सेकेंड या इससे भी कम समय तक जारी रहता है। इसीलिये वर्षा की बूंद का

प्रतिम वेग इतना बड़ा नहीं होता, जितना छतरीबाज का वह बूंद के आकार के अनुसार 2 से 7 मीटर प्रति सेकेंड तक का हो सकता है।[1]

बूमरंग

यह मौलिक अस्त्र आदिम मानव के तकनीक की सबसे विकसित सृष्टि है। लंबे अर्से तक यह वैज्ञानिकों के आश्चर्य का कारण बना रहा। सचमुच मे, विचित्र और जटिल आकृतियां, जो बूमरैंग का पथ हवा में बनाता है (चित्र 35), किसी को भी सोच में डाल दे सकती हैं।

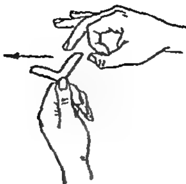
आधुनिक समय में बूमरंग की उड़ान का सिद्धांत विस्तारपूर्वक प्रतिपादित हो चुका है और उसकी उड़ान अब कोई चमत्कार नहीं रह गयी है। इन दिलचस्प विस्तारों में हम नहीं जायेंगे। सिर्फ इतना बता दें कि बूमरंग



चित्र 35 आस्ट्रेलियावासी छिप कर बूमरंग से निशाना लगाते हैं। बूमरैंग का पथ (यहां निशाना चूक गया है।) बिंदु रेखा द्वारा दिखाया गया है।

---

[1] वर्षा की बूंद के वेग के बारे में मेरी पुस्तक "मनोरंजक यांत्रिकी" में सविस्तार बताया गया है और विलंबित छलांग के बारे में — "क्या आप भौतिकी जानते हैं?" नामक पुस्तक में।



चित्र 36 कागजी बूमरैंग उसे चलाने का तरीका।



चित्र 37 कागजी बूमरैंग का एक और रूप (अपने वास्तविक आकार में)।

की उड़ान के ये असाधारण पथ निम्न तीन कारणों की आपसी क्रिया फल हैं 1) प्रारंभिक प्रक्षेप, 2) बूमरंग का घूर्णन और 3) हवा प्रतिरोध। आस्ट्रेलियावासी अतर्प्रेरणा से इन तीन घटकों को संयुक्त करते हैं, वह कौशलतापूर्वक बूमरैंग का नतिकोण (झुकाव का कोण), प्रक्षेप-बल व उसकी दिशा परिवर्तित करता है, ताकि इष्ट परिणाम प्राप्त हो। वैसे, इस कला में कुछ निपुणता हर व्यक्ति हासिल कर सकता है। कमरे में अभ्यास के लिये आप कागजी बूमरंग से ही संतोष करना पड़ेगा, जिसे पोस्टकार्ड को चित्र में दर्शित आकार में काट कर प्राप्त कर ले सकते हैं। हर शाखा की लम्बाई करीब 5cm है और चौड़ाई 1cm से कुछ कम है। अंगूठे के नाखून में फंसा कर चुटकी से इस प्रकार ... की दिशा आगे थोड़ा उ... बूमरैंग कोई पाँच



चित्र 38 मिस्र में एक प्राचीन चित्र में बूमरंग चलाता हुआ एक सैनिक।

मीटर उड़ जाएगा और तैरता हुआ वक्र-पथ बनाएगा, जो कभी-कभी जटिल भी हो सकता है, और यदि कमरे में किसी चीज से टकरायेगा नहीं, तो आपके पैरों के पास आकर गिरेगा।

प्रयोग और सफल साबित होगा, यदि बूमरैंग को चित्र 37 की भांति रूप और आकार दिया जाये। बूमरैंग की शाखा को एक हल्का मरोड़ देना भी लाभदायक होगा (चित्र 37, नीचे)। ऐसे बूमरैंग को आप थोड़ी निपुणता से ही जटिल वक्रों पर चलने और फिर आपके पास वापस लौटने को विवश कर सकते हैं।

अंत में यह भी बता दें कि बूमरंग सिर्फ आस्ट्रेलियन वासियों का ही अस्त्र नहीं रहा है, जैसा कि बहुत से लोग सोचते होंगे। वह भारत में भी कुछ स्थानों पर व्यवहृत होता है। भित्ति चित्रों के अवशेषों से लगता है कि वह कभी एसीरियन योद्धाओं के लिये आम अस्त्र था। प्राचीन मिस्र और नूबी में भी बूमरैंग ज्ञात था। आस्ट्रेलियनों के बूमरंग में एक ही असाधारण बात है कि उसे बीच से एक हल्की ऐंठन दे दी जाती है। यही कारण है कि आस्ट्रेलियन बूमरंग आश्चर्यजनक वक्र बनाते हैं और निशाना चूकने पर वापस फेंकने वाले के पैरों पर आ गिरते हैं।

अध्याय 4

घूर्णन "शाश्वत गति"

उबले और कच्चे अंडों की पहचान

यदि आवश्यकता पडे, तो बिना छीले बता सकते हैं कि अंडा उब[ला] हुआ है या कच्चा? यांत्रिकी का ज्ञान ऐसी छोटी-मोटी दिक्कता से छुटका[रा] दिलाने मे सहायक हो सकता है।

बात यह है कि उबले और कच्चे अंडे अलग-अलग प्रकार से घूर्ण[न] करते हैं। उक्त समस्या को हल करने मे इसी बात की सहायता ले सकते हैं। अंडे को थाली या प्लेट मे रखते हैं और दो उंगलियो से पकड़ क[र] तेजी से घिरनी की तरह घुमाते हैं (चित्र 39)। उबला हुआ (खा[स] कर अच्छी तरह से) अंडा काफी तेजी से और देर तक घूर्णन करता रहेगा। कच्चे अंडे को घूर्णन के लिये विवश करना भी कठिन है, जबकि घि[रनी की] तरह उबला अंडा इतनी तेजी से घूमना शुरू कर देता है कि उसकी आ[-] कृति घुल कर चपटे दीर्घवृत्तज की तरह दिखने लगती है और वह अपने पतले सिरे पर भी खड़ा हो जा सकता है।

इन परिघटनाओं का कारण यह है कि अच्छी तरह से उबला हु[आ]



चित्र 39 अंडे को घिरनी की तरह घुमाना।



चित्र 40 लटकायी स्थिति में घूर्ण[न] से कच्चे व उबले अंडों की पहचान

अंडा एक पूरे एकाश्म पिंड की तरह घूमता है, जबकि कच्चे अंडे के भीतर का द्रव घूर्णनगति तुरत प्राप्त नहीं करता और जड़त्व के कारण ऊपरी कठोर कोष की गति को रोकने लगता है, ब्रेक का काम करने लगता है।

उबले और कच्चे अंडे रोकने पर भी भिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया करते हैं। घूर्णनरत उबले अंडे को उंगली से छूने पर वह रुक जाता है। कच्चा अंडा पल भर को रुक जाएगा, पर उंगली हटाते ही फिर थोड़ा घूमना शुरू कर देगा। इस का कारण भी जड़त्व ही है कच्चे अंडे में भीतरी द्रव तब भी घूमना जारी रखता है, जबकि ऊपरी कठोर कोष रुक चुका होता है। अच्छी तरह उबले अंडे के भीतर जो कुछ होता है, ऊपरी कोष के रुकने के साथ ही रुक जाता है।

इस तरह के परीक्षण दूसरी विधि से भी संपन्न किये जा सकते हैं। एक उबले और एक कच्चे अंडे की "याम्योत्तर रेखा" पर रबड़ का एक छल्ला तान कर चढ़ा दीजिये और एक जैसी रस्सी से बांध कर लटका दीजिये (चित्र 40)। रस्सियों को समान संख्या में ऐंठन दे कर छोड़ दें। कच्चे और उबले अंडा में अंतर तुरत दिख जाएगा। उबला अंडा आरंभिक स्थिति में आकर रुकेगा नहीं, बल्कि रस्सी को उल्टा ऐंठता हुआ चक्कर खाने लगेगा, इसके बाद एठन को खोलता हुआ घूमने लगेगा और रस्सी को पहले जसे ऐंठने लगेगा। यह चक्कर काफी देर तक चलता रहेगा (हर बार चक्करों की संख्या कम होती जाएगी)। कच्चा अंडा पुरानी स्थिति में आकर एकाध बार इधर-उधर घूम कर रुक जाएगा, उबले अंडे के शांत होने के बहुत पहले ही। उसकी गति में बाधक भीतर का द्रव पदार्थ होता है।

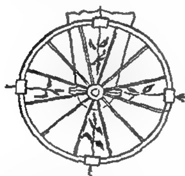
हास-चक्र

छाता खोले और फर्श पर उलट कर नोक के सहारे घुमाना शुरू कर, उसे क्षिप्र गति देना कठिन नहीं होगा। अब छतरी में मुड़ा चुड़ा कागज या एक छोटा गेंद डालें। डाली गयी वस्तु छाते के भीतर नहीं रुकेगी, वह बाहर उछल आयेगी। इसे "केंद्रापसारी बल' का नाम गलत ही दिया गया है। दरअसल यह सिर्फ जड़त्व की अभिव्यक्ति है। गेंद त्रिज्या की दिशा में नहीं, चक्रीय गति के पथ की स्पर्शरेखा की दिशा में भागती है।

घूर्णन गति के इसी प्रभाव पर आधारित है मनोरंजन का एक साधन—

धोखे में पड़ा पौधा

क्षिप्र घूर्णन से केंद्रापसारी प्रभाव इतनी बड़ी मात्रायें धारण कर सकता है कि वह गुरुत्व से भी बड़ा हो जाता है। एक दिलचस्प प्रयोग पेश है जो दिखाता है कि साधारण चक्का भी घूमने पर कितना बड़ा फेंकने का बल उत्पन्न कर सकता है। हमें ज्ञात है कि नन्हा पौधा अपना डंठल गुरुत्व बल की विपरीत दिशा में बढ़ाता है, अर्थात यदि सरल शब्दों में कहें ऊपर की ओर पनपाता है। लेकिन क्षिप्र घूर्णित चक्के की किनारा पर बीज को पनपने दें जैसा कि अंग्रेज वनस्पति-वैज्ञानिक नाइट ने सौ साल से भी पहले किया था। आप आश्चर्यजनक चीज देखेंगे पौधों की जड़ें बाहर की ओर निकली होंगी और डंठल, पत्ते आदि चक्के के केंद्र की ओर किनारी की दिशा में (चित्र 43)।



चित्र 43 घूमते चक्के की किनारी पर पनपता बीज। फुनगी धुरी की ओर बढ़ रही है और जड़—बाहर की ओर।

हमने मानो पौधे को धोखे में डाल दिया है उस पर गुरुत्व बल के बदले दूसरे बल का प्रभाव डाल दिया जिसकी क्रियाशीलता चक्के के केंद्र से बाहर की ओर निर्दिष्ट है। और चूंकि अंकुर हमेशा गुरुत्व के विपरीत दिशा में बढ़ता है, उसे इन परिस्थितियों में चक्के के भीतर किनारी से धुरी की ओर बढ़ना पड़ा। हमारा कृत्रिम गुरुत्व प्राकृतिक गुरुत्व से अधिक शक्तिशाली निकला[1] और पौधा उसी के प्रभाव में पनपा।

'चिर चलित्र'

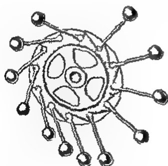
'चिर चलित्र' और 'चिर-गति' के बारे में अक्सर लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष अर्थों में बोला करते हैं पर शायद ही सभी समझते हों कि इन

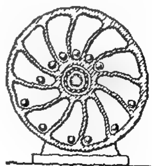
[1] गुरुत्व की प्रकृति पर आधुनिक दृष्टिकोण इन दोनों के बीच कोई सैद्धांतिक फर्क नहीं देखता।

शब्दों का अर्थ क्या है। चिर चलित्र एक ऐसा काल्पनिक यंत्र है, जो अवि-राम स्वयं चलता रहता है और साथ ही कोई कार्य भी सम्पन्न करता रहता है (जैसे भार उठाना)। ऐसा यंत्र कोई भी नहीं बना सका, हालांकि बनाने की कोशिशें पुराने जमाने से हो रही हैं। इन प्रयत्नों की असफलता से चिर चलित्र की असंभाव्यता में विश्वास और आधुनिक विज्ञान में ऊर्जा संरक्षण नियम की स्थापना में सहायता मिली। जहां तक चिर-गति (शाश्वत गति) का प्रश्न है, इसका अर्थ बिना कार्य-सम्पन्नता के अविराम गति है।

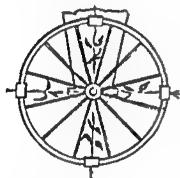
चित्र 44 में एक मिथ्या स्वचल यंत्र दिखाया गया है। यह चिर-चलित्र की प्राचीनतम आयोजनाओं में से एक है, जो अभी भी असफल दुराग्रहियों के कारण पुनर्जन्म को प्राप्त होता रहता है। चक्के के किनारों पर छोटे-छोटे छड़ लगे हैं, जिनके दूसरे सिरों पर बोझ जुड़े हैं। चक्का किसी भी स्थिति में हो, उसकी दायीं ओर के बोझ धुरे से दूर रहते हैं, बनिस्बत कि बायीं ओर के। इसीलिये दायीं ओर के बोझ बायें बोझों को उठाते हुए नीचे की ओर लुढ़केंगे और चक्के को चला देंगे। इसका मतलब है कि चक्का चिर काल तक चलना चाहिये, कम से कम तबतक, जबतक कि अक्ष घिस न जाये। आविष्कारक ने यही सोचा होगा। फिर भी, यदि ऐसा चलित्र बनाया जाये, वह घूमेगा नहीं। आविष्कारक का सोचा हुआ कारगर नहीं रहा, क्यों?

कारण यह है दाहिनी तरफ के गुल्ले चक्के के केंद्र से दूर जरूर हैं पर कभी न कभी ऐसा क्षण आयेगा ही, जब इन गुल्लों की संख्या बायें


चित्र 44 मध्ययुगीन मिथ्या शाश्वत चलित्र।


चित्र 45 लुढ़कते गोलों वाला मिथ्या शाश्वत चलित्र।

तीव्र घूर्णन से केंद्रापसारी प्रभाव इतनी बड़ी मात्रायें धारण कर सकता है कि वह गुरुत्व से भी बड़ा हो जाता है। एक दिलचस्प प्रयोग पेश है, जो दिखाता है कि साधारण पहिया भी घूमने पर कितना बड़ा ऐंठने वाला बल उत्पन्न कर सकता है। हमें ज्ञात है कि नन्हा पौधा सदा हठात् गुरुत्व बल की विपरीत दिशा में बढ़ता है, अर्थात् यदि सरल शब्दों में कहें, ऊपर की ओर पनपता है। लेकिन तीव्र घूर्णित पहिये की किनारी पर बीज को पनपने दें, जैसा कि अंग्रेज वनस्पति-वैज्ञानिक नाइट ने सौ साल से भी पहले किया था। आप आश्चर्यजनक चीज देखेंगे: पौधों की जड़ें बाहर की ओर निकली होंगी और डंठल, पत्ते आदि पहिये के मध्य की ओर धुरी की दिशा में (चित्र 43)।



चित्र 43 घूमते पहिये की किनारी पर पनपता बीज। फुनगी अक्ष की ओर बढ़ रही है और जड़—बाहर की ओर।

हमने मानो पौधे को धोखे में डाल दिया है: उस पर गुरुत्व बल के बदले दूसरे बल का प्रभाव डाल दिया, जिसकी क्रियाशीलता पहिये के केंद्र से बाहर की ओर निर्दिष्ट है। और चूंकि अंकुर हमेशा गुरुत्व के विपरीत दिशा में बढ़ता है, उसे इन परिस्थितियों में पहिये के भीतर किनारी से अक्ष की ओर बढ़ना पड़ा। हमारा कृत्रिम गुरुत्व प्राकृतिक गुरुत्व से अधिक शक्तिशाली निकला[1] और पौधा उसी के प्रभाव में पनपा।

"चिर-चलित्र"

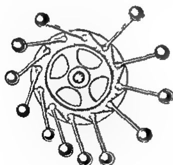
"चिर-चलित्र" और "चिर-गति" के बारे में अक्सर लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष अर्थों में बोला करते हैं, पर शायद ही सभी समझते हों कि इन

[1] गुरुत्व की प्रकृति पर आधुनिक दृष्टिकोण इन दोनों के बीच कोई सैद्धांतिक फर्क नहीं देखता।

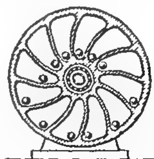
शब्दों का अर्थ क्या है। चिर-चलित्र एक ऐसा काल्पनिक यंत्र है, जो अवि-राम स्वयं चलता रहता है और साथ ही कोई कार्य भी संपन्न करता रहता है (जैसे भार उठाना)। ऐसा यंत्र कोई भी नहीं बना सका, हालांकि बनाने की कोशिशें पुराने जमाने से हो रही हैं। इन प्रयत्नों की असफलता से चिर-चलित्र की असंभाव्यता में विश्वास और आधुनिक विज्ञान में ऊर्जा संरक्षण नियम की स्थापना में सहायता मिली। जहां तक चिर गति (शाश्वत गति) का प्रश्न है, इसका अर्थ बिना कार्य-संपन्नता के अविराम गति है।

चित्र 44 में एक मिथ्या स्वचल यंत्र दिखाया गया है। यह चिर-चलित्र की प्राचीनतम प्रायोजनाओं में से एक है, जो अभी भी असफल दुराग्रहियों के कारण पुनर्जन्म को प्राप्त होता रहता है। चक्के के किनारों पर छोटे-छोटे छड़ लगे हैं, जिनके दूसरे सिरों पर बोझ जुड़े हैं। चक्का किसी भी स्थिति में हो, उसकी दायीं ओर के बोझ केंद्र से दूर रहते हैं, बनिस्बत कि बायीं ओर के। इसीलिये दायीं ओर के बोझ बायें बोझों को उठाते हुए नीचे की ओर लुढ़केंगे और चक्के को चला देंगे। इसका मतलब है कि चक्का चिर काल तक चलना चाहिये, कम से कम तबतक, जबतक कि अक्ष घिस न जाये। आविष्कारक ने यही सोचा होगा। फिर भी, यदि ऐसा चलित्र बनाया जाये, वह घूमेगा नहीं। आविष्कारक का सोचा हुआ कारगर नहीं रहा, क्यों?

कारण यह है दाहिनी तरफ के गुल्ले चक्के के केंद्र से दूर जरूर हैं पर कभी न कभी ऐसा क्षण आयेगा ही, जब इन गुल्लों की संख्या बायें



चित्र 44 मध्ययुगीन मिथ्या शाश्वत चलित्र।



चित्र 45 लुढ़कते गोलों वाला मिथ्या शाश्वत चलित्र।

गुल्लो की सख्या से कम हो जायेगी। चित्र 44 पर नजर डालिये दायें गुल्ला की सख्या सिर्फ 4 है, बायें — 8। इससे सारी प्रणाली सतुलित हो जायेगी और चक्का घूमेगा नही, कुछेक बार झूल कर इसी स्थिति में रुक जायेगा।[1]

अब प्रकाटय रूप से सिद्ध किया जा चुका है कि ऐसा यत्र नहीं बनाया जा सकता, जो अनवरत अपने आप चलता रहे और साथ-साथ कोई कार्य भी सपन्न किया करे। इस समस्या पर श्रम करना बिल्कुल निरर्थक है। पुराने जमाने मे, खासकर मध्य युग में, लोगों ने इस समस्या के हल पर बहुत ही सर खपाया और "चिर चलित्र" (लातीनी में पेरपेतुउम मोबीले, perpetuum mobile) के आविष्कार में बहुत ही श्रम और समय बरबाद किया। ऐसा चलित्र प्राप्त करना सस्ते धातुओ से सोना बनाने की कला से भी अधिक आकर्षक था।

पुश्किन न अपने "सामतकालीन शूरवीरो के जीवन से कुछ दृश्य" में एक ऐसा ही सपना देखने वाले व्यक्ति बेरतोल्द का चित्रण किया है

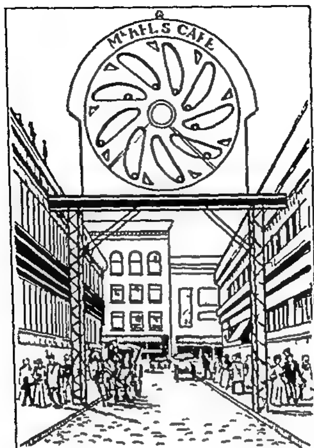
"— perpetuum mobile क्या है? — मार्तीन ने पूछा।
"— perpetuum mobile — बेर्तोल्द उसे बताता है, — शाश्वत गति है। यदि शाश्वत गति बना सकू, तो फिर मनुष्य की सृजनात्मक शक्तियो की कोई सीमा नही रह जायेगी देखो, मेरे अच्छे मार्तीन! स्वर्ण बनाना आकर्षक काम है, मनोरजक भी और फायदेमद भी, पर perpetuum mobile ढूँढ लेना अरे '।

सकडो 'चिर चलित्र' सोच-सोच कर निकाले जा चुके हैं, पर उनमे से एक भी चला नही। आविष्कारक हर बार, जैसा कि हमारे उदाहरण म हुआ था, कोई न कोई छोटी सी चीज भूल जाया करता था, या ध्यान नही देता था, जिससे उसकी योजना भग हो जाती थी।

यह रहा चिर चलित्र का एक और नमूना चक्के मे भारी गोलिया हैं जो नीचे की ओर लुढका करती हैं (चित्र 45)। आविष्कारक ने

---

[1] इस प्रकार की प्रणालिया आघूण प्रमेय की सहायता से निरूपित होती हैं।



चित्र 46 लोस-ऐंजेल्स शहर (कैलीफोर्निया) में विज्ञापन के लिये रखा गया मिथ्या शाश्वत चलित्र।

सोचा था कि चक्के में एक तरफ की गोलियां हमेशा केंद्र से दूर वाली किनारी पर रहेंगी और अपने भार से चक्के को चलने पर विवश करेंगी।

जाहिर है कि चक्का घूमेगा नहीं। कारण वही है, जो चित्र 44 में दर्शित चक्के के साथ था। पर अमेरिका के एक शहर में एक ऐसा ही चक्का बनाया गया। इसका लक्ष्य एक रेस्तरां के लिये खूबसूरत विज्ञापन देना था, ताकि ग्राहकों का ध्यान आकर्षित हो (चित्र 46)। यह 'शाश्वत चलित्र" यत्न से छिपा कर रखी गयी मशीन से चला करता था, पर

दर्शकों को लगता था कि चक्का दरारों में रखे भारी गोलियों के लुढ़कने से चल रहा है। एक समय था, जब लोगों को आकर्षित करने के लिये घड़ीसाज अपनी दुकानों में ऐसे नकली शाश्वत चलित्र रखा करते थे। इन चलित्रों को छुपे स्तम्भ बिजली से चलाया जाता था।

एक बार एक ऐसे ही विज्ञापन वाले "शाश्वत चलित्र" के कारण मुझे काफी तंग होना पड़ा। मेरे कुछ मजदूर छात्र इससे इतने आश्चर्यचकित थे कि उनपर शाश्वत चलित्र की असंभाव्यता के प्रमाणों का कोई असर नहीं पड़ रहा था। कचों का लुढ़क-लुढ़क कर चक्का चलाना और फिर इसी चक्के से ऊपर उठना—यह दृश्य मेरे तर्कों से अधिक प्रभावशाली निकला। मेरे भाग्य से उस समय छुट्टियों के दिन बिजली नहीं मिलती थी। मैंने अपने छात्रों को सलाह दी कि वे किसी ऐसे दिन शो-केस के निकट जा कर देखें। उन्होंने मेरी बात मान ली।

—क्या हाल है चलित्र का, आपने देखा?—मैंने प्रश्न किया।

—नहीं,—निराश उत्तर दिया उन्होंने।—वह दिखा नहीं, अखबार से ढका था

ऊर्जा संरक्षण नियम ने पुन उनका विश्वास जीत लिया और इसके बाद फिर कभी खोया नहीं।

"अड़चन"

अनेक रूसी स्वशिक्षित आविष्कारक भी 'शाश्वत चलित्र की मोहक समस्या को हल करने में लगे थे। ऐसे एक साइबेरियन किसान अलेक्सादर शेग्लोव का चित्रण शेद्रिन के उपन्यास "आधुनिक रमण-काव्य' के एक पात्र "प्रेजेंतोव बाबू" के रूप में किया गया है। शेद्रिन इस आविष्कारक की कर्मशाला देखने गये थे, जिसका वर्णन उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत कर रहे हैं

'प्रेजेंतोव बाबू की उम्र पतिम वय थी, शरीर दुबला पतला चेहरा पीला, आँखें बड़ी और चिंतनशील, बाल डोरी से गरदन तक लटके हुए। उनकी लकड़ी की झोपड़ी काफी बड़ी थी, लेकिन आधी जगह एक

बहुत बड़े गति-पालक चक्के ने घेर रखा था और इसीलिये हम मुश्किल से अट रहे थे। चक्का तीलियों वाला था। उसकी रिम तख्तों को ठोक कर बनायी गयी थी और काफी मोटी, बक्सों जैसी भीतर से खोखली थी। इसी खाली स्थान में आविष्कारक निर्मित यंत्र का राज छिपा था। राज कोई खास जटिल नहीं था, बस बालू की बोरियां थीं, जो मिलकर एक-दूसरे को संतुलित कर सकती थीं। चक्के में एक डंडा फँसा था, ताकि वह चलता न रहे।

—हम लोगों ने सुना कि आप शाश्वत गति के नियम को व्यवहार में ला रहे हैं?—मैंने बात शुरू की।

—क्या कहूं, पता नहीं,—हिचकिचाते हुए उसने उत्तर दिया,—लगता है, मानों कि

—हम देख सकते हैं?

—क्या कहते हैं? यह तो सौभाग्य है

वह हमें चक्के के पास ले गया, फिर चारों ओर से दिखाया। पता चला कि आगे, पीछे—सब तरफ से चक्का चक्का ही था।

—घूमता है?

—घूमना तो चाहिये। नखरे कर रहा है वसे

—सिटकिनी हटायी जाये?

प्रेजेंतोव ने डंडा खींच कर निकाल लिया। चक्का हिला भी नहीं।

—नखरे कर रहा है!—उसने दुहराया,—थोड़ा जोर लगाना पड़ेगा।

उसने दोनों हाथों से चक्का पकड़ लिया, कुछेक बार ऊपर-नीचे झुलाया और एक जोर की पेंग देकर छोड़ दिया। चक्का चल पड़ा। कुछ चक्कर तो उसने काफी तेजी से और बिना किसी बाधा के आराम से पूरे कर लिये। पर सुनायी दे रहा था, किस प्रकार रेत की बोरियां चक्के की भीतरी दीवारों से घिस रही थीं और कसे उनसे छूट-छूट कर गिर रही थीं। इसके बाद चक्के का घूमना मंद होने लगा। एक चरमराहट की आवाज आयी और इसके बाद वह बिल्कुल रुक गया।

—कोई अड़चन लग रही है भीतर,—आविष्कारक ने व्यग्र स्वर

ने समझाया और फिर से दम लगा कर चक्के को एक जोर की पेंग दी।

पर दूसरी बार भी वही हुआ।

—घषण का हिसाब शायद आपने नही लगाया था?

—घषण का भी लगाया था घर्षण है ही क्या? घषण के कारण नही, बस, यू ही कभी-कभी तो मन खुश कर देता है, और इसके बाद फिर एकाएक से नखरे करने लगता है, अड जाता है—और बस। जरा ढग का सामान होता चक्का ता इधर-उधर की टुकडियो से जोड-जाड कर बना है।"

स्पष्ट है कि यहा सवाल "अडचन या "अच्छी निर्माण सामग्री' का नही, बल्कि यत्र के मुख्य विचार की जटिलता का है। चक्का आवि ष्कारक द्वारा धक्का खाने पर थोडा बहुत चल लेता है, लेकिन जब यह वाह्य-सप्रेषित उर्जा घषण के साथ सघष म समाप्त हो जाती है, तो चक्के को रुकना ही पडता है।

उफिम्त्सेव का सचायक

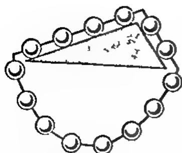
गति के कारण को पता लगाये बगर सिफ उसके वाह्य रूप और ढाचे के आधार पर उसे 'शाश्वत' कहना गलत होगा। इस बात की सत्यता उफिम्त्सेव द्वारा आविष्कृत यात्रिक ऊर्जा के सचायक से सिद्ध होती है। कूर्स्क शहर के अ गि उफिम्त्सेव ने एक नये प्रकार के पवनशक्ति-कद्र का निर्माण किया। इसमे गतिसामक चक्र की तरह के सस्ते "जडत्वीय' सचायक का इस्तेमाल हुआ था। सन 1920 मे उफिम्त्सेव ने अपने सचायक का एक चक्कीनूमा प्रतिमान तयार किया। चक्की ऊध्व अक्ष पर बाल बैयरिंग के सहारे घूमती थी। यह सब एक चमडे की थैली म रखा था जिसमे से पप द्वारा हवा निकाली जा चुकी थी। चक्की को 20 000 चक्कर प्रति मिनट का आरभिक वेग दिया गया और वह 15 दिनो तक इसी तरह घूमती रही। सतही तौर पर देखने वाला व्यक्ति चक्की के अक्ष को देख कर इसे शाश्वत गति का कायवयन ही कहता, क्योकि ऊर्जा का कोई स्पष्ट स्रोत सामने नही था।

"शाश्वत" चलित्रों के पीछे निरर्थक दौड़ ने अनेक लोगों की जिंदगी बर्बाद की है। मैं एक मजदूर को जानता हूँ, जो अपनी सारी बचत और तनख्वाह शाश्वत चलित्रों के प्रतिमान बनाने में खर्च कर दिया करता था। वह अपने असंभव विचारों का बलिदान बन गया था। उसके पास पहनने को कपड़े नहीं होते थे, भूखा रहता था, पर वह लोगों से साधन मांगता था "अंतिम प्रतिमान" के लिये जो "अवश्य ही चलता रहता"। अफसोस होता था कि यह आदमी भौतिकी के प्रारंभिक ज्ञान न होने के कारण ही इतनी गरीबी में जी रहा था।

मजे की बात यह है कि "शाश्वत" गति की खोज हमेशा निष्फल रही है, पर उसकी असंभाव्यता के गूढ़ ज्ञान ने अनेक लाभप्रद वैज्ञानिक निष्कर्षों को जन्म दिया है।

इसका एक सुंदर उदाहरण है नत-तलों पर बल-संतुलन के नियम की खोज। खोजकर्ता हालैंड (XVI-वीं – XVII-वीं शती) के वैज्ञानिक स्टेविन थे। उन्हें इतनी ख्याति नहीं प्राप्त हुई, जितनी होनी होनी चाहिये थी। उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण खोजें की, जिनका हम निरंतर प्रयोग करते हैं, जैसे दशमलव भिन्न, बीजगणित में घात का प्रयोग, जल-स्थतिक नियम, जिसकी बाद में पास्कल ने पुनः खोज की।

नत-तल पर बल-संतुलन के नियम की खोज स्टेविन ने बल समांतर चतुर्भुज के नियम की सहायता के बिना सिर्फ एक आरेख की मदद से की (दे० चित्र 47)। त्रिफलकी प्रिज्म पर 14 मोती की एक माला लटकी है। मोती समान हैं। माला के साथ क्या होगा? नीचे लटके मोती आपस में संतुलन कर लेते हैं। पर माला के अन्य दो भाग एक दूसरे को संतुलन में रखते हैं या नहीं? अन्य शब्दों में दायीं ओर के दो मोती बायीं ओर के चार मोतियों से संतुलित होते हैं या नहीं? अवश्य होते हैं, अन्यथा माला निरंतर दायें से बायें सरकती रहती, क्योंकि आगे बढ़े मोतियों की जगह नये मोती आ जाते और संतुलन कभी भी स्थापित नहीं होता। पर हम जानते हैं कि माला उक्त स्थिति में स्थिर रहती है, खुद ब खुद घूमती नहीं रहती, इसीलिये स्पष्ट है कि दायीं ओर के दो मोती बायीं ओर के चार मोतियों को संतुलित कर लेते हैं। यह एक चमत्कार सा लगता है दो मोती उसी बल से खींच रहे हैं, जिससे कि चार।



चित्र 47 "चमत्कार भी, और नही भी"।

स्टेविन ने इस मिथ्या चमत्कार से यांत्रिकी का एक महत्वपूर्ण नियम निकाला। उसने इस प्रकार सोचा। माला के ये दो भाग – लबा और छोटा – अलग अलग प्रकार से लटके हैं एक भाग दूसरे से उतना ही गुना अधिक भारी है, जितना गुना प्रिज्म का लबा फलक छोटे वाले से अधिक है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि रस्सी से जुड़े दो बोझ नत तलो पर एक दूसरे को सतुलित कर लेते हैं, यदि उनका भार तलो की लबाइयो के समानुपाती होता है।

स्थिति विशेष मे, यदि छोटा तल लबवत खडा हो, हम यांत्रिकी का एक विख्यात नियम प्राप्त होता है नत तल पर पिड को रोक रखने के लिये इस तल की दिशा म ऐसे बल को लगाना चाहिये, जो पिड के भार से उतना ही गुना छोटा हो, जितनी तल की ऊँचाइ उसकी लबाई से छोटी है।

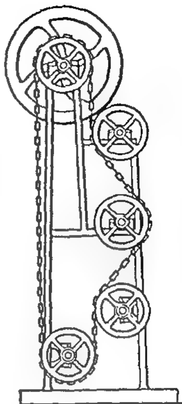
इस प्रकार, शाश्वत चलित्र की असभाव्यता के आधार पर यांत्रिकी के एक महत्वपूर्ण नियम की खोज हुई।

कुछ और "शाश्वत चलित्र"

चित्र 48 मे आप एक भारी चेन देखते हैं, जो चक्रो पर इस प्रकार लगा है कि हर स्थिति मे उसका दाया भाग बायें से लबा रहता है। इसी लिये, – आविष्कारक ने सोचा, – दायें भाग को निरतर नीचे गिरते रहना चाहिये और इससे पूरे यत्र को चलते रहना चाहिये। क्या यह सही है?

बेशक नही। हम अभी अभी देख चुके हैं कि भारी चेन को हल्का चेन सतुलित कर लेता है क्योकि उन्हे खीचने वाले बल भिन्न कोणो पर कार्यशील हैं। इस यत्र मे बाया चेन लबवत लटक रहा है और दाया तिरछे लगा हुआ है। इसीलिये दायां चेन भारी होने के बावजूद भी हल्के को नही खीचेगा। यहा प्रत्याशित शाश्वत गति प्राप्त नही हो सकती।

पिछली शती की साठवीं दशाब्दी में एक अत्यंत चालाक आविष्कारक का "शाश्वत" चलित्र पेरिस की प्रदर्शनी मे दिखाया जा रहा था। चलित्र एक चक्का था जिसमें भारी गोलियां लुढकती रहती थी। आविष्कारक का दावा था कि चक्के की गति को कोई नही रोक सकता। दर्शक एक के बाद एक चक्के को रोकने की कोशिश करते थे, पर हाथ हटाते ही चक्का पुन चालू हो जाता था। किसी को यह शक नही होता था कि चक्का दर्शको द्वारा रोकने की कोशिश से ही चलता था, रोकने के लिये चक्का पीछे घुमाने से यन्त्र में घडी की तरह चाबी पड जाती थी – स्प्रिंग अत्यंत सावधानी से छिपा हुआ था



चित्र 48 क्या चलित्र शाश्वत है ?

प्योत्र प्रथम के समय का "शाश्वत चलित्र"

1715-1722 मे प्योत्र प्रथम द्वारा लिखे गये पत्र और उनके उत्तर बचे हैं, जिनम जमनी मे आविष्कृत एक शाश्वत चलित्र के बारे मे बातचीत चल रही थी। आविष्कारक कोई श्री ओरफीरेउस था। जमनी मे उसके 'स्वचालित चक्के' के कारण उसे काफी ख्याति मिल रही थी। त्सार[1] से वह काफी बडी कीमत ऐंठना चाहता था। विद्वान पुस्तकालयाध्यक्ष शुमाखेर, जिसे प्योत्र ने दुलभ वस्तुओ के सग्रह के लिये पाश्चात्य देशो म भेजा था, ओरफीरेउस की माग के बारे म त्सार को लिखा

"आविष्कारक अंतिम मूल्य बता रहा है 100 000 येफीमक[2] रख दीजिये और मशीन ले जाइये।'

---

[1] अंग्रेजी मे "ज़ार'।

[2] येफीमक – करीब एक रूबल मूल्य की पुरानी रूसी मुद्रा इकाई।

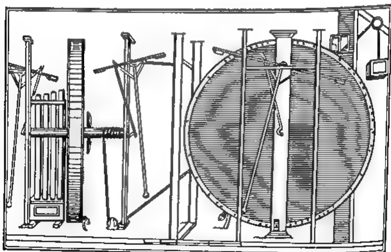
अपनी मशीन के बारे में आविष्कारक का कहना था कि (पुस्तकालयाध्यक्ष के शब्दों में) वह 'सही है और कोई भी उसका मजाक नहीं उड़ा सकता, दुनिया की बात दूसरी है और दुनिया ऐसे ही लोगों से भरी है, जिनका विश्वास नहीं किया जा सकता'।

1725 की जनवरी में प्योत्र इस "शाश्वत चलित" को देखने के लिये जर्मनी जाने वाले थे, पर इसी बीच उनकी मृत्यु हो गयी।

यह ओरफीरेउस कौन था और उसकी मशीन कैसी थी। इन प्रश्नों पर प्रकाश डालने वाली सूचनायें प्राप्त करने में मुझे कुछ सफलता मिली।

ओरफीरेउस का वास्तविक नाम बेस्लेर था। उसका जन्म 1680 में जर्मनी में हुआ था। उसने ईश्वर विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, चित्रकला आदि का अध्ययन किया और अंत में वह "शाश्वत" चलित्र के आविष्कार में लग गया। ऐसे हजारों आविष्कारकों में सबसे भाग्यशाली ओरफीरेउस ही था। मशीन दिखा दिखा कर कमाये पैसों से उसने मृत्यु-पर्यंत आराम की जिंदगी बसर की। उसकी मृत्यु सन् 1745 में हुई थी।

चित्र 49 एक पुरानी पुस्तक से लिया गया है। इसमें ओरफीरेउस



चित्र 49 ओरफिरेउस का स्वचलित चक्का जिसे प्योत्र I खरीदते खरीदते रह गये। (एक पुराने चित्र से)।

की मशीन दिखायी गयी है। 1714 में वह ऐसी ही थी। आप एक बहुत बड़ा चक्का देखते है, जो मानो खुद घूमता रहता था और साथ ही एक बडी ऊंचाई तक भारी बोझ भी उठा लेता था।

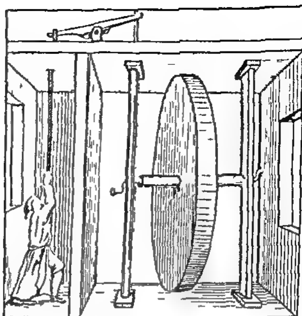
इस अद्भुत आविष्कार की ख्याति, जिसे विद्वान डाक्टर पहले मेला म दिखाया करता था, शीघ्र ही पूरे जमनी मे फैल गयी। आरफीरेउस ने कई प्रभावशाली व्यक्तियो का वरद-हस्त प्राप्त कर लिया। पोलड के राजा न उसमे दिलचस्पी ली, फिर नवाब कासेल-ह्रेसेन ने निमत्रण दिया। नवाब न उसे अपने किले मे स्थान दिया और हर तरह से मशीन की परीक्षा ली।

उदाहरणाथ, 12 नवबर 1717 को मशीन एक अलग कमरे मे चला दी गयी और कमरा ताले से बद कर दिया गया। दरवाजे पर मुहर लगा दी गयी और दो सेनाध्यक्षो के ऊपर पहरे की जिम्मेवारी डाल दी गयी। 14 दिनों तक कोई भी कमरे के निकट नही गया। सिफ 26 नवबर को सील तोडा गया और नवाब अपने दरबारियो के साथ कमरे में घुसे। चक्का उसी गति से चल रहा था। मशीन को अच्छी तरह से देख-सुन लेने के बाद उसे पुन चालू किया गया और इस बार कमरे को चालिस दिनो तक सील बद रखा गया। सेनाध्यक्ष पहरा देते रहे। जब 4 जनवरी 1718 को दरवाजा खोला गया, विशेषज्ञो की टोली ने मशीन को चलती अवस्था म पाया।

नवाब को इससे भी सतोष नही हुआ। उसने अपना प्रयोग फिर से दुहराया और मशीन दो महीनो तक बद रखी गयी। अवधि समाप्त होने पर मशीन चालू पायी गयी।

नवाब ने खुश हो कर आविष्कारक को एक प्रमाणपत्र दिया, जिसके अनुसार उसका "शाश्वत चलित्र" प्रति मिनट 50 बार घूमता था, 16 kg भारी वस्तु को 1 5 मीटर की ऊंचाई तक उठा सकता था, उससे लुहार की भाथी और छूरी पिजान का चक्का चल सकता था। ओरफीरेउस इसी प्रमाणपत्र को लिये युरोप मे भ्रमण कर रहा था। पैसे उसे काफी मिल रहे थे, शायद इसीलिये वह अपनी मशीन 100 000 रूबल से कम मे बेचने को तैयार नही हो रहा था।

डा ओरफीरेउस के इस आश्चयजनक आविष्कार की खबर अब जमनी के बाहर युरोपीय देशो मे फैलने लगी। वह रूस भी पहुची। प्योत्र, जो अजीबोगरीब मशीनो का बेहद शौकीन था, इसकी ओर आकर्षित हुआ।



चित्र 50 ग्रोरफिरेउस के चक्के का रहस्य। (पुराने चित्र से)

सन 1715 की अपनी एक विदेश-यात्रा के दरम्यान ही प्योत्र ग्रोरफी रेउस के चक्के के बारे मे सुन चुका था। उस समय उसने एक विख्यात राजनीतिज्ञ श्र इ ग्रोस्तेरमान के हाथ इस मशीन के अध्ययन का काय सौंपा। ग्रोस्तेरमान ने मशीन के बारे म एक सविस्तार प्रतिवेदन लिख कर भेजा, यद्यपि मशीन देखने का सुग्रवसर उसे नही प्राप्त हुआ। प्योत्र, ग्रोरफीरेउस को एक महान ग्राविष्कारक के रूप मे अपने यहा काम करने के लिये ग्रामंत्रित करना चाहता था ग्रौर इसके बारे मे उस समय के विख्यात दशनशास्त्री ख्रिस्टियान वोल्फ (लोमोनोसोव के गुरु) का खयाल जानना चाहता था।

विख्यात ग्राविष्कारक को हर तरफ से लाभप्रद ग्रामत्रण मिल रहे थे। ऐश्वयशाली लाग उस पर दया की वर्षा कर रहे थे, कवि उसकी मशीन के लिये कीर्तिगान लिख रहे थे। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी थे, जिन्हे इसमे धोखा दिख रहा था। कुछ साहसी लोग ग्रोरफीरेउस को खुले ग्राम ठग कह रहे थे धोखा सिद्ध करने वाले को 1000 माक का इनाम

ऐलान किया जा रहा था। ओरफीरेउस की ठगी का पर्दाफाश करते हुए किसी पुस्तिका ने एक चित्र छापा, जिसे हम यहां दे रहे हैं (चित्र 50)। इसके अनुसार रहस्य सिर्फ यही है कि अच्छी तरह से छिपा हुआ आदमी रस्सी खींचता रहता है। खम्भे के भीतर चक्के के अक्ष का जो भाग है, उसी पर रस्सी लपेटी गयी है, इसी लिये वह दिखती नही।

इतना बारीक धोखा सिर्फ एक संयोग के कारण ही खुल सका। विद्वान डाक्टर का उसकी पत्नी और नौकरानी के साथ झगड़ा हो गया। उन्हें डाक्टर की मशीन का रहस्य मालूम था। यदि यह झगड़ा नही होता, तो शायद हम आज भी इस "शाश्वत चलित्र" के रहस्य को नही समझ पाते। ज्ञात हुआ कि "शाश्वत चलित्र" सचमुच में छिपे आदमियों के श्रम से गतिमान रहता था, जो छिपे-स्तम्भ रस्सी खींचा करते थे। ये लोग थे— डाक्टर का भाई और उसकी नौकरानी।

भंडाफोड़ होने पर भी आविष्कारक ने हार नही मानी, वह मरने तक यही दुहराता रहा कि झगड़े के कारण उसकी पत्नी और नौकरानी ने उस पर लांछना लगाया है। लेकिन उस पर से लोगों का विश्वास खत्म हो चुका था। प्योत्र के दूत शुमाखेर को वह यू ही नही कहा करता था कि लोग बुरे हैं और "दुनिया ऐसे ही लोगों से भरी है, जिनका विश्वास नही करना चाहिये"।

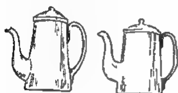
प्योत्र प्रथम के समय ही जर्मनी में एक और "शाश्वत चलित्र" था। आविष्कारक का नाम था हेर्टनेर। इस मशीन के बारे में शुमाखेर ने लिखा था "श्रीमान हेटनेर का Perpetuum mobile जिसे मैंने ड्रेस्डेन में देखा, कपड़े का बना है। उस पर बालू रखा है। मशीन का रूप छूरी पिजाने वाले चक्के की तरह है और अपनी जगह से आगे-पीछे घूमता रहता है। श्रीमान इन्वेंटर (आविष्कारक) के शब्दों में, वह काफी बड़ा नही किया जा सकता"। इसमें कोई शक नही कि यह चलित्र भी लक्ष्य से बहुत दूर था। उसे अच्छा सोच-समझ कर बनाया गया था, लेकिन वह भी "शाश्वत" चलित्र नही था। शुमाखेर बिल्कुल सही था, जब उसने प्योत्र को लिखा कि अंग्रेज और फ्रांसीसी विद्वान 'इन सारे पेरपेतुउम मोबीले को कोई महत्त्व नही देते और कहते हैं कि यह गणितीय सिद्धांतों के विरुद्ध है"।

अध्याय 5

द्रव और गैस के गुण

दो केतलियो से सबधित प्रश्न

आपके सामने समान चौडाई की दो केतलिया हैं एक कुछ ऊँची है, दूसरी – कुछ नीची। किसमे अधिक पानी अटेगा?



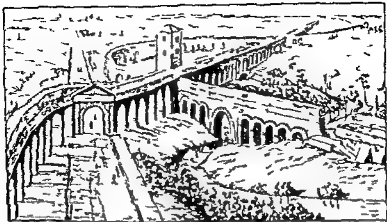
चित्र 51 किस केतली मे अधिक पानी डाला जा सकता है।

बहुत से लोग शायद बिना कुछ सोचे-समझे कह देंगे कि ऊची केतली मे अधिक अटेगा। यदि आप ऊची केतली म कोई द्रव डालना शुरू करेंगे, तो देखेंगे कि टोटी की ऊचाई से अधिक नही डाल सकते, द्रव गिरने लगगा। चूकि दोनो केतलियो में टोटियो के छेद समान ऊचाई पर स्थित हैं, बडी केतली मे उतना ही द्रव अटेगा, जितना छोटी मे।

यह स्पष्ट है, क्योकि केतली और उसकी टोटी मे द्रव का स्तर समान ऊँचाई पर होगा। जुडे बरतनो मे यही होता है। टोटी मे स्थित द्रव का भार केतली के द्रव से काफी कम होता है, फिर भी द्रव के स्तरो की ऊचाइया दोनो जगह समान होती हैं। यदि टोटी पर्याप्त ऊची नही है, तो आप केतली को द्रव से किसी भी तरह नही भर सकते हैं। पानी टोटी से गिरने लगेगा। इसीलिये टोटी अक्सर केतली की किनारी से कुछ ऊची ही रखी जाती है, ताकि केतली को थोडा ही झुकाने पर पानी न गिरने लगे।

प्राचीन काल में क्या नहीं जानते थे

आधुनिक रोम के निवासी आज भी प्राचीन काल मे निर्मित पन-सचारी नाले के अवशेषो का उपयोग करते हैं। रोमन गुलामो का बनाया नाला बहुत ही ठोस था।



चित्र 52 प्राचीन रोम की जल प्रदाय प्रणाली का प्रारंभिक रूप।

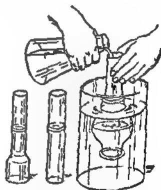
पर गुलामों के काम का नेतृत्व करने वाले रोमन इंजिनियरों का ज्ञान इतना ठोस नहीं था, बिल्कुल साफ है कि वे भौतिकी के नियमों से अनभिज्ञ थे। म्युनिख में स्थित जर्मन संग्रहालय से लिये गये इस चित्र को देखें (चित्र 52)। आप देखते हैं कि रोमन पन-नाला जमीन के भीतर नहीं, पत्थर के ऊंचे खंभों पर रखा जाता था। ऐसा क्यों? क्या आज की तरह जमीन में जलनली बिछाना सरल नहीं होता? बेशक, यह सरल होता, पर उस समय के रोमन इंजिनियरों को संचारी (जुड़े) बरतनों के नियम का पर्याप्त ज्ञान नहीं था। उन्हें डर था कि अत्यंत लंबे नलों से जुड़े जलाशयों में जल का स्तर समान नहीं रहेगा। यदि पाइप जमीन की प्राकृतिक ढलानों पर बिछाये जायें, तो कहीं-कहीं पर पानी को ऊपर की दिशा में बहना होगा। रोमनों को यही डर था कि पानी ऊपर नहीं बहेगा। इसीलिये वे पानी नलों को उनके पूरे पथ पर समरूप झुकाव देते थे (और इसके लिये या तो नलियों को घुमा फिरा कर ले जाना पड़ता था या फिर ऊँचे खंभों पर बिछाना पड़ता था। रोमन पाइपों में से एक, आक्वा मार्शिया, करीब 100 km लंबा है, जबकि उसके छोरों के बीच की सीधी दूरी दुगुनी कम है। पत्थर का पचास किलोमीटर लंबा पुल बनाना पड़ा, सिर्फ इसलिये कि भौतिकी के सरल नियमों का ज्ञान नहीं था।

द्रव नीचे बरतन के तल पर और बगल में दीवारों पर दबाव डालता है—यह वे भी जानते हैं, जिन्होंने कभी भौतिकी का अध्ययन नहीं किया है। लेकिन बहुतों को शक भी नहीं होता होगा कि द्रव ऊपर की दिशा में भी दबाव डालते हैं। साधारण लालटेन के शीशे की मदद से यह दिखाया जा सकता है। गत्ते से एक वृत्त काट लें, जो लालटेनी शीशे का एक मुँह बंद कर सके। उससे मुँह बंद कर के चित्र 53 की भांति शीशे को पानी में डुबायें (बंद मुंह नीचे होना चाहिये)। वृत्त नीचे न गिर जाये, इसलिये उसे या तो उंगली से दबा कर रखें या उसके केंद्र से बंधी डोरी द्वारा पकड़े रहें। शीशे को एक विशेष गहराई तक डुबा लेने पर आप देखेंगे कि वृत्त खुद अपनी जगह पर चिपका रह सकता है, उसे उंगली या धागे से पकड़े रहने की आवश्यकता नहीं है। पानी नीचे से ऊपर की ओर दबाता हुआ उसे अपनी जगह पर चिपका देता है।

आप इस ऊर्ध्वमुखी दबाव को नाप भी सकते हैं। शीशे में सावधानी से पानी डालना शुरू करें। जैसे ही शीशे के भीतर पानी का स्तर बाहरी



चित्र 53 द्रव नीचे से ऊपर की ओर दबाता है—यह देखने का आसान तरीका।



चित्र 54 पेंदे पर द्रव का दाब सिर्फ पेंदे के क्षेत्रफल और द्रव स्तर की ऊंचाई पर निर्भर करता है। चित्र में दिखाया गया है कि इस नियम की जाँच कैसे की जाये।

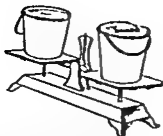
पानी के बराबर हो जायेगा, गत्ते का वृत्त नीचे गिर जायेगा। इसका अर्थ है कि गत्ते पर नीचे से पड़ने वाला दबाव ऊपर से पड़ने वाले शीशे में स्थित जल-स्तंभ के दबाव द्वारा संतुलित हो जाता है (जल-स्तंभ की ऊँचाई उतनी ही है, जितनी गहराई पर गत्ते का वृत्त है)। द्रव में डूबे किसी भी पिंड पर दबाव पड़ने का यही नियम है। द्रव में भार का लोप, जिसके बारे में आर्कमेडिस ने बताया था, इसी ऊर्ध्वमुखी दबाव के कारण होता है।

यदि आपके पास समान छेद वाले, पर भिन्न आकार के शीशे हों, तो द्रवों से सबंधित आप एक और नियम की जांच कर ले सकते हैं। नियम यह है बरतन के पेंदे पर द्रव का दबाव सिर्फ पेंदे के क्षेत्रफल और द्रव स्तर की ऊंचाई पर निर्भर करता है, बरतन के आकार पर नहीं। जांच यही है कि आप लालटेन के भिन्न आकार वाले शीशों के साथ ऊपरोक्त प्रयोग दुहराते हैं। सिर्फ सभी शीशों को द्रव में एक ही गहराई तक डुबाना होगा (और इसके लिये आपको शीशों पर पहले से ही समान ऊंचाइयों पर कागज के पट्टे चिपका लेने होंगे)। आप देखेंगे कि हर बार गत्ता तभी गिरता है, जब शीशे में पानी की एक विशेष ऊँचाई होगी। यह ऊँचाई सभी आकार वाले शीशों के लिये समान होगी (चित्र 54)। इसका मतलब यही है कि भिन्न आकार वाले जल-स्तंभों का दबाव समान होगा, यदि उनकी ऊँचाइयां और उनके आधार के क्षेत्रफल समान हों। इस बात पर विशेष ध्यान दें कि यहां स्तंभ की लंबाई नहीं, बल्कि ऊंचाई का महत्त्व है, क्योंकि लंबा, पर तिरछा झुका हुआ स्तंभ उतना ही दबाव डालेगा, जितना उसी ऊँचाई का सीधा खड़ा छोटा स्तंभ डालता है (यदि उनके आधार बराबर हैं)।

कौनसा पलड़ा भारी है?

तराजू के एक पलड़े पर पानी से लबालब भरी बाल्टी रखी है। दूसरे पर भी पानी से लबालब भरी वैसी ही बाल्टी है, पर उसमें लकड़ी का एक टुकड़ा तर रहा है (चित्र 55)। कौन-सा पलड़ा अधिक भारी होगा?

मैंने यह प्रश्न कई अलग अलग लोगों से किया और उत्तर भी अलग-अलग ही मिला। कुछ लोगों ने जवाब दिया कि लकड़ी वाली बाल्टी अधिक भारी होगी, क्योंकि उसमें "पानी के सिवा लकड़ी का टुकड़ा भी है"।



चित्र 55 दोनो बाल्टिया समान हैं और पानी लबालब भरा है, एक में लकडी का टुकडा तैर रहा है। कौन अधिक भारी होगा।

दूसरो ने बताया कि लकडी के टकडे वाली बाल्टी हल्की होगी, "क्योंकि लकडी पानी से हल्की होती है"।

दोनो ही उत्तर गलत हैं दोनों बाल्टियों का भार समान होगा। यह सच है कि दूसरी बाल्टी में पहली की अपेक्षा कम पानी है, क्योकि तरता हुआ लकडी का टुकडा पानी का कुछ आयतन विस्थापित कर देता है। पर प्लवन के नियम के अनुसार तरता हुआ पिंड द्रव में डूबे हुए अपने भाग द्वारा ठीक उतना द्रव (भार के दृष्टिकोण से) विस्थापित करता है, जितना पूरे पिंड का भार होता है। इसीलिये तराजू सतुलन की अवस्था मे रहेगा।

अब एक दूसरा प्रश्न हल करे। एक पलडे पर अगल-बगल एक बाट और एक गिलास मे थोडा पानी रख देता हूँ। जब दूसरे पलडे पर आवश्यक बाट रख कर तराजू सतुलित कर लेता हूँ, गिलास के बगल मे रखा बाट गिलास मे डाल देता हूँ। तराजू के सतुलन का क्या होगा?

आर्कमेडिस के नियमानुसार बाहर से उठा कर पानी मे रखने से बाट हल्का हो जाता है। अत उम्मीद की जा सकती है कि गिलास वाला पलडा ऊपर उठ जायेगा। पर ऐसा होता नही। कसे आप यह समझायेंगे?

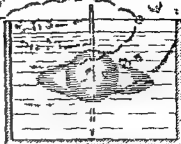
गिलास मे आकर बाट पानी का कुछ भाग विस्थापित कर देता है, जिसके कारण गिलास मे पानी का स्तर कुछ ऊपर उठ आता है। जल स्तभ की ऊचाई म वृद्धि गिलास के पेंदे पर पडने वाले दबाव म वृद्धि ला देता है, जो बाट के भार म ह्रास के बराबर होता है।

द्रव का स्वाभाविक रूप

हम सोचने के आदी हो गये हैं कि द्रवो का अपना कोई रूप नही होता। यह गलत है। द्रव का स्वाभाविक रूप है गोला। अक्सर गुरुत्व भार द्रवो को गोले का रूप नही धारण करने देता। द्रव या तो तल पर पतली परत के रूप म फैल जाता है या बरतन का रूप धारण कर लेता है (यदि



चित्र 56 पानी और स्पिरिट के मिश्रण में तेल न डूबता है, न तैरता है — वह गोले का आकार ग्रहण कर लेता है।



चित्र 57 यदि तैल गोले में पतली छड़ घुसा कर उसे मिश्रण में तेजी से घुमाया जाये तो उसम से एक छल्ला अलग हो जाएगा।

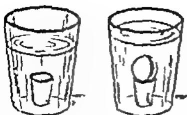
उसमें डाला जाये)। यदि द्रव को उसी विशिष्ट भार वाले दूसरे द्रव में डाला जाये, तो आर्कमेडिस के नियम के अनुसार वह अपना भार "खो" देता है, जैसे उसका भार हो ही न। गुरुत्व उस पर कार्य नहीं करता और तब इस हालत में द्रव अपना स्वाभाविक गोलाकार रूप धारण करता है।

जतून का तेल पानी में तैरता है, पर स्पिरिट में डूब जाता है। इस लिये पानी और स्पिरिट का ऐसा मिश्रण तैयार किया जा सकता है, जिसमें जतून का तेल न तो डूबेगा और न ही तैरेगा। ऐसे मिश्रण में सुई देने वाली पिचकारी द्वारा थोड़ा तेल डाला जाये, तो एक विचित्र बात नजर आयगी तेल एक बड़ी गोल बूंद का रूप धारण कर लेगा, जो न डूबेगी, न तैरेगी, मिश्रण में गतिहीन लटकी रहेगी[1] (चित्र 56)।

प्रयोग बहुत धीरज व सावधानी के साथ करना चाहिये अन्यथा एक बड़ी बूंद के बदले कई नन्ही बूंदें बन जायेंगी। वैसे, प्रयोग इस रूप में भी रोचक रहेगा।

---

[1] बूंद का गोला विकृत रूप में न दिखे, इसके लिये शीशे की समतल दीवारों वाला बरतन लेना चाहिये (या बरतन किसी भी आकार का ले लीजिये, पर उसे पानी से भरे समतल दीवारों वाले बरतन के भीतर रखिये)।



चित्र 58 प्लेटो के प्रयोग का सरलीकरण

काम यहीं खत्म नहीं हो जाता। तैलीय गोले के केंद्र से एक लकड़ी की पतली छड़ (यदि छड़ न हो, तो पतला तार) धुरी की तरह गुजार कर उसे घिरनी सा घुमाते हैं। तलीय गोला भी नाचने लगता है। (प्रयोग और भी सफल होगा, यदि धुरी पर तेल में भीगे गत्ते का वृत्त चिपका दें, वृत्त गोले के भीतर ही होना चाहिये।) घूर्णन के प्रभाव से गोला पहले थोड़ा चपटा होना शुरू कर देता है, और फिर कुछ सेकंड बाद उसमें एक छल्ला सा अलग हो जाता है (चित्र 57)। छल्ला अनियमित रूप वाले टुकड़ों में नहीं टूटता। उसमें नयी छोटी छोटी गोल बूँदें बन जाती हैं, जो बड़े वाले गोले के चारों तरफ घूमना शुरू कर देती हैं।

इस शिक्षाप्रद प्रयोग को प्रथमतः बेल्जियन भौतिकविद् प्लेटो ने किया था। हमने उनके प्रयोग का उसी रूप में प्रस्तुत किया है। उसका अधिक सरल और कारगर रूप निम्न है। एक नन्हा गिलास पानी से खंगाल लेते हैं और उसमें जैतून का तेल भर कर उसे एक बड़े गिलास में रख देते हैं। बड़े गिलास में सावधानीपूर्वक इतना स्पिरिट डालते हैं कि छोटा गिलास डूब जाये। अब चम्मच से बड़े गिलास में दीवार के सहारे थोड़ा थोड़ा कर के पानी डालते हैं। छोटे गिलास में तेल का ऊपरी तल उत्तलोदर होने लगेगा और तेल धीरे धीरे गोले का रूप धारण करता हुआ छोटे गिलास से ऊपर उठ आयेगा और बड़े गिलास में बने पानी और स्पिरिट के मिश्रण में लटका रहेगा (चित्र 58)।

यदि स्पिरिट न हो, तो ऐनिलिन के साथ भी प्रयोग कर सकते हैं। यह एक ऐसा द्रव है, जो साधारण तापक्रम पर पानी से भारी होता है और 75-85°C पर उससे हल्का होता है। पानी में उसे डाल कर यदि गर्म किया जाये, तो एक बड़े गोले का रूप धारण कर लेगा। कमरे के तापक्रम पर एनिलिन की बूंद नमक के घोल में संतुलित की जा सकती है।[1]

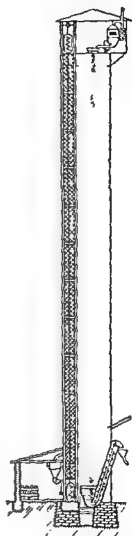
---

[1] दूसरे द्रवों में सुविधाजनक आर्थोतोलाइडीन रहेगा। यह गाढ़े लाल रंग का द्रव है, 24° पर इसका घनत्व उतना ही होता है, जितना नमकीन पानी का, जिसमें इस द्रव को डालते हैं।

छर्रे गोल क्यों होते है?

अभी बताया गया कि कोई भी द्रव भारहीनता की अवस्था मे अपना स्वाभाविक गोलाकार रूप धारण कर लेता है। इसके पहले कहा गया था कि गिरता हुआ पिंड अपना भार खो देता है और उसके गिरने के बिल्कुल शुरू मे हवा का प्रतिरोध नगण्य होता है[1]। इन सब बातो को यदि ध्यान मे रखेंगे, तो फौरन समझ जायेंगे कि स्वतंत्र गिरते हुए द्रवाश का रूप गोल होना चाहिये। वर्षा की गिरती बूंदें गोल ही होती हैं। छर्रे और कुछ नही, बल्कि पिघले सीसे की बूदे हैं, जिन्हे कारखाना की विधि के अनुसार एक बडी ऊँचाई से ठडे पानी के टब मे गिराया जाता है। यहा वे बिल्कुल गोलाकार रूप धारण किये जम जाती हैं।

इस विधि द्वारा ढाला गया छर्रा "मीनारी' कहलाता है, क्योकि उसे छर्रे की ढलाई करने वाले मिनार से पिघली बूदों के रूप मे गिराया


चित्र 59 छर्रे बनाने के लिये मीनार

---

[1]वर्षा की बूदें त्वरित गति से सिर्फ गिरने के आरभ मे ही चलती हैं, लगभग आधे सेकेड के बाद से ही उनकी गति समरूप हो जाती है। सभी बूदें हवा को प्रतिरोधक शक्ति द्वारा सतुलित हो जाती हैं (हवा का प्रतिरोध बूदो की गति के बढने के साथ साथ बढता है)।

जाता है (चित्र 60)। कारखाना में छर्रे की ढलाई करने वाला मीनार धातु का बना होता है और 45m ऊँचा होता है। सबसे ऊपर ढलाई की जाती है, यहाँ कड़ाह मे सीसा पिघलाया जाता है। नीचे ठण्ढ पानी का टब होता है। यहा पर बाद मे छर्रों की चुनाई बिनाई होती है। पिघल सीस की बूँदे गिरते वक्त रास्ते मे ही जम कर छर्रों मे बदल जाती हैं। पानी उनके गोल आकार को चोट से विकृत नही होने देता। (6mm से अधिक व्यास वाले छर्रे दूसरी विधि से बनाये जाते हैं : तार को छोटे-छोटे टकड़ों मे काट कर उन्हें गोलाकार बेल दिया जाता है।)

"अथाह" गिलास

आपने गिलास पानी से लबालब भर दिया है। गिलास के पास पिन पड़े हैं। क्या गिलास मे एक-दो पिन के लिये जगह बन सकती है? कोशिश कर के देखें।

गिलास मे एक-एक कर पिन डालना शुरू करें और उन्हें गिनते जायें। इसलिये देख-सुन कर सावधानी से पानी मे पहले नोक डुबायें, फिर बिना दबाव डाले या ठोकर दिये पिन को हाथ से छोड दें, ताकि हिचकोले से पानी छलके नही। एक पिन पेंदे पर गिर चुका है, दूसरा, तीसरा, पानी की सतह ज्यों की त्यों है। दस, बारह, तेरह ... पानी गिरता नही है। पचास, साठ, सत्तर ... पूरे सौ पिन पेंदे पर गिर चुके हैं, पर गिलास का पानी नहीं गिरता (चित्र 60)।



चित्र 60 पानी भरे गिलास मे पिनो को डालने का प्रयोग।

पानी गिरेगा क्या, वह उठा भी नही है गिलास मे। पिन डालना जारी रखें। दो, तीन, चार सौ पिन गिलास मे आ चुके हैं, पर पानी गिरने का नाम नही लेता। लेकिन अब आप देख सकते हैं कि पानी की सतह फूल गयी है और गिलास की कोर से काफी ऊपर उठ आयी है। इस जटिल परिघटना का सारा रहस्य इसी फूलने मे है। शीशे की सतह यदि थोडी भी तलीय

हो, तो पानी शीशे को नही भिगोता। जैसा कि हमारे द्वारा व्यवहार में लाये जाने वाले सभी बरतनो के साथ होता है, गिलास के कोरो पर भी उगलियो की तैलीय छाप रह जाती है। पिनो द्वारा विस्थापित जल कोर को भिगोता नही और इसीलिये ऊपर उठने के साथ-साथ उन्नतोदर सतह बना देता है। देखने पर सतह अधिक फूला हुआ नही लगता, पर यदि आप बरतन द्वारा एक पिन का आयतन ज्ञात करने का श्रम करेंगे और उसकी तुलना गिलास के कोर से ऊपर उठे पानी की उत्तलता के आयतन के साथ करेंगे, तो आपको विश्वास हो जायेगा कि पिन का आयतन पानी की उत्तलता के आयतन से सकडो गुना कम है और इसीलिये "भरे" गिलास म कुछेक सौ पिन और अँट जायेंगे। बरतन जितना ही चौडा होगा, उसमे पिन भी उतने ही अधिक अँटेंगे, क्योकि फुलावट का आयतन इस स्थिति मे और अधिक होगा।

स्पष्टता लाने के लिये मोटा-मोटी हिसाब लगायें। पिन की लबाई करीब 25 mm है और मुटाई आधा मिलिमीटर। ऐसे बेलन का आयतन ज्यामिति के जाने-पहचाने सूत्र $\left(\frac{\pi d^2 h}{4}\right)$ की मदद से ज्ञात करना कठिन नहा है, वह 5 घन मिलिमीटर के बराबर होगा। सिर समेत पिन का आयतन 5.5 mm से अधिक नही होगा।

अब गिलास के कोर से ऊपर उठे पानी की परत का आयतन ज्ञात करते हैं। गिलास का व्यास 9 cm=90 mm है। यदि ऊपर उठे पानी की परत 1mm मोटी है, तो उसका आयतन 6400 mm^3 होगा। यह पिन के आयतन से 1200 गुना अधिक है। अन्य शब्दो मे, "पूरी तरह भरे" गिलास मे हजार से ज्यादा पिन डाले जा सकते हैं। और सचमुच मे, सावधानी से डालते हुए आप गिलास मे हजार पिन डुबा दे सकते हैं। देखने पर लगेगा कि गिलास मे पिन ही पिन हैं, गिलास से अधिक भी लग सकते हैं, पर पानी की एक बूद भी नही गिरेगी।

किरासिन की दिलचस्प खूबी

जो किरासिन की लालटेन व्यवहार मे लाते हैं, उन्हें उसकी एक अवांछित विशेषता का पता होगा। आप लालटेन की टकी मे तेल भर देते

हैं और बाहर से पोंछ-पाछ कर बिल्कुल सुखा देते है। एक घंटे बाद देखते हैं कि ऊपर से वह पुन गीला है।

इसका अर्थ है कि आपने ठेपी अच्छी तरह घुमा कर बद नहीं की होगी। किरासिन भीतरी दीवारो पर फसता हुआ बाहर निकल आता है और बाहरी दीवारो पर फैल जाता है। यदि आपको इस तरह के "मजाक" पसद नही हैं, तो ठेपी कस के घुमा कर बद कीजिये।[1]

किरासिन का इस तरह रिसना उन जहाजों पर असरता है, जिनकी मशीन किरासिन (या पेट्रोल) से चलती हैं। यदि रिसना रोकने के लिये विशेष व्यवस्था न हो, तो ऐसे जहाजों मे किरासिन या पेट्रोल के सिवा और कोई सामान नही ढोया जा सकता, क्योकि ये द्रव सिर्फ पीपो और कनस्तरो के बाह्य सतह तक ही पसरना सीमित नही रखते। ये हर जगह प्रविष्ट हो जाते हैं और जो भी चीज इन के सपर्क मे आती है, उसी पर हावी हो जाते हैं, यात्रियो के कपडे तक इनसे अछूते नही बचते। और जाहिर है कि इन सब चीजो को ये अपना गध भी प्रदान करते जाते हैं, जिसे नष्ट करना एक असभव सा काम है। इस के साथ सघर्ष अक्सर बेकार सिद्ध होता है।

अग्रेज व्यग्यकार जेरोम ने "एक नाव मे तीन" नामक पुस्तक मे किरासिन पर कोई अतिशयोक्ति नही की है

> मैं नही जानता कि किरासिन से अधिक कोई चीज फलने मे माहिर है। हमने उसे नाव की नाक के पास रखा और वह दुम तक पहुच गया। उसके रास्ते मे जो भी चीज आयी, उसने अपनी गध मे लपेट लिया। जोडो से रिसता हुआ वह पानी मे पहुँच गया, वह हवा से लेकर आकाश तक को दूषित कर रहा था सर्वत्र जीवन को विषाक्त कर रहा था। किरासिनी हवा बह रही थी, कभी पश्चिम से, तो कभी पूरब से कभी-कभी उत्तरी किरासिनी हवा भी बहती

---

[1]पर ठेपी कस कर बद करते वक्त यह न भूले कि टकी लबालब नही भरी होनी चाहिये। गर्म करने पर किरासिन का आयतन काफी बढता है (100°C तापक्रम बढाने पर आयतन का लगभग दसवा भाग)। किरासिन के आयतन प्रसार के लिये जगह छोडनी चाहिये ताकि टकी फटे नहीं।

थी, या शायद दक्षिणी, पर चाहे हिमाच्छादित आर्कटिक से चली हो या मरुभूमि की रेत में पैदा हुई हो, किरासिन की सुगंध से ओत-प्रोत वह हमेशा हम तक पहुँच जाती थी। शामों को यह खुशबू सूर्यास्त के सौन्दर्य को नाश करने में लग जाती थी, और चंद्र-किरणें सिर्फ किरासिन बरसाया करती थीं ... पुल के पास नाव बाँध कर शहर का चक्कर लगाने चले, पर इस भयानक गंध ने हमारा पीछा नहीं छोड़ा। लगता था जैसे सारा शहर इसमें डूबा हो।' (दर असल यात्रियों के कपड़े इस गंध में डूबे हुए थे।)

टंकियों के बाह्य तल को भिगोने के गुण ने लोगों में गलतफहमी ला दी थी कि किरासिन धातु और शीशे के आर-पार जा सकता है।

पानी में नहीं डूबने वाला सिक्का

सिर्फ किस्सों में नहीं होता। ऐसा सिक्का सचमुच में है। कुछ सरल प्रयोगों से ही आपको यह विश्वास हो जायेगा। कुछ छोटी वस्तुओं से शुरू करते हैं। शायद आपको लगे कि इस्पात की सुई को पानी के तल पर तैराया नहीं जा सकता, पर यह बहुत आसान है। पानी के तल पर टीशू-पेपर (महीन सिगरेटी कागज) का टुकड़ा रख दें और इस पर—बिल्कुल सूखी सुई। अब सावधानीपूर्वक सुई के नीचे से सिर्फ कागज हटाना रह जाता है। यह इस प्रकार करते हैं: एक दूसरी सुई या आलपीन से लैस हो कर कागज के टुकड़े को एक किनारी से पानी में डुबाना शुरू करते हैं। जब टुकड़ा पूरी तरह भीग जायगा, वह पानी के अंदर चला जायेगा और सुई तैरती रहेगी (चित्र 61)। चुंबक निकट ला कर आप सुई को मनचाही दिशा में घुमा फिरा सकते हैं।

विशेष अभ्यास के बाद कागज की भी जरूरत नहीं पड़ती: सुई को बीच से पकड़ कर क्षितिजावस्था में पानी के तल पर गिरा दे सकते हैं, वह तैरती रहेगी।

सुई की बजाय आप पिन को तैरा सकते हैं (ये चीजें 2 mm से अधिक मोटी नहीं होनी चाहियें), या फिर हल्के-फुल्के बटन, छोटी चौरस धातुई वस्तुओं आदि के साथ भी यह प्रयोग कर सकते हैं। इन चीजों के





चित्र 61 पानी पर तरता सुई। ऊपर—सुई का अनुप्रस्थकाट (2 mm चौडा) और सुई के कारण पानी मे बने गड्ढे का सही सही रूप (चित्र दुगुने आकार का है)। बायें—सुई को पानी की सतह पर तराने की विधि।

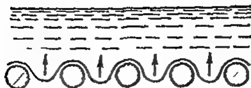
साथ अच्छा अभ्यास हो जाने पर छोटे सिक्के को तराने की कोशिश कीजिये।

इन धातुई वस्तुओ के नही डूबने का कारण यह है कि पानी हमारे हाथ मे आयी धातु की वस्तुओ को भिगोने मे असमर्थ होता है, क्योकि हमारे हाथो मे लगे तैलीय पदार्थ उनपर महीन झिल्ली के रूप मे छा जाते हैं। सुई को पानी भिगो नही सकता, इसीलिये सुई के गिर्द पानी के तल पर गड्ढा सा बना दिखता है (दूसरे शब्दों मे, पानी तैलीय सुई से चिपक नही सकता, उससे थोडा अलग ही रहता है)। द्रव मे सतह की झिल्ली सीधी होने की प्रवृत्ति रखती है और इसीलिये सुई पर नीचे से दबाव डालती है। सुई इसी दबाव के कारण तल पर टिकी रहती है। प्लवन नियम के अनुसार द्रव मे ऊपर धकेलने वाला बल भी सुई को तल पर टिके रहने मे मदद करता है सुई द्वारा विस्थापित जल के भार के बराबर का बल सुई को ऊपर की ओर धकेलता है।

सुई को पानी पर तराना और आसान होगा, यदि आप उस पर तेल मल ले। इस स्थिति मे आप सुई को सीधे पानी के तल पर रख दे सकते हैं, वह डूबेगी नही।

चलनी मे पानी

चलनी मे पानी भर कर लाना भी सिर्फ किस्सो की बात नही है। प्राचीन काल से ही असभव माने जाने वाले इस कार्य को भौतिकी के ज्ञान से सफलतापूर्वक सपन्न किया जा सकता है। इसके लिये महीन तार का



चित्र 62 पराफीन में भीगी चलनी से पानी क्यों नहीं चूता।

बनी करीब 15 cm चौड़ी चलनी ले। इसने छेद बहुत बड़े नहीं होने चाहिये—करीब 1 mm के हों, तो काम चल जायेगा। इसे गम पिघले पैराफीन में डुबा कर निकाल ले तारों को पैराफीन की पतली परत ढक लेगी, पर दिखेगी नहीं (मुश्किल से दिखेगी!)। चलनी चलनी ही रहेगी, अर्थात् उसके छेद बंद नहीं हो जायेंगे—यह आप सुई की मदद से जांच कर के देख सकते हैं। अब आप इस चलनी म पानी भर सकते हैं। ऐसी चलनी मे पानी की पर्याप्त मोटी परत को रोक रखने की क्षमता होती है। पानी छेदों से नहीं गिरेगा, यदि आप सावधानी से पानी डालेंगे और चलनी में ठोकर नहीं लगने देंगे।

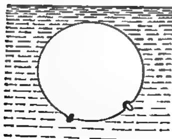
पानी क्यों नहीं गिर जाता? क्योंकि पानी पैराफीन से चिपकता नहीं (उसे भिगोता नहीं) और इसीलिये चलनी के छेदों के पास महीन झिल्लियां बनाता है, जिनकी निचली सतहें नीचे की ओर उत्तल होती हैं। ये ही पानी को गिरने से रोकती हैं (चित्र 62)।

पैराफिन मे डुबायी गयी ऐसी चलनी पानी पर रख सकते हैं, उसमे पानी नहीं भरेगा। अत ऐसी चलनी में सिर्फ पानी ही नहीं लाया जा सकता, उसमें बैठ कर उसे नाव की तरह चलाया भी जा सकता है।

उपरोक्त विरोधाभासी प्रयोग अनेक साधारण परिघटनाओं को समझाता है, जिनके हम इतने आदी हो गये हैं कि उनके कारणों के बारे में सोचते भी नहीं। नावों और पीपा पर कोलतार पोतना, डॅपी और कागों पर तलीय पदार्थ लगा देना, तलरगों से रंगना, जल-सह बनाने के लिये वस्तुओं की सतह को तलीय कर देना, कपड़े पर रबड की महीन परत जमाना—यह सब और कुछ नहीं, बल्कि ऊपरोक्त प्रकार की चलनी तैयार करना ही है। सार हर जगह एक ही है, सिर्फ चलनी के उदाहरण में बात असाधारण सी लगने लगती है।

इस्पात की सुई और तांबे के सिक्के को तैराने के प्रयोग से मिलती जुलती एक और घटना है, जिसे खनिज उद्योगों में अयस्कों के सान्द्रण के लिये उपयोग करते हैं। सान्द्रण का अर्थ है अयस्कों में निहित कीमती अवयवों की मात्रा अधिक करना। अयस्क-सान्द्रण की कई तकनीकी विधियां हैं, पर जिसके बारे में हम बताने जा रहे हैं, वह सबसे कारगर विधि है, इसका उपयोग उस समय भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है, जब अन्य विधियां लक्ष्य सिद्धी के लिये पर्याप्त नहीं होतीं। इसे "उत्प्लवन विधि" कहते हैं।

उत्प्लवन (अर्थात तैर कर ऊपर आ जाना) विधि का सार निम्न है। बारीक पिसे अयस्क को पानी और तैलीय पदार्थों से भरे कुण्डों में डाला जाता है। तैलीय पदार्थ ऐसे होते हैं, जो मुल्यवान खनिजों के कणों पर महीन झिल्ली के रूप में छा कर उन्हें पानी से अलग धेर देते हैं। मिश्रण को हवा के साथ तेजी से मिलाया जाता है, जो छोटे छोटे बुलबुलों के रूप में फेन बना लेती है। तेल से चिपटे खनिज-कण इन बुलबुलों से चिपक जाते हैं और बुलबुलों के साथ ऊपर उठ जाते हैं (चित्र 63)। बुलबुले यहां गुब्बारे की तरह काम करते हैं। अन्य बेकार पदार्थों के कण, जिन पर तेल की झिल्ली नहीं है, बुलबुलों के साथ नहीं चिपकते, नीचे द्रव में ही रह जाते हैं। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि बुलबुलों का आयतन काफी बड़ा होता है और इसीलिये वे खनिज-कणों को अपने साथ ऊपर उठाने में समर्थ होते हैं। प्रक्रिया के अंत में लगभग सारे खनिज-कण फेन के साथ द्रव के ऊपर उठ आते हैं। फेन अलग करके उससे सान्द्र प्राप्त किया जाता है, जिसमें प्रारंभिक अयस्क से दस गुना अधिक बहुमूल्य खनिज होता है।



चित्र 63. उत्प्लवन का कारण।

उत्प्लवन विधि इतनी सविवरण ज्ञात हो चुकी है कि अयस्क में कितना भी बेकार पदार्थ क्यों न हो, उसमें कोई भी खनिज अलग कर लिया जा सकता है। इसके लिये सिर्फ आवश्यक द्रवों का चयन करना चाहिये।

उत्प्लवन विधि को सिद्धात ने नही जन्म दिया है, एक आकस्मिक तथ्य के ध्यानपूवक अवलोकन ने दिया है। पिछली शती के अत मे एक अमरीकी शिक्षिका (करी एवसन) तेल से गदी बोरिया को धो रही थी, जिसमे पडे ताम्र पायराइट था। उसने ध्यान दिया कि पायराइट के कण साबुन के फेन के साथ ऊपर उठ आते है। इसी प्रेक्षण के आधार पर उत्प्लवन विधि का विकास हुआ।

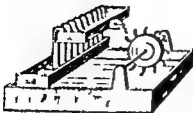
मिथ्या "शाश्वत चलित्र"

किताबो म एक सच्चे 'शाश्वत चलित्र' के रूप मे अक्सर निम्न उपकरण का वणन दिया जाता है (चित्र 60) एक बरतन से बाती के सहारे तेल (या पानी) ऊपरी बरतन मे पहुँचाया जाता है। फिर दूसरी बातियो की मदद म तल सबमे ऊपरी बरतन मे आ कर जमा होता है। इस बरतन म एक छेद होता है जिससे तेल बहता हुआ चक्की की पखुडियो पर गिरता है और चक्की को घुमाने लगता है। यहा से बह कर गिरे तेल को पुन बातियो द्वारा क्रमश ऊपरी बरतनो मे पहुँचाया जाता है। इस प्रकार, तेल का छेद से हो कर पखुडियो पर गिरना कभी बद नही होता और इसीलिये चक्की का अनत काल तक गतिमान रहना चाहिये

यदि इस घिरनी का वणन करने वाले लेखक कभी खुद इसे बनाने का श्रम करते, तो वे मान लेते कि चक्की तो क्या घूमगी, ऊपरी बरतन म तेल की एक बूद भी नही जमा होगी।

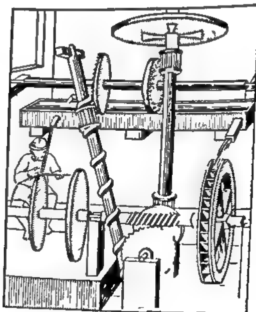
वैसे, घिरनी बनाना शुरू किये बगर भी यह सिद्ध किया जा सकता है। आविष्कारक आखिर यह क्यो सोचता है कि तेल बाती के सहारे ऊपर चढकर उसके ऊपरी मुडे सिरे से चूना शुरू कर देगा? केशीय (कपिलरी) आकषण द्रव को गुरुत्व बल के विरुद्ध ऊपर चढाता है फिर यही कारण भीगी बाती के पोरो मे द्रव को वही बनाये रखेगा, वहा से चूने नही देगा। यदि यह मान ही ल कि हमारी मिथ्या घिरनी के ऊपरी बरतन म द्रव केशीय बल द्वारा लाया जाता है, तो यह भी मानना पडेगा कि वे ही बातिया तेल को वापस नीचे ले जायेगी।

यह मिथ्या शाश्वत चलित्र एक दूसरे जल यत्र की याद दिलाता है जिसे सन 1575 मे एक इटालियन मैकेनिक स्त्राद ज्येष्ठ ने "शाश्वत"



चित्र 64 असफल घिरनी।

गति की मशीन के रूप में प्रस्तुत किया था। यह दिलचस्प उपकरण चित्र 65 में दिखाया गया है। आर्कमेडिस स्क्रू से घूमता हुआ पानी ऊपरी हौज में भरता है और फिर टाटी से धार के रूप में चक्के की पखुडियों पर गिरता है। यह चक्का कई दंति चक्रों की मदद से छूरी पिजाने वाले चक्के और आर्कमेडिस स्क्रू को घुमाता है, जो पानी ऊपर के हौज तक ले जाता है। स्क्रू चक्के को घुमाता है और चक्का स्क्रू को! यदि ऐसे उपकरण सम्भव होते, तो उनमे से सबसे आसान होता घिर्री पर रस्सी चढ़ा कर उसके



चित्र 65 छूरी पिजाने की मशीन के लिये जल "शाश्वत" चलित्र की पुरानी योजना।

डोरी से बोझ लटका देना। जब एक बोझ गिरता, तो वह दूसरे को ऊपर उठाता और जब दूसरा गिरता, तो वह पहले वाले को ऊपर उठाता। अच्छा-खासा "शाश्वत" चलित होता यह!

साबुन के बुलबुले

आपको साबुन के बुलबुले उड़ाना आता है? यह इतना आसान नहीं है, जितना कि लगता है। मुझे भी लगता था कि इसके लिये किसी खास निपुणता की आवश्यकता नहीं है, पर बाद में मानना पड़ा कि सुंदर और बड़े बुलबुले छोड़ना भी अपने ढंग की एक कला है और इसमें माहिर होने के लिये अभ्यास की आवश्यकता है। लेकिन साबुन के बुलबुले बनाने जैसे निरर्थक काम से भी कोई फायदा है?

लोगों के बीच इस काम को कोई खास प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त है, इस काम में रत लोगों को कोई अच्छी उपमा नहीं दी जाती। पर भौतिकविद् इसके बारे में कुछ और ही कहते हैं। "साबुन का बुलबुला बनाइये,— महान अंग्रेज भौतिकविद केल्विन ने लिखा है,—और उस पर गौर से देखिये, आप सारी जिंदगी उसके अध्ययन में बिता सकते हैं। आपको इससे निरंतर भौतिकी का ज्ञान मिलता रहेगा"।

साबुन की महीनतम झिल्लियों की सतह पर रंगों की मोहक क्रीड़ा सचमुच में ज्ञानवर्धन का साधन है। उसकी सहायता से भौतिकविद प्रकाश तरंगों की दीर्घता नाप सकता है। इन सुकुमार झिल्लियों की तनाव के अध्ययन से कणिकाओं के पारस्परिक बलों की क्रियाशीलता के नियम ज्ञात हो सकते हैं। ये वही संसंजक बल हैं, जिनके लुप्त होने पर दुनिया में महान धूल के सिवा और कुछ भी नहीं बचता।

जो चंद प्रयोग नीचे दिये जा रहे हैं, उनका लक्ष्य इन गंभीर समस्याओं को हल करना नहीं है। ये सिर्फ मनोरंजन के लिये दिये जा रहे हैं, इनसे साबुनी बुलबुले बनाने की कला का ज्ञान भर हो सकता है। अंग्रेज भौतिकविद चार्ल्स ब्वायज की पुस्तक "साबुन के बुलबुले" में तरह-तरह के अनेक प्रयोग दिये गये हैं। जिन्हें साबुन के बुलबुलों में रुचि हो, वह पुस्तक को पढ़ सकते हैं। यहां हम सिर्फ कुछ सरल प्रयोगों का वर्णन कर रहे हैं।

ये प्रयोग कपड़े साफ करने वाले साधारण साबुन के घोल से भी

किये जा सकते हैं,[1] पर जिन्हें इच्छा हो, जैतून या बादाम के तेल से बने साबुन का व्यवहार कर सकते हैं। इनसे बुलबुले बड़े और सुंदर बनते हैं। साफ ठंडे पानी में ऐसे साबुन के टुकड़े को सावधानीपूर्वक घोल लेते हैं। घोल पर्याप्त गाढ़ा होना चाहिये। साबुन वर्षा या पिघली बर्फ से प्राप्त साफ पानी में घोलना चाहिये। यदि ऐसा पानी न हो, तो खौला कर ठंडा किये गये पानी में भी काम चल जायेगा। बुलबुले देर तक टिकें, इसलिये प्लेटो सलाह देते हैं कि घोल में आयतनानुसार करीब एक तिहाई ग्लिसरीन मिलाना चाहिये। घोल की सतह पर बने फेन और बुलबुलों को चम्मच द्वारा हटा लेते हैं। मिट्टी की महीन नलिका के एक छोर को भीतर और बाहर साबुन से मल कर घोल में डुबाते हैं। यदि नलिका नहीं हो, तो करीब दस सेंटीमीटर लंबा पुआल का टुकड़ा लें और इसके एक सिरे को क्रौस की तरह थोड़ा फाड़ लें। इससे भी काम चल जायेगा।

बुलबुला बनाने की विधि इस प्रकार है: नलिका को घोल में डुबा कर निकालते हैं और उसे सीधा खड़ा पकड़े रहते हैं, ताकि उसके सिरे पर घोल की एक महीन झिल्ली बन जाये। अब नलिका में सावधानीपूर्वक फूँकते हैं। बुलबुला हमारे फेफड़ों से निकलने वाली गर्म हवा से भरा होता है, जो कमरे की हवा से हल्की होती है। इसीलिये बुलबुला तुरंत ऊपर की ओर उड़ता है।

यदि पहली बार में ही करीब दस सेंटीमीटर व्यास वाला बुलबुला छोड़ने में सफलता मिल जाती है, तो घोल ठीक बना है। यदि ऐसा नहीं है, तो घोल में और साबुन मिलायें, जबतक कि उपरोक्त आकार के बुलबुले नहीं प्राप्त होने लगें। लेकिन यह परीक्षण पर्याप्त नहीं है। उंगली को घोल में गीली कर उसे बुलबुले में भोंकने की कोशिश करते हैं। यदि बुलबुला फट जाता है, तो घोल में और साबुन मिलाना चाहिये और यदि बुलबुला नहीं फटता है, तो आप प्रयोग शुरू कर सकते हैं।

प्रयोग सावधानीपूर्वक धीरे-धीरे और शांत चित्त से करना चाहिये। प्रकाश काफी तेज होना चाहिये, अन्यथा बुलबुले अपनी इन्द्रधनुषी आभा नहीं दिखायेंगे।

बुलबुला के साथ चंद मनोरंजक प्रयोग निम्न हैं।

---

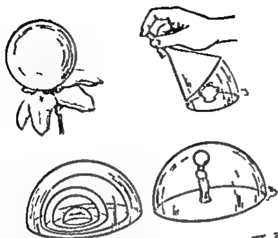
[1] टायलेट सोप इन प्रयोगों के लिये खास उपयुक्त नहीं हैं।

बुलबुले के भीतर फूल। थाल या ट्रे मे साबुन का इतना घोल डालते है कि थाल की पेंदी पर करीब 2-3 mm मोटी परत बन जाये। बीच मे एक फूल या नन्ही सुराही रखने हैं और उसे काच की कीप से ढक देते हैं। इसके बाद कीप को धीरे धीरे उठाते हुए, उसकी सकरी नली मे फूँकते हैं। इससे साबुनी बुलबुला बनता है। जब बुलबुला पर्याप्त बडा हो जाये, कीप को चित्र 66 की भाँति तिरछा करते हुए बुलबुले से अलग कर लें। फूल एक महीन अर्द्धगोलाकार पारदर्शक गुबज से ढक जायेगा, जिसपर आप को सारे इन्द्रधनुषी रगो की आभायें दिखेंगी।

फूल की बजाय आप छोटी प्रतिमा भी ले सकते हैं। प्रतिमा के सिर पर एक छोटा बुलबुला भी रख सकते हैं (चित्र 66)। इसके लिये प्रतिमा के सिर पर घोल की कुछ बूदे रख देते हैं। जब प्रतिमा के गिर्द गुबजनुमा बुलबुला बन जाय, तो इस बुलबुले मे नलिका भोक कर प्रतिमा के सिर पर पडी घोल की बूद से एक छोटा बुलबुला बना देते हैं।

बुलबुले मे बुलबुले (चित्र 66)। उपरोक्त विधि द्वारा ही कीप से एक बडा बुलबुला बना लेते है। फिर पुआल को ऊपरी सिर तक (मुह मे ले कर फूक जाने वाले हिस्से को छोड कर) घोल मे गीला कर लेते हैं। फिर उसे सावधानीपूर्वक बुलबुले की दीवार मे भोक कर केंद्र तक ले जाते हैं। उसमे फूक देते हुए उसे वापस खीचते हैं, पर इतना नही कि बडे बुलबुले की दीवार से सटे। इस प्रकार बडे बुलबुले मे उससे कुछ छोटा बुलबुला प्राप्त होगा। इसके भीतर आप तीसरा और तीसरे के भीतर चौथा आदि बुलबुले बना सकते हैं।

साबुनी झिल्ली का बेलन (चित्र 67) तार के दो छल्लो द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। निचले छल्ले पर साधारण गोल बुलबुला बना कर रखते हैं और इसपर दूसरा गीला किया हुआ छल्ला रख कर ऊपर उठाते है। इससे बुलबुला खिचने लगता है और बेलन के आकार का हो जाता है। मजे की बात यह है कि यदि आप छल्ले को बुलबुले की परिधि से अधिक ऊँचा उठायेंगे, तो बेलन का आधा भाग सकरा होने लगेगा और दूसरा अर्द्ध मोटा होने लगेगा। और अधिक खीचने पर बुलबुला टूट कर दो बुलबुलो मे विभक्त हो जायेगा।



चित्र 66 साबुन के बुलबुलो के साथ प्रयोग फूल पर बुलबुला, गमले के धारा और बुलबुला, बुलबुलो मे बुलबुले बुलबुल के भीतर बलबुला धारण किये प्रतिमा।

साबुनी मिल्ली हर समय तनाव की स्थिति म हाती है और बुलबुले म बंद हवा को दबाती रहती है। कीप की नली मोमबत्ती की लौ के निकट लायें, आपको मानना पडेगा कि इतनी महीन झिल्लियो म भी कोई कम शक्ति नही है लौ एक ओर को मुड जाती है (चित्र 68)।



चित्र 67 बेलनाकार बलबुला बनाना।



चित्र 68 बुलबुले की दीवार हवा को धकेलती है।

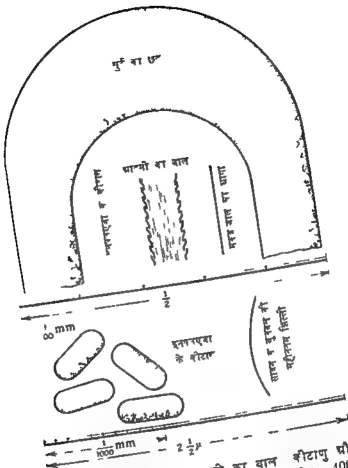
गर्म स्थान से ठंडे स्थान में लाये गये बुलबुले का प्रेक्षण भी दिलचस्प है उसका आयतन कम होने लगता है। इसके विपरीत ठंडी से गर्म जगह में लाने पर बुलबुले का आयतन बढने लगता है। इसका कारण निश्चय ही बुलबुले में कैद हवा का संकोचन या प्रसार है। यदि –15°C पर बुलबुले का आयतन 1000 cm^3 है और उसे +15°C तापक्रम पर स्थित कमरे में लाया जाता है, तो उसके आयतन में वृद्धि होती है

$1000 \times 30 \times \frac{1}{273}$ = करीब 110 घन सेंटीमीटर।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि बुलबुला की क्षणभंगुरता जैसे विचार पूरी तरह सही नहीं हैं ढंग से बर्ताव किया जाये, तो वह दसियों दिन सुरक्षित रहता है। अंग्रेज भौतिकविद डेवर ने (जो वायु के द्रवीकरण पर शोधकार्यों के लिये प्रसिद्ध हैं) बुलबुलों को महीनों तक सुरक्षित रखने में सफलता प्राप्त की। उन्हों ने उसके लिये विशेष बोतलों का उपयोग किया, जो बुलबुलों को सूखने से तथा धूल व हिचकोलों से बचाती थीं। अमरिकावासी लौरेंस को कांच के ढक्कनों में वर्षों तक बुलबुलों को सुरक्षित रखने में सफलता मिली।

सबसे बारीक क्या है?

शायद बहुत ही कम लोगों को पता होगा कि साबुनी बुलबुले की झिल्ली का नाम खाली आँखों से दिखने वाली सूक्ष्मतम वस्तुओं में आता है। साबुनी झिल्ली की तुलना में वे वस्तुएं भी काफी मोटी हैं, जिन्हें हम बारीकी की उपमा के रूप में व्यवहार करते हैं। 'कागज सा पतला' या 'बाल सा महीन' आदि उपमायें साबुनी बुलबुले की दीवार के सामने निरर्थक हैं, क्योंकि वह बाल या सिगरेटी कागज से 5000 गुना अधिक बारीक होती है। आदमी के सर का बाल 200 गुना बड़ा करने पर करीब एक सेंटीमीटर मोटा लगेगा। साबुन की झिल्ली का परिच्छेद (काट) इतना बढाने पर दिखेगा भी नहीं। यदि उसे 200 गुना और बढ़ाया जाये तो वह एक बारीक रेखा के रूप में दिखेगा। बाल को इतना (अर्थात 40000 गुना!) बढ़ाने पर वह 2 m से अधिक मोटा लगेगा। चित्र 69 इन अनुपातों को दृश्य सुगम बनाता है।

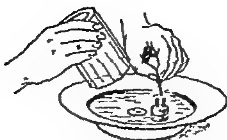


चित्र 69 ऊपर–सुई का छेद, आन्मी का बाल कीटाणु और मकड जाले का धागा (200 गुना बडे आकार मे)। नीचे–40000 गुने बडे आकार मे कीटाणु व साबन के बुलबुले की दीवार। 1μ=0 0001cm

पानी मे भी सूखा

बडी चौरस थाल म एक सिक्का रख कर थोडा पानी डाल, ताकि सिक्का डूबा रहे। मेहमाना से बिना उगली गीला किय सिक्का उठान का कहे।

यह काम असभव सा लगता है पर एक गिलास और जलने कागज की



चित्र 70. तश्तरी का सारा पानी औंधे गिलास के नीचे जमा कैसे किया जा सकता है।

सहायता से सरलतापूर्वक सफल हो सकता है। कागज में आग लगा दीजिये, जलता हुआ कागज गिलास में रखिये और गिलास फुर्ती से थाल में सिक्के के निकट उलट कर रख दीजिये। कागज बुझ जायगा, गिलास में सफेद धुआं भर जायेगा और इसके बाद थाल का पानी खुद-ब-खुद गिलास के नीचे जमा हो जायेगा। सिक्का अपनी जगह पर ही रहेगा। एकाध मिनट बाद जब वह सूख जाय, आप बिना उंगली गीला किये उसे उठा ले सकते हैं।

कौन सा बल पानी को गिलास के नीचे समेट ले जाता है और एक नियत ऊँचाई पर उसका स्तर बनाये रखता है? वातावरण का दबाव। जलता हुआ कागज गिलास के भीतर की हवा को गर्म कर देता है, भीतर दबाव बढ़ जाता है, हवा का कुछ भाग बाहर निकल आता है। जब कागज का जलना बुझ जाता है, हवा पुनः ठंडी हो जाती है और भीतर दबाव काफी कम हो जाता है, तब बाहरी हवा के दबाव से पानी सिमट कर गिलास में चला जाता है। कागज की जगह आग में चुभी माचिस की तीलियों से भी काम चलाया जा सकता है (चित्र 70)।

अक्सर इस पुराने प्रयोग की एक गलत व्याख्या सुनने व पढ़ने को मिलती है।[1] कहते हैं कि इसमें "आक्सीजन जल जाता है" और इसीलिये

---

[1]पहली बार इसका वर्णन ईसा पूर्व पहली शती में प्राचीन बाइज़ेंटीनी भौतिकविद फिलो ने किया था और उन्होंने इसकी बहुत ही सही व्याख्या दी थी।

औंधे गिलास के नीचे गैस की मात्रा कम हो जाती है। ऐसी व्याख्या बहुत ही गलत है। मुख्य कारण गिरे हुए पानी के गैस होने में है, जलते कागज द्वारा आक्सीजन खाया" में बिलकुल नहीं। यह निष्कर्ष सरल पहले इस बात से निकलता है कि यहां जलते हुए कागज के बिना भी काम चल सकता है, गिलास को खौलते पानी से भराकर गरम कर देना ही काफी रहेगा। दूसरे यदि कागज की जगह स्पिरिट में डुबायी हुई रूई ली जाय, जो तेजी से और देर तक जलती रहती है, तो गिलास में करीब आधा ऊँचाई तक पानी चढ़ जायगा, जबकि ज्ञात है कि हवा के आयतन में आक्सीजन का सिर्फ $^1/_5$ भाग होता है। और अंत में यह भी ध्यान देने योग्य है कि जले हुए आक्सीजन से जल-वाष्प और कार्बन डायक्साइड गैस बनती है। कार्बन डायक्साइड तो पानी में घुल जाती है, पर वाष्प रह जाता है और अंशतः आक्सीजन का स्थान ले लेता है।

हम कैसे पीते हैं?

क्या ऐसे प्रश्नों पर भी सोचना पड़ेगा? और नहीं तो क्या! हम गिलास या चम्मच में द्रव अपने मुंह के पास लाते हैं और अपने भीतर "खींच" लेते हैं। द्रव को इस तरह खींचना बहुत ही साधारण बात है, हम इसके आदी हो गये हैं। पर इसी "खींचने" की प्रक्रिया को तो समझाना है। आखिर क्या द्रव मुंह में खिंचता चला आता है? कौन सी चीज उसे खींचती है? कारण ऐसा है : पीते वक्त हम वक्ष फुलाते हैं और इससे मुंह में हवा विरल (कम) हो जाती है, बाह्य वातावरण के दबाव से द्रव उस स्थान की ओर सिमटता है, जहां दबाव कम है और इस प्रकार द्रव हमारे मुंह में खिंच कर आ जाता है। यहां वही होता है, जो द्रवयुक्त संचारी बरतनों में से एक में हवा विरल कर देने से होगा : वातावरण के दबाव के कारण इस बरतन में द्रव का स्तर ऊँचा हो जायेगा। इसके विपरीत, यदि हम बोतल के मुंह को होंठों से पकड़ कर भीतर के पानी को चूस कर खींचने का लाख प्रयत्न करें, कुछ भी नहीं होगा, क्योंकि बोतल और आपके मुंह में दबाव समान है।

अतएव यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि हम सिर्फ मुंह से नहीं, फेफड़ों से भी पीते हैं, फेफड़ों का फैलना ही वह कारण है, जिससे पानी मुंह की ओर खिंचने लगता है।

कीप में सुधार

जिन्हें कीप की सहायता से बोतल में द्रव डालने का मौका मिला है, वे जानते होंगे कि समय-समय पर कीप को थोड़ा ऊपर उठाना चाहिये, अन्यथा कीप में से द्रव नहीं ढलेगा। बोतल में स्थित हवा को बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिलता, अतः वह अपने दबाव से द्रव को कीप में रोक रखती है। सिर्फ शुरू-शुरू थोड़ा द्रव बोतल में ढलता है और इससे भीतर की हवा कुछ दब जाती है। कम आयतन में सिमटी हवा की प्रत्यास्थता (गठापन) इतनी बढ़ जाती है कि वह अपने आंतरिक दबाव से कीप में द्रव को संतुलित कर दे। जाहिर है कि कीप को उठा कर हम दबी हवा को बाहर निकलने का रास्ता देते हैं और तब द्रव पुनः बोतल में गिरने लगता है।

इसीलिये ऐसी कीप अधिक उपयोगी होगी, जिसके संकरे भाग की बाहरी दीवार पर अनुतीर नाले बने हों। इससे कीप बोतल का मुँह अच्छी तरह नहीं बंद कर सकेगी और हवा बिना रोक-टोक के बोतल से बाहर निकल सकेगी।

एक टन लकड़ी और एक टन लोहा

इस मजाकिया प्रश्न से सभी परिचित होंगे "क्या अधिक भारी है—एक टन लकड़ी या एक टन लोहा?" अक्सर लोग बिना सोचे-समझे उत्तर देते हैं कि एक टन लोहा अधिक भारी होगा। सुनने वाले प्यार से हँसते हैं।

शरारतियों को और जोर की हँसी आयेगी, यदि उन्हें कहा जाये कि एक टन लकड़ी एक टन लोहे से अधिक भारी होगी। यह जवाब और भी बेढब है, पर यदि सच पूछें तो यह अधिक सही है।

आर्कमिडिस का नियम सिर्फ द्रवों पर ही नहीं, गैसों पर भी लागू होता है। हवा में हर वस्तु उतना भार "खोती" है जितना उसके द्वारा विस्थापित हवा का भार होता है।

लकड़ी और लोहा भी हवा में अपने भार का कुछ अंश खोते हैं उनके भार में कमी आ जाती है। उनका वास्तविक भार ज्ञात करने के

लिये इस कमी की पूर्ति करनी होगी। अतः हमारे प्रश्न में लकड़ी का यथार्थ भार बराबर होगा एक टन + लकड़ी के आयतन में शुद्ध हवा का भार, लोहे का — एक टन + लोहे के आयतन में शुद्ध हवा का भार।

पर एक टन लकड़ी कहीं अधिक स्थान घेरता है, अपेक्षा कि एक टन लोहा, ये (करीब 15 गुना अधिक)। इसलिये एक टन लकड़ी का यथार्थ भार एक टन लोहे के यथार्थ भार से अधिक होगा। यदि और सही अभिव्यक्ति दी जाय, तो हम कहना चाहिये हवा में एक टन भार वाली लकड़ी का यथार्थ भार हवा में एक टन भार वाले लोहे के यथार्थ भार से अधिक होता है।

चूंकि एक टन लोहे का आयतन $1/8$ m^3 होता है और लकड़ी का — करीब 2 m^3, तो उनके द्वारा विस्थापित हवा के भारों में अन्तर करीब 2.5 kg होगा। एक टन लकड़ी वास्तविकता में एक टन लोहे से इतनी ही अधिक भारी होती है।

भारहीन आदमी

बहुतों को बचपन से ऐसी कल्पना लुभावनी लगती होगी कि वे रूई के फाहे क्या, हवा से भी हल्के हो गये हैं[1] और गुरुत्व की भारी जंजीरों को तोड़ कर आकाश में जहां चाहें, उन्मुक्त उड़ सकते हैं। पर वे अक्सर एक बात भूल जाते हैं : लोग पृथ्वी पर स्वतंत्र रूप से चल सकते हैं सिर्फ इसलिये कि वे हवा से भारी हैं। दरअसल 'हम वातावरण रूपी सागर के तल पर रहते हैं' — टारीसेली ने कहा था। यदि हम अचानक हवा से भी हल्के हो जायें, तो इस हवाई सागर की सतह पर उपलाने लगेंगे। हमारे साथ वही होगा, जो पुश्किन रचित कविता के घुड़सवार सैनिक के साथ हुआ था : "पूरी बोतल पी गया और विश्वास नहीं होगा तुम्हें : अचानक रूई के फाहे की तरह ऊपर उड़ गया"। हम कुछेक किलो

---

[1] प्रचलित विचार के विपरीत, फाहा हवा से हल्का नहीं होती बल्कि उससे सैकड़ों गुनी भारी होती है। हवा में वह इसलिये उड़ती है कि उसकी कुल सतह काफी बड़ी होती है : इतनी बड़ी कि हवा द्वारा उसकी गति में प्रतिरोध उसके भार से अधिक हो जाता है।

मीटर ऊपर उड़ आते, जहां विरल हवा का घनत्व हमारे शरीर के घनत्व के बराबर होता। पहाड़ियों और घाटियों पर उन्मुक्त मंडराने का सपना राख की तरह हवा में बिखर जाता, क्योंकि गुरुत्व के बंधन से निकल कर हम दूसरे बल – वातावरण की संवहन धाराओं – की कैद में आ जाते।

लेखक वेल्स ने ऐसी ही असाधारण स्थिति को अपनी एक विज्ञान-गल्प का कथानक बनाया है। एक काफी मोटा व्यक्ति अपनी मुटाई कुछ कम करना चाहता था। कथाकार के पास एक आश्चर्यजनक दवा होती है, जिससे स्थूलकाय लोग अपना भार कुछ कम कर सकते हैं। वह दवा माग कर ले जाता है। जब कथाकार अपने परिचित मोटे से मिलने पहुंचता है और उसका दरवाजा खटखटाता है, उसे आश्चर्यजनक चीजें देखने को मिलती हैं

"दरवाजा देर तक कोई खोल नहीं रहा था। मैंने सुना कि किसी ने ताली घुमायी और पीक्राफ्ट (यह मोटे का नाम था) के स्वर ने कहा

अंदर आ जाइये।

मैंने हैंडिल घुमाया और दरवाजा खोला। स्वाभाविक था कि मैं पीक्राफ्ट को देखने की उम्मीद कर रहा था।

आप जानते हैं, – वह नहीं था। कमरा अस्त-व्यस्त था किताबों, कलम-दावात आदि के बीच जूठी प्लेटें पड़ी थीं। कुछेक कुर्सियां उल्टी हुई थीं। पीक्राफ्ट नहीं था

– भई मैं यहां हूं। दरवाजा बंद कर लीजिये, – उसने कहा। तब मुझे वह नजर आया।

वह दरवाजे के निकट कोने में ठीक कार्निस से लटका हुआ था, मानो उसे किसी ने छत से चिपका रखा हो। उसका चेहरा गुस्से से भरा था और उस पर भय की छाप थी।

– यदि कुछ फिसला, तो पीक्राफ्ट, आप गिर जायेंगे और अपनी गरदन तोड़ लेंगे – मैंने कहा।

– बहुत खुशी होगी मुझे, – उसने बताया।

– आपकी उम्र में ऐसी कसरतें नहीं करनी चाहिये लेकिन, आप लटके किस चीज के सहारे हैं? – मैंने पूछा।



चित्र 7। मैं यहा हूँ दोस्त ! —पीत्रापट ने कहा।

तब मुझे दिखा कि वह लटक नही रहा है, बल्कि ऊपर तर रहा है, जसे गस स भरा बलून हो।

उसने थोडे हाथ पर मारे, ताकि छत से अलग हो कर दीवार के सहारे मेरी ओर रग सके। उसने नक्काशी की किनारी पकडी पर वह टूट गयी और वह पुन छत की ओर उड गया। जब वह छत से टकराया, तब मेरी समझ मे आयी कि उसके शरीर के उभरे हुए भागो पर चूना क्यो लगा है। वह पुन काफी सावधानी के साथ चिमनी के सहारे उतरने की कोशिश करने लगा।

—यह दवा,—हाफते हुए उसने बताया,—कुछ ज्यादा ही असरदार निकली। भार का लोप लगभग पूण है।

अब मैं सब समझ गया।

—पीत्रापट ! —मैंन कहा।—आपको मुटापा कम करने की दवा चाहिये थी और आप हमेशा कहते थे कि भार कम करना है रुकिये, मैं आपकी मदद करता हू,—बेचारे का हाथ पकड कर नीचे खीचते हुए मैंन कहा।

वह किसी चाज पर दृढता से खडे हान की कोशिश म नाचने लगा। दश्य मजेदार था ! जस मैं तेज हवा म पाल वाली नाव रोक कर रखन की काशिश कर रहा हू।

—यह टेबुल काफी मजबूत और भारी है।—बेचारे पीकापट ने नाक से थक कर कहा।—यदि आप किसी तरह मुझे उसके नीचे घुसा सके

मैंने यही किया, पर टेबुल के नीचे भी वह इस तरह हिल-डुल रहा था, जैसे हवाई बैलून बधा हुआ हो। एक मिनट के लिए भी स्थिर नहा था।

—सिफ एक बात साफ है, जो आपको किसी भी हालत म नहीं करनी चाहिए।—मैंने उससे कहा।—यदि कही आप घर स बाहर निकल गये, तो ऊपर की ओर उडते चले जायेंगे, रुकगे नहीं

मैंने सलाह दी कि अपने को इस नयी स्थिति के अनुकूल बनाने की कोशिश करनी चाहिये। मैंने इशारा किया कि छत पर हाथो क सहारे चलना सीखने मे उसे कठिनाई नहीं होगी।

—मैं सो नहीं सकता,—उसने शिकायत के स्वर म कहा।

उसके लिए कमरे मे सीढी रखी गयी और खाना किताब की आलमारी पर लगाया जाने लगा। हमने एक सुदर हल सोच निकाला, जिसकी सहायता से पीकापट जब चाहे फश पर उतर आ सकता था हल यही था कि "ब्रिटेन विश्वकोश खुली आलमारी के ऊपरी खदे म रखा था। मोटू ने झट उसके दो खड उठाये और हाथ मे पकडे हुए फश पर उतर आया।

मैंने उसकी फ्लट मे पूरे दो दिन बिताये। हाथ मे हथौडा और बरमा ले कर उसके लिये सभी सभव जुगतिया फिट करता रहा तार लगाया ताकि वह घटी बजा सके, आदि आदि।

उस दिन मैं अगीठी के पास बैठा था और वह अपने प्रिय कोने म लटका छत मे तुर्की कालीन ठोक रहा था, जब मेरे दिमाग मे यह विचार आया

—ऐ, पीकापट!—मैंने लगभग चीखते हुए कहा।—इन सब चीजो की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। कपडो के नीचे सीसे का अस्तर चाहिये, और कुछ नहीं।

पीकापट खुशी से रो पडा।

—सीसे के चदरे —मैंने कहा,—खरीद लीजिये और कपडा के नीचे फिट कर लीजिये। जूतो मे सीसे के तल्ले लगवा लीजिये और हाथ मे सीसे का सूटकेस पकडे रहिये, और बात खतम। आप यहा

कैसे भी नहीं पहुंच ... दिखाई जा सकता है, यात्रा कर सकते हैं। मगर लिए बताइए दूसरे ग्रह में भी कोई वायुमंडल नहीं है? ऐसा होता तो ... कुछ था जो उतार गए और हवा में उनके ... ।

उपन्यास और कथा कहानियों में यहां सब कुछ वैज्ञानिक नियमों के अनुसार हो पाता है। पर कहानी की कुछ बातों में गड़बड़ होना स्वाभाविक है। सबसे मजेदार गलती यह है कि ... शरीर का भार ... कर भी ... उड़ गए थे।

... के ... में ... गिर ... हवा में ... का ... उतराना जब उनके कपड़े तथा सामग्रियों आदि का कुल भार उनके स्थूल काय द्वारा विस्थापित हवा के भार से कम होता। हिसाब लगाना कठिन नहीं होगा यदि याद रखें कि हमारे शरीर का भार लगभग उसी आयतन वाले पानी के भार के बराबर होता है। हमारा भार 60 किलोग्राम है, हमारे शरीर के बराबर आयतन वाले पानी का भार लगभग इतना ही होगा। साधारण घनत्व वाली हवा समान आयतन वाले पानी से 770 गुनी हल्की होती है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि हमारे शरीर के आयतन के बराबर आयतन वाली हवा का भार होगा 80 g। मिस्टर पीत्रापट कितने भी मोटे क्यों न रहे हों उनका वजन 100 kg से अधिक शायद ही रहा होगा और इसीलिए 130 g से अधिक हवा विस्थापित नहीं कर सके होंगे। पीत्रापट के शरीर पर कपड़े, जूते, मनीबैग आदि जो सामान थे क्या उनका कुल भार 130 g से भी कम था? यह असंभव है। इतने सारे सामान का कुल भार कहीं अधिक होगा। और यदि ऐसी बात है तो पीत्रापट को फर्श पर ही रहना चाहिए था। यह सच है कि उनकी स्थिति काफी अस्थिर होती पर डोरी से बंधे बलून की तरह छत की ओर नहीं उड़ते। सिर्फ अपने शरीर से सारा कुछ उतार कर ही वे हवा में उपला सकते थे। कपड़ों में उनकी हालत वैसी ही होती, जैसी छलांगबाजी के बलून से बंधे आदमी की होती है, पेशियों की हल्की कोशिश से भी वे काफी ऊंची छलांग लगाते और शांत हवा में मंद उतरते हुए जमीन पर उतरते[1]।

---

[1]छलांगबाजी के बलूनों के बारे में मेरी पुस्तक 'मनोरंजक यांत्रिकी' का अध्याय 4 देखें।

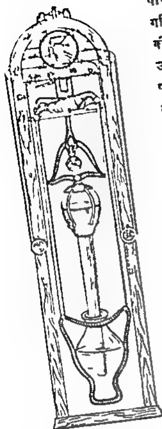
इस पुस्तक में हम कई मिथ्या "शाश्वत चलित्रों" को देख चुके हैं और यह स्पष्ट कर लिया है कि उनका आविष्कार असंभव है। अब हम निःशुल्क चलित्रों के बारे में बातें करते हैं। ये ऐसे चलित्र हैं, जो हमारी ओर से बिना किसी देखभाल के अनिश्चित चिर काल तक कार्यशील रह सकते हैं, क्योंकि वे अपने परिवेश के अक्षय ऊर्जा भंडारों से आवश्यक ऊर्जा प्राप्त करते रहते हैं। पारे या धातु का बना बैरोमीटर सब ने देखा होगा। प्रथम प्रकार के बैरोमीटर में पारद-स्तंभ का स्तर वातावरण के दाब में परिवर्तन के अनुसार ऊपर-नीचे होता रहता है। धात्विक बैरोमीटर में इन्हीं कारणों से सुई इधर-उधर घूमती रहती है। अठारहवीं शती के एक आविष्कारक ने बैरोमीटर की इन गतियों का उपयोग घड़ी जैसी मशीन में चाबी भरने के लिये किया। इस प्रकार उसने एक घड़ी बनायी, जो बिना रुके चलती रहती थी और जिसमें चाबी देने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। विख्यात अंग्रेज मशकार व ज्योतिर्विद फेर्ग्युसन ने इस दिलचस्प आविष्कार को देखा और उसके बारे में निम्न पंक्तियां लिखीं (1774 ई. में) :

'मैंने ऊपर वर्णित घड़ी देखी है, जो एक अनूठे बैरोमीटर में पारे के उठने व गिरने के कारण अविराम चलती रहती है। यह सोचना निराधार है कि यह घड़ी कभी रुक जायेगी, क्योंकि उसमें संचित होने वाला गतिकारी बल इतना काफी होता है कि बैरोमीटर हटा देने पर भी घड़ी साल भर तक चलती रह सकती है। इस घड़ी को विस्तारपूर्वक जान लेने के बाद मैं खुले दिल से कहता हूं कि अबतक जितने यंत्र मैंने देखे हैं, उनमें यह सबसे अधिक प्रतिभाशाली है, इसके मूल विचार और उसके कार्यान्वयन — दोनों ही के अनुसार।'

खेद की बात है कि यह घड़ी सुरक्षित नहीं रही; वह चोरी हो गयी थी और अब कहां है, किसी को पता नहीं। वैसे उक्त ज्योतिर्विद द्वारा बनाया गया उसका आरेख अभी भी है, इसलिये उसका पुनर्निमाण किया जा सकता है।

इस घड़ी की बनावट में एक बहुत बड़ा पारद-बैरोमीटर आता है। फ्रेम द्वारा लटके कांच के घड़े और उसमें खड़े लंबे कीप में करीब 150 kg

पारा है। दोनो ही बरतन एक दूसरे के सापेक्ष गतिमान हो सकते हैं। उत्तालता की सुन्दर प्रणाली की सहायता से वात-दाब बढ़ने पर कीप नाचे उतरता है और घड़ा ऊपर उठता है, दाब घटने पर इसका उल्टा होता है। दोनो ही गतियां एक दति चक्र को हमेशा एक ही दिशा म घुमाती हैं। यत्र सिर्फ तभी स्थिर रहता है, जब वातावरण का दाब बिल्कुल स्थिर रहता है। चक्र के रुके रहने पर घड़ी मुग्दरा की पट्टने से संचित अभिपातन ऊर्जा से चलती है। यह कोई आसान काम नही है कि मुग्दर साथ-साथ ऊपर उठें और गिरते वक्त घड़ी चलायें। पर पुराने घड़ीसाज इस समस्या को हल करने के लिये पर्याप्त प्रतिभाशाली थे। उन्होने कुछ इस प्रकार यत्र बनाया कि वात-दाब म उतार चढ़ाव की ऊर्जा आवश्यकता से अधिक सिद्ध होती थी अर्थात् मुग्दर अधिक तेजी से उठते थे पर गिरते थे धीरे धीरे। इसके लिये ऐसा विशेष युक्ति लगानी पड़ी कि जब मुग्दर उच्चतम बिंदु पर पहुँच जाते थे तो कुछ समय के लिये वहीं रुके रहते थे।


चित्र 72 XVIII-वी शती का नि शुल्क चलित।

इस जैसे नि शुल्क चलित्रो और 'शाश्वत चलित्रो के बीच यह महत्वपूर्ण सैद्धांतिक अंतर स्पष्ट है। नि शुल्क चलित्रो ■ ऊर्जा शून्य से नही मिलती जिसका सपना शाश्वत चलित्रो के आविष्कारक देखते थ वह यत्र के बाहर से आती है। हमारे उदाहरण मे यत्र को ऊर्जा वाह्य वातावरण से मिलती है जहा वह सौर किरणो द्वारा संचित होती है। व्यवहारत नि शुल्क चलित्र उतने ही लाभकर होते, जितने कि सच्चे शाश्वत चलित्र यदि उनकी बनावट उनके द्वारा प्राप्त ऊर्जा की तुलना म अत्यंत महगी नही होती (जैसा कि अधिक्तर होता है)।

कुछ आगे चलकर हम अन्य प्रकार के नि शुल्क चलित्रो के साथ आपका परिचय करायेंगे और उदाहरण समेत दिखायेंगे कि उद्योग मे इस प्रकार के यत्रो का प्रयोग नियमत बिल्कुल लाभहीन क्यो होता है।

अध्याय 6

तापीय सवृत्तियां

अक्टूबर रेल-पथ[1] कब अधिक लबा है – गर्मियों मे या जाड़े मे ?

"अक्टूबर रेल-पथ कितना लबा है" – प्रश्न का उत्तर किसी ने इस प्रकार दिया

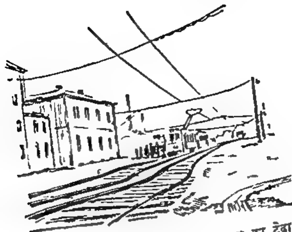
– औसतन छे सौ चालीस किलोमीटर, जाडो की अपेक्षा गर्मियो मे करीब तीन सौ मीटर अधिक ।

यह आशातीत उत्तर इतना निरर्थक नहीं है, जितना कि लगता है। यदि सतत एकाग्र रेल-पथ के बारे मे पूछा जाये, तो सचमुच इसकी लबाई गर्मियों मे अधिक होनी चाहिये, बनिस्बत कि जाडो मे। पर यह न भूले कि गर्म होने पर पटरियो की लबाई बढ़ती है – हर सेंटीग्रेड तापक्रम की वृद्धि से उसकी लबाई मे 100000 के अश की वृद्धि होती है। अच्छी खासी गर्मी के दिन पटरियों का तापक्रम 30–40° से भी अधिक हो जाता है, कभी-कभी धूप मे पटरिया इतनी गर्म हो जाती हैं कि छूने से हाथ जलता है। जाडो मे वे –25° से भी कम तापक्रम पर होती हैं। यदि जाडे और गर्मियो के तापक्रमो मे अतर औसतन 55° ही मान ले, तो पथ की कुल लबाई 640 km मे 0.00001 और 55 से गुणा करने पर करीब $^1/_3$ km प्राप्त होगा। ज्ञात होता है कि मास्को और लेनिनग्राद को मिलाने वाला रेल-पथ सचमुच ही जाडो की अपेक्षा गर्मियो मे तिहाई किलोमीटर अर्थात करीब 300 मीटर अधिक लबा होता है।

बेशक, यहा पथ की लबाई नहीं बढती। बढती है सिर्फ सभी पटरियो की कुल लबाई। ये दोनो बातें एक नहीं हैं और इसीलिये पटरियो को कभी भी एक दूसरे से बिल्कुल सटा कर नहीं रखा जाता उनके बीच कुछ खाली जगह छोड दी जाती है, ताकि गर्म होने पर पटरिया स्वतंत्र

---

[1] मास्को-लेनिनग्राद रेल-पथ का नाम। – अनु



चित्र 73 अत्यधिक गर्मी के कारण ट्राम की लाइनो का टेढा हो जाना।

रूप से प्रसारित हो सके [1]। हमारा कलन दिखाता है कि सभी पटरिया की कुल लबाई मे वद्धि उनके बीच के रिक्त स्थानो की कुल लबाई म ही सिमटी होती है, भयकर शीत मे पटरियो की कुल लबाई की अपेक्षा गर्मियो मे उनकी कुल लबाई मे करीब 300 m की वद्धि होती है। इस

---

[1] यदि पटरियो की लबाई 8 m हो, तो जोडा पर 6 mm लबा स्थान (0° पर) छोडना चाहिये। इस खाली स्थान के पूण रूप से बद होने के लिये पटरियो का तापक्रम 65°C होना चाहिये। तकनीकी कारणो से ट्राम की पटरियो के बीच जगह नही छोडनी चाहिये। इससे अक्सर पटरिया टेढी नही होती, क्योकि जमीन मे गडी होने के कारण उन मे तापक्रम का उतार चढाव नगण्य होता है। उन्हे जोडने की विधि भी बगल से टेढी होने मे बाधा डालती है। पर बहुत गर्मी पडने पर ट्राम की पटरिया कुछ टेढी हो ही जाती है। फोटोग्राफी के आधार पर निर्मित चित्र 73 मे यह स्पष्टता के साथ दिखाया गया है।

रेलगाडी की पटरियो के साथ भी कभी-कभी ऐसा हो जाता है। बात यह है कि ढालू स्थाना पर चलती गाडिया अपने साथ-साथ पटरियो को भी (कभी-कभी आधार समेत) घसीट ले जाती हैं, फलस्वरूप एसे स्थाना पर पटरिया के सिरे एक दूसरे से बिल्कुल सट जाते हैं।

प्रकार, अक्टूबर रेल-पथ का लोह भाग गर्मियो म सचमुच 300 मीटर अधिक लबा है, बनिस्बत की जाडो मे।

चोरी की सजा नहीं

लेनिनग्राद-मास्को लाइन पर हर जाडे मे कुछेक सौ मीटर टेलीफोन और टेलीग्राफ के तार गायब हो जाते हैं, पर कोई इसकी चिंता नही करता, यद्यपि तार महगा होता है और चोर का नाम सब जानते हैं। यह काम ठड का है। जो कुछ रेला के बारे म कहा जा चुका है, तार पर भी लागू होता है। फक सिफ इतना है कि गर्मी से तावे का तार लोहे की अपेक्षा 1 5 गुना अधिक लबा हो जाता है। लेकिन तारो में टुकडो के बीच खाली जगह नही होती, अत हम बिना किसी हिचकिचाहट के कह सकते हैं कि लेनिनग्राद-मास्को टेलीफोन लाइन गर्मियो की अपेक्षा जाडा म करीब 500 m छोटा होता है। ठड हर जाडे म लगभग आधा किलोमीटर तार चोरी कर लेती है और उसे कोई सजा नही मिलती। बस, इस चोरी स टेलीफोन या टेलीग्राफ के काम पर कोई असर नही पडता और, इसके अतिरिक्त, गर्मियो म चोरी का माल पूरी तरह वापस भी लौ हो जाता है।

लेकिन इस तरह का सकुचन जब तारो मे नही पुलो मे होने लगता है तो परिणाम बुरे हो सकते हैं। 1927 की दिसबर मे इस तरह की एक खबर अखबारो म आयी थी

फ्रास मे लगातार कई दिनो तक अनदेखी ठड रही, जिसके कारण परिस मे सेन नदी पर स्थित पुल को गभीर नुकसान पहुचा है। पुल म लोहे की पटरिया सिकुड गयी और इससे उसम लगे पत्थर पहले ऊपर उभर आये और बाद मे चूर हो कर रास्ता पर बिखर गये। पुल कुछ काल के लिये बद कर दिया गया है'।

पेरिस की मीनार कितनी ऊँची?

अब यदि आप से पूछा जाये कि परिस की मीनार कितनी ऊची है, तो उत्तर म ' 300 मीटर कहने के पहले आप प्रश्न करेगे

—किस मौसम मे—गम या ठडे?

लोहे की बनी इतनी बडी चीज की ऊचाई हर तापक्रम पर समान

नहीं रह जाती। ज्ञात है कि 300 m लंबे लोहे के छड़ का तापक्रम एक डिग्री अधिक होने पर उसकी लंबाई में 3 mm की वृद्धि होती है। स्वाभाविक है तापक्रम में एक डिग्री की वृद्धि से पेरिस की मीनार में भी करीब इतनी ही वृद्धि होनी चाहिए। पेरिस की जलवायु के अनुसार धूपवाले गर्म मौसम में मीनार $+40^\circ$ तक गर्म हो सकती है पर ठंडे बरसाती मौसम में उसका तापक्रम $+10^\circ$ तक नीचे आता है। जाड़े में उसका तापक्रम 0° से -10° तक हो सकता है (पेरिस में इससे अधिक ठंड कभी नहीं पड़ती)। अत: तापक्रम में परिवर्तन करीब 40° तक संभव है और इसीलिये पेरिस की मीनार की ऊंचाई में परिवर्तन $3 \times 40 = 120$ mm या 12 cm तक (इस पंक्ति की लंबाई से अधिक) हो सकता है।

प्रत्यक्ष मापों से यह भी ज्ञात हुआ कि पेरिस की मीनार तापक्रम में परिवर्तन के प्रति हवा से कहीं अधिक संवेदनशील है। वह अपेक्षाकृत जल्द ठंडा या गर्म होता है और बदली के दिन अचानक सूरज उगने पर पहले प्रभावित होता है। पेरिस की मीनार की ऊंचाई में परिवर्तनों की माप विशेष प्रकार के निकेल इस्पात के तार की सहायता से ज्ञात की गयी थी। तापक्रम परिवर्तन के कारण निकेल इस्पात के तार की लंबाई में परिवर्तन नहीं के बराबर होता है। इस अनूठे मिश्रधातु का नाम "इनवार" (लातीनी invar = अपरिवर्ती) है।

निष्कर्ष यह है कि ठंडे मौसम की अपेक्षा गर्म मौसम में पेरिस की मीनार की लंबाई में इस पंक्ति के बराबर लंबाई वाले लोहे के टुकड़े द्वारा वृद्धि हो जाती है। बस, लोहे के इतने लंबे टुकड़े की कीमत एक सेंटिम भी नहीं होती।

चाय का गिलास और जल-स्तर मापने की नली

अनुभवी गृहस्थिन कांच के गिलास में गर्म चाय डालने के पहले उसमें चम्मच डालना नहीं भूलती, विशेषकर यदि चम्मच चांदी का बना हो। परंतु अनुभव के आधार पर बना यह नियम बिल्कुल सही है। आइये, इसकी जांच करें।

सबसे पहले यह स्पष्ट कर लें कि गर्म पानी से गिलास चटकता क्यों है।

गिलास टूटने का कारण है कांच का असमान प्रसारण। गिलास में डाला गया पानी उसकी दीवारों को एकदम से गर्म नहीं कर देता, पहले

दीवारो की भीतरी परत गम होती है और बाहरी परते ठडी ही रहती हैं। गम होते ही भीतरी परत प्रसारित हो जाती है। बाहरी परत अपरिवर्तित रहती है, उसपर भीतरी प्रसारित परतो का दबाव पडता है। दोनो परते एक दूसरे से अलग होती हैं और काच चटख जाता है।

यह मत सोचिये कि मोटी दीवारो वाले गिलास खरीद कर आप उनके टूटने वाली मुसीबत से छुट्टी पा जायेंगे। ऐसी स्थितियो मे मोटी दीवारो वाले गिलास और भी कमजोर सिद्ध होगे। यह स्पष्ट भी है पतली दीवार जल्द गम हो जाती है, उनमे तापक्रम समरूपता के साथ जल्द वितरित होता है और इसीलिये उनके विभिन्न अशो का प्रसारण भी समान रूप से होता है, ऐसे नही जसे कि धीरे धीरे गम होने वाली काच की मोटी परतों मे होता है।

पतली दीवारो वाले काच के बरतन खरीदते वक्त एक चीज नही भूलनी चाहिये सिफ दीवार ही पतली न हो, पेंदे को भी पतला होना चाहिये। गम पानी डालने से मुख्यत पेंदा ही गम होता है। यदि वह मोटा होगा, तो गिलास अवश्य टूटेगा चाहे कितनी भी पतली उसकी दीवारे क्या न हो। ऐसे गिलास और चीनी मिट्टी के कप भी आसानी से टूटते हैं, जिनके पेंदे स नीचे की ओर स्तभ के रूप म गोल छल्ला लगा होता है।

काच का बरतन जितना ही पतला हो, उतना ही निभय होकर आप उसे गम कर सकते हैं। रसायनज्ञ अत्यत पतली दीवारो वाले काच के बरतन व्यवहार म लाते हैं, वे उन्हे सीधा ज्वालक पर रख देते हैं, बरतन टूटने का कोई डर नही रहता।

इसम कोई शक नही कि आदश बरतन वह होता, जो गम करने से बिल्कुल ही प्रसारित नही होता। बहुत ही कम प्रसारण करने वाला पदाथ है स्फटिक या क्वाटस। इसम काच की अपेक्षा 15–20 गुना कम प्रसारण होता है। पारदशक स्फटिक का मोटा बरतन भी जितना चाहे, गम कर सकते हैं, वह नही टूटेगा। लाल-तप्त क्वाटस के बरतन को आप एकदम से ठडे पानी म फेंक सकते है, टूटने का कोई खतरा नही है।[1] इसका

---

[1] प्रयोगशालाओ के लिय स्फटिक के बरतन इसलिये भी सुविधाजनक हैं कि वे आसानी से नही पिघलते क्वाटस 1700° पर सिफ मुलायम होना शुरू करता है।

सबंध प्रशत इसी से है कि ताप-सवहनता शीशे की अपेक्षा चवाटम में कही अधिक है।

गिलास सिर्फ शीघ्र तपन से ही नहीं टूटते। शीघ्र ठंडा करने से भी टूट जाते हैं। इसका कारण है असमान सकोचन बाहरी परत ठंडा हो कर सकोचन की दिशा में खिंचने लगती है और भीतरी परत पर दबाव डालती है। इसीलिये गर्म मुरब्बे को ठंडा करने के लिये काच के मर्तबान को ठंडक या ठंडे पानी में कभी न रखें।

चाय के गिलास में चम्मच की समस्या पर लौटें। चम्मच काच को टूटने से कैसे बचाता है?

दीवारों की बाहरी व भीतरी परतों के तापक्रमों में बहुत ही बड़ा अंतर सिर्फ तभी होता है, जब आप गिलास में एकदम से खूब गर्म पानी डालते हैं। साधारण गर्म पानी से दोनों परतों के तापक्रमों में इतना बड़ा अंतर नहीं होता और इसीलिये उनके आंतरिक तनावों में भी गंभीर फर्क नहीं आता। साधारण गर्म पानी से बरतन नहीं टूटता। यदि गिलास में चम्मच पड़ा हो, तो क्या होता है? पेंदे पर आकर गर्म द्रव काच का (जो ताप का बुरा चालक है) पूरी तरह से गर्म कर सकने के पहले अपनी गर्मी का अच्छा-खासा भाग ताप के सुचालक चम्मच को दे देता है, द्रव का तापक्रम कम हो जाता है बहुत गर्म से वह साधारण गर्म द्रव में परिणत हो जाता है और इसीलिये उससे कोई खतरा नहीं रह जाता। द्रव और आगे डालने से भी कोई डर नहीं रह जाता, क्योंकि गिलास थोड़ा गर्म हो चुका है।

कहने का मतलब यह है कि चम्मच (विशेष कर यदि वह बड़ा व मोटा है) गिलास के गर्म होने की क्रिया को समरूप कर देता है और काच को चटकने से बचाता है।

लेकिन यदि चम्मच चांदी का हो तो यह और अच्छा क्यों है? क्योंकि चांदी ताप का बहुत अच्छा संवाहक है चांदी का चम्मच पानी की गर्मी तांबे की अपेक्षा जल्द आत्मसात करता है। स्मरण करें कि गर्म चाय में पड़ा चांदी का चम्मच छूने से कितना गर्म लगता है, हाथ जलने लगता है। इस गुण के आधार पर आप आंखें बंद कर के बिल्कुल सही सही बता सकते हैं कि चम्मच तांबे का है या चांदी का। गर्म पानी में डाल कर निकालने पर तांबे के चम्मच से हाथ नहीं जलेगा।

काँच की दीवारों का असम रूप से गर्म होना सिर्फ चाय के गिलास के लिये ही खतरनाक नहीं है। वाष्प क्वथित्र (स्टीम ब्वायलर) के महत्वपूर्ण भाग जलमापी नलियां,—जिनसे क्वथित्र में जल का स्तर नापा जाता है —के लिये भी यह बुरा सिद्ध होता है। वाष्प व गर्म पानी के कारण काच की इन नलियों में भीतरी परतों का प्रसारण बाहरी परतों की अपेक्षा अधिक होता है। उत्पन्न आंतरिक तनाव के अतिरिक्त नली में वाष्प व गर्म पानी का ऊंचा दबाव भी रहता है। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से नली और आसानी से टूट सकती है। बचाव के लिये दो भिन्न प्रकार की काच की परतों से नलियों को बनाया जाता है। भीतरी परत का प्रसार सगुणक कम होता है और बाहरी का अधिक।

हमाम में जूते

'जाड़ों में दिन छोटे व रातें बड़ी क्यों होती हैं और गर्मी में इसका उल्टा क्यों होता है? सभी दृश्य और अदृश्य पदार्थों की तरह जाड़े का दिन भी ठंड से सिकुड़ जाता है। रात लालटेनों आदि से गर्म होती रहती है, इसीलिये फूल जाती है।"

चेखव की कहानी के पेंसनयाफ्ता कज्जाक सर्जेंट की टुकड़ी में चलने वाले ये तर्क होठों पर बरबस मुस्कुराहट ला देते हैं। पर इस तरह के '*विद्वत" तर्क सुन कर हंसने वाले लोग स्वयं ही कभी-कभी ऐसे बेढंगे* सिद्धांत बना लिया करते हैं।

हमाम में जूतों के बारे में सभी ने सुना होगा और पढ़ा भी होगा। कहते हैं कि गर्म वाष्प और पानी में स्नान करने के बाद जूते पहनना मुश्किल होता है, क्योंकि 'गर्म होकर पैरों का आयतन बढ़ जाता है"। यह विख्यात उदाहरण क्लासिकल बन गया है, पर इसका कारण बिल्कुल गलत बताया जाता है।

सर्वप्रथम, हमाम[1] में मानव शरीर का तापक्रम लगभग नहीं बढ़ता शरीर के तापक्रम में 1–2° C से अधिक की वृद्धि नहीं होती। मानव शरीर

[1] जहां 60–80°C पर गर्म वाष्प में स्नान करते हैं।—अनु

परिवेश के तापीय प्रभावों के साथ सफलतापूर्वक संघर्ष करता है और अपना तापक्रम एक निश्चित बिंदु पर स्थिर रखता है।

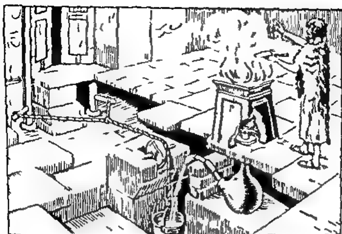
1–2° C तापक्रम अधिक हो जाने से शरीर के आयतन में इतनी नाम्य वृद्धि होती है कि जूते पहनते वक्त आप को इसका पता नहीं लग सकता। मानव शरीर के कठोर व मुलायम अवयवों का आयतन प्रसार गुणांक दस हजारवें भागों से अधिक नहीं होता। अतः पैर की चौड़ाई में वृद्धि सेंटीमीटर के सौंवे भाग से अधिक नहीं हो सकती। आप सोचते हैं कि जूते 0.01 cm तक की शुद्धि से सिलते हैं?

पर तथ्य शकातीत है: हम्माम के बाद जूते पहनना मुश्किल होता है। इसका कारण शरीर का तापीय प्रसारण नहीं है। पैर फूलते हैं, इसलिये कि परिवेश की आर्द्रता ऊँची होती है: इसका असर चमड़ी पर पड़ता है। रक्त परों की ओर काफी बहने लगता है, जिससे रक्तधर धमनियाँ फूल जाती हैं, आदि आदि।

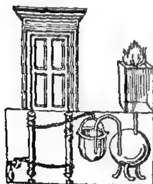
चमत्कार

अलेक्जेंडर हिरोन नामक प्रसिद्ध फव्वारे के बारे में आपने सुना होगा, जो आज भी अपने आविष्कारक का नाम अमर कर रहा है। हिरोन प्राचीन ग्रीस के यंत्रकार थे। उनके कागजातों में धूर्तता से भरी दो विधियों का वर्णन मिलता है, जिनकी सहायता से मिस्र के पुजारी लोगों को धोखा दिया करते थे, ताकि जनसाधारण में चमत्कारों पर विश्वास बना रहे।

चित्र 74 में आप होम के लिये धातु के बने एक खोखले अग्नि-कुंड को देखते हैं। इसके नीचे मंदिर के दरवाजे खोलने के लिये विशेष उपकरण छिपा है। अग्नि-कुंड मंदिर के बाहर होता था। जब आग जलायी जाती थी, कुंड के भीतर की हवा गर्म हो कर बरतन में स्थित पानी पर दबाव डालती था। पानी नली द्वारा बरतन से निकल कर बाल्टी में गिरता था, और बाल्टी पानी के भार से नीचे जाने लगती थी और साथ ही रस्सी द्वारा दरवाजे खींच कर खोल देती थी (चित्र 75)। इस धूर्तता से अनभिज्ञ आश्चर्यचकित दर्शक समझते थे कि उनके सामने चमत्कार हो रहा है: आग की ज्वालायें उठती हैं और पुजारी की प्रार्थना से द्वार स्वयं खुल जाते हैं।



चित्र 74 मिस्री पुजारियो के चमत्कार की पोल मंदिर के द्वार होमाग्नि के प्रभाव से खुलते हैं।



चित्र 75 वेदी मे आग जलने पर स्वय खुलने वाले द्वारो की बनावट का आरेख (चित्र 74 से तुलना करें)।



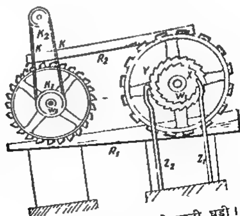
चित्र 76 एक और प्राचीन चमत्कार होमाग्नि मे अपने आप घी का ढलना।

पुजारियों द्वारा प्रयुक्त तन्त्र और मिथ्या चमत्कार चित्र 76 में दिखाया गया है। जब कुंड में आग सहकने लगती है, नीचे के हौज में स्थित घी गर्म हवा के दबाव से नलियों में उठ कर कुंड में गिरने लगता है, नलियां पुजारियों की प्रतिमा में छिपी हैं। जब मुख्य पुजारी हौज के बीच में लगा टोंटी निकाल लेता था, तो घी कुंड में नहीं गिरता था (क्योंकि हौज का हवा फैल कर इस छेद में निकल जाया करती थी)। यह चमत्कार कभी-कभी दिखाया जाता था, जब लोग बहुत कम पूजा चढ़ाने लगते थे।

बिना चाबी की घड़ी

बिना चाबी की एक घड़ी का वर्णन हम कर चुके हैं (पृ 117)। यह कहना गलत होगा कि उसमें चाबी की जरूरत नहीं थी, उसमें चाबी आदमी द्वारा नहीं, वातावरण के दबाव में परिवर्तनों से पड़ती रहती थी। इसी तरह की एक और खुद चाबी भरी जाने वाली घड़ी का वर्णन करते हैं, जिसका आधार तापीय प्रसारण है।

इस घड़ी का यंत्र चित्र 77 में दिखाया गया है। इसके मुख्य पुर्जे हैं- छड़ Z_1 व Z_2, जो एक विशेष प्रकार के अत्यधिक बड़े प्रसार गुणांक वाले



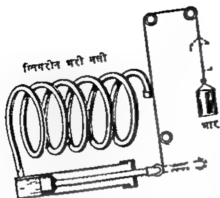
चित्र 77 स्वयं चाबी भरने वाली घड़ी।

धातु मिश्र से बने हैं। छड Z_1 चक्के λ से इस प्रकार टिका है कि गर्मी से होने वाले इस छड के रखिक प्रसार के कारण दंति-चक्र थोडा घूम जाया करता है। छड Z को दंतिचक्र Y के दात मे इस प्रकार फँसाते हैं कि ठड से छड Z म होने वाल रखिक सकोचन के कारण चक्का Y उसी दिशा मे थोडा सा घूम जाता है। दोनो दंति चक्र एक ही अक्ष W_1 पर लगे हैं, जिसक घूमने से बडा चक्का घूमने लगता है। बडे चक्के मे लगी कलछिया नीचे के बरतन से पारा उठा कर ऊपर एक नालिका मे ढाल देती हैं, जहा से बह कर पारा बायें चक्के की कलछियो मे ढलता है। इस क्रिया क कारण बाया चक्का भी घूमने लगता है और चेन Kk के सहारे चक्के K_1 (जो उसी के अक्ष पर लगा है) और चक्के k को घुमाने लगता है, आखिरी चक्का k_o ही स्प्रिग का मराडता है और चाबी पडती रहती है।

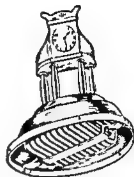
पारा बायें चक्के की कलछियो म गिरने के बाद कहा जाता है? वह ढालू रखे बरतन R_1 मे बहता हुआ पुन दायें चक्के के पास आ जाता है, ताकि फिर से अपनी यात्रा आरम्भ कर सके। स्पष्ट है कि ऐसा यत्र तबतक चलता रहेगा, जबतक छड Z_1 व Z छोटे-बडे होते रहेगे। और इसके लिय आवश्यक है कि हवा का तापक्रम बढता घटता रहे। पर यही तो हमार प्रयत्न के बिना खुद-ब-खुद होता रहता है परिवेश की हवा के तापक्रम में कोई भी परिवतन हो, छड छाटे या बड होते रहगे और घडी की स्प्रिग धीमे धीम ही सही, पर निरतर ऐंठन खाती रहेगी।

इस घडी को हम 'शाश्वत" चलित्र कह सक्ते हैं? बेशक नही। घडी अनिश्चित लबे काल तक चलती रहेगी, जबतक कि उसके पुर्जे घिस पिट नही जायेंगे। पर इसकी ऊर्जा का स्रोत परिवेशी हवा का ताप है। यह घडी नन्हे अशा म तापीय प्रसारण से प्राप्त काय सचय करती रहती है, ताकि उसे घडी की सुइयो का निरतर घुमाते रहन म खच कर सके। यह 'नि शुल्क" चलित्र है, क्योकि इस अपना काय सपन्न करने के लिये हमारी देख भाल और हमारी ओर से ऊर्जा खच करने की आवश्यकता नही पडती। पर वह "कुछ नही' से ऊर्जा नही प्राप्त करता उसकी ऊर्जा का स्रोत अतत सूरज का ताप है, जिससे पथ्वी गम होती है।

इसी तरह की बनावट वाली घडी का एक और नमूना चित्र 78 व 79 मे दिखाया गया है। इसमें भी चाबी खुद-ब-खुद पडती रहती है। इसमे मुख्य भूमिका ग्लिसरिन की होती है, जो हवा के तापक्रम बढ़ने पर फैलता



चित्र 78 एक और स्वकुच्यक घडी का आरेख



चित्र 79 स्वकुच्यक घडी, स्तम के भीतर ग्लिसरिन की नली छिपी है।

है और एक बोझ को ऊपर उठाता है। बोझ नीचे वापस आने वक्त घडी को चलाता है। चूंकि ग्लिसरिन −30°C पर जमता है और +290°C पर खौलना शुरू करता है इस प्रकार के यत्न चौराहो आदि जसे खुले स्थानो के लिये उपयुक्त है। 2°C का तापक्रम परिवतन भी इस घडी के चलने के लिये पर्याप्त है। ऐसी एक घडी का साल भर तक परीक्षण किया गया था। घडी ठीक-ठाक चलती रही हालाकि पूरे साल भर तक किसी ने उसे हाथ नही लगाया।

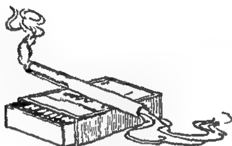
ऐसे ही सिद्धात पर अधिक बडे चलित्रो का निर्माण लाभप्रद होगा या नही? पहली नजर मे लगता है कि ऐसे नि शुल्क चलित्र काफी मित व्ययी होगे, पर कलन कुछ और ही बताते हैं। साधारण घडी को 24 घटो तक चलाने के लिये सिफ $^1/_7$ किलोग्राम मीटर के करीब ऊर्जा की आवश्यकता पडती है। एक सेकेड मे व्यय होने वाली ऊर्जा एक किलोग्राम मीटर का 600 000-वा भाग होगी। चूंकि एक अश्व शक्ति 75 किलो ग्राम मीटर प्रति सेकड के बराबर होती है, एक घडी की शक्ति एक अश्व शक्ति के 45 000 000-वे भाग के बराबर होती है। अत यदि पहली प्रकार की घडिया मे चलने वाले छडा या दूसरी प्रकार की घडियो मे व्यवहृत युक्ति की कीमत सिफ एक कोपेक ही आंकी जाये, तो एक अश्व शक्ति वाले ऐसे चलित्र की कीमत होगी।

1 कोपक $\times$ 45 000 000 = 450 000 रूबल।

एक प्रसवशक्ति के लिये लगभग पाँच लाख रूबल—"निःशुल्क" शक्ति के लिये कुछ ज्यादा ही महगा है

शिक्षादायक सिगरेट

डिब्बी पर जलती सिगरेट रखी है (चित्र 80)। उसके दोनों सिरों से धुआ निकल रहा है। पर जलते सिरे से निकलता धुआ ऊपर की ओर प्रवृत्त हो रहा है और पिछले सिरे से निकलने वाला धुआ नीचे बैठ रहा है। क्यों? आखिर दोनों सिरो से एक ही प्रकार का धुआ निकल रहा है।



चित्र 80 धुआँ सिगरेट के एक सिरे से निकल कर ऊपर उठता है और दूसरे से निकल कर नीचे बैठता है, क्यों?

हाँ, धुआ दोनों जगह एक ही है, पर जलते सिरे के ऊपर हवा की ऊर्ध्वमुखी संवहन धारायें है, जो धुए के कणों को अपने साथ ऊपर ले जाती हैं। पिछले सिरे से धुए के साथ निकलने वाली हवा ठंडी हो जाती है और ऊपर की ओर प्रवृत्त नहीं होती, धुए के कणों को ऊपर नहीं ले जाती। और चूँकि धुआ हवा से भारी होता है, नीचे बठने लगता है।

बर्फ का टुकडा, जो खौलते पानी मे भी नहीं पिघलता

एक परख नली मे पानी भर ले और उसमे बर्फ का टुकडा डुबा दें। वह ऊपर नहीं तैर आये (बर्फ पानी से हल्की होती है), इसके लिये उस पर सीसे या ताबे की भारी गोली डाल दें। सिर्फ इस बात का ध्यान

रखें कि बफ पानी से बिल्कुल अलग ही न हो जाये, पानी का उस तक पहुँचना रुकना चाहिये। अब नली के समाप स्पिरिट ज्वालक इस प्रकार रखें कि लौ परख नली के सिफ ऊपरी भाग को लग (चित्र 81)। शीघ्र ही पानी खौलना शुरू कर देगा और भाप निकलने लगेगी। पर आश्चर्य की बात यह होगी कि पेंदे पर पडी

चित्र 81 ऊपरी भाग मे पानी खौल रहा है पर नीचे बफ नही गलती।

बफ नही पिघलेगी। यह एक छोटा सा चमत्कार ही है–खौलते पानी में भी नही पिघलने वाली बफ

रहस्य यह है कि परख नली के पेंदे पर पानी नही खौलता, वह ठडा ही रहता है। पानी सिफ ऊपर खौलता है। बफ 'खौलते पानी मे नहीं है बफ खौलते पानी के नीचे' है। गर्मी से फल कर पानी हल्का हो जाता है और वह पेंदे की ओर नही आता, परख नली के ऊपरी भाग मे ही रह जाता है। गम पानी की सवहन धारायें परख नली के ऊपरी भाग तक ही सीमित रहगी पानी की परतो का स्थानातरण भी ऊपरी भाग तक सीमित रहेगा और नीचे की अधिक घनी परतो को स्पश नहा करेगा। नीचे के भाग म पानी सिफ ताप सुचालकता के कारण गम हो सकता है पर पानी की तापचालकता अत्यत कम है।

बफ पर या बफ के नीचे?

पानी गम करने के लिये पानी से भरे बरतन को हम लौ के ऊपर रखते हैं उसके बगल मे नही। और बिल्कुल सही करते हैं, क्योंकि आग की लपटो द्वारा गम हो कर हवा हल्की हो जाती है और सब तरफ से ऊपर की ओर उठती हुई बरतन को घेर लेती है।

अत गम किये जाने वाले पिंड को आग के ऊपर रख कर हम स्रोत की ऊर्जा का अधिकतम उपयोग करते हैं।

लेकिन यदि किसी पिंड का बर्फ की सहायता से ठंडा करना हो, तो पिंड कहां रखना चाहिए? बहुत से लोग खाद्यान्न पिंड को बर्फ के ऊपर ही रखते हैं,—जैसे दूध का घड़ा बर्फ की सिल्ली पर। यह विधि उत्तम नहीं कही जा सकती, क्योंकि बर्फ के ऊपर की हवा ठंडी हो कर नीचे बैठ जाती है और उसका स्थान पुनः गर्म हवा ले लेती है। इससे व्यावहारिक निष्कर्ष निकलता है यदि पेय पदार्थ या खाना ठंडा करना चाहते हैं, तो उसे बर्फ के ऊपर नहीं, बर्फ के नीचे रखिये।

और सविस्तार समझाने की कोशिश करते हैं। यदि पानी से भरा बरतन बर्फ पर रख दिया जाये, तो द्रव की सिर्फ सबसे निचली परत ठंडी होगी। पानी का बाकी भाग उसी हवा से घिरा रहेगा, जो अभी ठंडी नहीं हुई है। इसके विपरीत, यदि बर्फ का टुकड़ा बरतन के ऊपर ढक्कन पर रख दिया जाय, तो भीतर की वस्तु शीघ्र ठंडी होगी। द्रव की ऊपरी परत ठंडी हो कर नीचे जायेगी और नीचे की परत ठंडी होने के लिये ऊपर उठेगी। यह प्रक्रिया तबतक चलती रहेगी जबतक बरतन का सारा द्रव ठंडा न हो जाय।[1] इसके अतिरिक्त, बर्फ के इर्द गिर्द की हवा भी ठंडी हो कर नीचे बैठ जायेगी और बरतन को सब ओर से घेर लेगी।

बंद खिड़की से क्यों हवा बहती है?

जाड़ों में जब काफी ठंड पड़ती है, खिड़कियों को अच्छी तरह से बंद करना पड़ता है, ताकि ठंडी हवा के घुसने के लिये कोई दरार न रह जाय। पर अक्सर ऐसी खिड़कियों से भी हवा बहती है। यह विचित्र सा लगता है पर इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

कमरे में हवा कभी भी स्थिर नहीं रहती, उसमें अदृश्य धाराएं बहती

---

[1] शुद्ध जल इस तरह 0°C तक नहीं सिर्फ +4°C तक ठंडा होगा, क्योंकि इस तापक्रम पर उसका घनत्व अधिकतम होता है। पर व्यवहार में पेय पदार्थों को शून्य तापक्रम तक ठंडा करने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती।

रहती हैं और इसका कारण हवा का गर्म व ठंडा होते रहना है। गर्म हो कर हवा विरल हो जाती है और इसीलिये हल्की हो जाती है, ठंडी होने पर वह इसके विपरीत घनी हो जाती है, अतः और भारी हो जाती है। कमरे में स्थित ताप-दायक उपकरणों के कारण गर्म व हल्की हवा ठंडी हवा द्वारा छत की ओर विस्थापित होती रहती है। खिड़की व दीवारों से ठंडी होने वाली हवा नीचे फर्श पर बैठती जाती है।

कमरे में ये पवन धारायें गैस वाली बलून की मदद से दिख सकती हैं, यदि बलून के साथ कोई थोड़ी भारी वस्तु बांध दी जाये, ताकि वह ऊपर छत से नहीं भिड़े, स्वतंत्र रूप से कमरे में उड़ता रहे। ताप के स्रोत के पास छोड़ने पर बैलून कमरे में हवा की अदृश्य धाराओं के साथ खिंचता हुआ यात्रा करता रहेगा: चूल्हे से खिड़की की ओर छत के सहारे और वहां से फर्श की ओर और फिर चूल्हे की ओर, ताकि अपनी यात्रा पुनः शुरू कर सके।

इसी कारणवश जाड़ों में हमें लगता है कि खिड़की से हवा बह रही है, यद्यपि खिड़की के दरवाजे अच्छी तरह बंद हैं और बाहर से हवा दरारों से हो कर भी भीतर नहीं आ सकती।

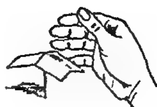
रहस्यमयी फिरकी

महीन हल्के कागज को काट कर एक आयत बना लीजिये। इसे मध्य रेखाओं पर मोड़ने से आपको पता चल जायेगा कि इसका गुरुत्व केंद्र (मध्य रेखाओं का कटान बिंदु) कहां है। खड़ी सुई की नोक पर इस आकृति को इस प्रकार रखें कि सुई ठीक इसी बिंदु पर टेक लगाये।

कागज का टुकड़ा संतुलन में रहेगा, क्योंकि वह गुरुत्व केंद्र के सहारे टिका हुआ है। पर हवा के हल्के झोंके से भी वह चक्कर खाना शुरू कर देगा।

यहां तक इस उपकरण में कुछ भी रहस्यमय नहीं लगता। लेकिन आप चित्र 82 की भांति अपना हाथ इसके निकट लायें: धीरे धीरे सावधानी से, ताकि हवा के झोंके से कागज उड़ न जाय। आप एक विचित्र चीज देखेंगे: कागज फिरकी की तरह घूमने लगता है—पहले धीमे और बाद में तेजी से। हाथ हटा लीजिये—घूमना बंद हो जायेगा। हाथ निकट लाइये—फिर घूमने लगेगा।

पिछली शती के सत्तरवें वष के आस-पास कई लोग सोचते थे कि इस विचित्र घूणन का कारण हमारे शरीर का कोई अलौकिक गुण है। आध्यात्मवाद के प्रेमिया को इस प्रयोग में अपने ढीले-ढाले अस्पष्ट सिद्धाता की पुष्टि नजर आती थी, उन्हें लगता था कि मानव शरीर से सचमुच कोई रहस्यमयी शक्ति निकलती है। पर कागज के घूमने का कारण बहुत ही सरल एव पूरी तरह से लौकिक है आप के हाथ से गम हो कर नीचे की हवा ऊपर उठती है और कागज से टकराते हुए उसे घूमने पर विवश कर देती है। यह वसा ही कुछ है, जैसी लप की गर्मी से घूमने वाली कागज की ऐंठन भरी पट्टिया होती हैं, क्योकि आपने भी कागज को उसकी मध्य रेखाओ पर मोड कर उसके भिन्न हिस्सा को हल्का झुकाव दे रखा है।



चित्र 82 कागज का टुकडा घिरनी की तरह क्या घूमने लगता है?

ध्यान से देखने वाले को पता चलेगा कि ऊपर वर्णित घिरनी एकमात्र कलाई से उगलियो की दिशा म घूमती है। इसका कारण यह है कि हथेली की तुलना मे उगलियो के सिरे अधिक ठडे होते हैं। इसीलिए हथेली के समीप हवा की अधिक सशक्त ऊर्ध्वमुखी सवहन धारायें बनती हैं और उगलिया के ताप से उत्पन्न धाराओ की अपेक्षा कागज पर अधिक शक्ति से चोट करती हैं।[1]

क्या फर-कोट गम करता है?

आप उस आदमी को क्या कहेंगे, जो आपको विश्वास दिलाना चाहता है कि फर-कोट गर्म नही करता? आप शायद सोचेंगे कि वह मजाक कर

[1] आप यह भी देख सकते हैं कि ज्वर मे या अधिक ताप की स्थिति मे घिरनी और तेजी से घूमती है। कई लोगो को चक्कर मे डालने वाले इस मानदायक प्रयोग पर एक छोटा मोटा शोध-काय भी लिखा गया था, जो 1876 मे मास्को की चिकित्सा समाज के समक्ष पढ़ा गया (नि प नेचायेव, हाथ की गर्मी के कारण हल्के पिडो मे घूणन)।

रहा है। और यदि यह अपनी बात प्रयोगों के आधार पर सिद्ध करे तो? उदाहरणार्थ एक ऐसा प्रयोग करें। थर्मामीटर में देख लें कि वह कितना तापक्रम बता रहा है और उसे फर-कोट में लपेट कर रख दें। कुछ घंटे बाद उसे निकाल कर देखें। आपको विश्वास हो जायेगा कि वह चौथाई डिग्री तक भी नहीं गर्म हुआ है पारा जहां का तहां रुका है, थर्मामीटर जितना तापक्रम पहले बता रहा था, उतना ही अब भी बता रहा है। यही प्रमाण है कि फर-कोट गर्म नहीं करता। यह भी शंका की जा सकती है कि फर-कोट ठंडा करते हैं। दो शीशियों में थोड़ा-थोड़ा बर्फ लें। एक को कमरे में खुला छोड़ दें और दूसरी को फर-कोट में लपेट दें। जब पहली शीशी में बर्फ पिघल जाये, फर-कोट से दूसरी शीशी निकाल आप देखेंगे कि इसमें बर्फ ने पिघलना शुरू भी नहीं किया है। इसका अर्थ है कि फर-कोट गर्म तो क्या करेगा, उल्टा ठंडा करता है, जिससे बर्फ का पिघलना मंद हो जाता है।

क्या आपत्ति कर सकते हैं आप? इन तर्कों को कैसे काटा जा सकता है? किसी भी तरह नहीं। फर-कोट सचमुच में गर्म नहीं करता, यदि 'गर्म करने" का अर्थ ताप देना माना जाये। बल्ब गर्म करता है, चूल्हा गर्म करता है मानव शरीर भी गर्म करता है, क्योंकि ये वस्तुएं ताप के स्रोत हैं। पर इस अर्थ में फर-कोट बिल्कुल गर्म नहीं करता। वह अपनी ओर से ताप नहीं देता, वह हमारे शरीर से ताप के निकलने में बाधा भर डालता है। इसीलिये उष्णरक्ती जीव, जिनका शरीर स्वयं ही ताप का स्रोत होता है, फर-कोट में अधिक गर्म महसूस करेंगे, बनिस्बत कि उसके बगैर। पर थर्मामीटर खुद ताप को जन्म नहीं देता और इसीलिये उसे फर-कोट में लपेटने पर उसका ताप नहीं बढ़ता। फर-कोट में लपेटा गया बर्फ अपना कम तापक्रम देर तक सुरक्षित रख सकता है क्योंकि फर-कोट ताप का बहुत ही बुरा चालक है और इसीलिये कमरे में स्थित हवा के तापक्रम को बर्फ तक आसानी से नहीं पहुंचने देता।

फर-कोट की तरह बर्फ भी इसी अर्थ में पृथ्वी को गर्म करती है, सभी भुरभुरी वस्तुओं की तरह बर्फ भी ताप का कुचालक होती है और जमीन को ढक कर उसके अंदर की गर्मी निकलने से रोकती है। बर्फ की परत से ढकी जमीन में थर्मामीटर अक्सर दस डिग्री तक अधिक तापक्रम दिखाता है बनिस्बत कि ऐसी जमीन में जो बर्फ से ढकी न हो।

अत यदि पूछा जाये कि फर-कोट गर्म करता है या नहीं, उत्तर देना चाहिये कि फर-कोट हम अपने आप को खुद गर्म रखने मे सहायक होता है। और भी सही होगा, यदि कहेंगे कि हम फर-कोट को गर्म करते हैं, न कि वह हम।

धरी तले कौन सी ऋतु?

जब पृथ्वी की सतह पर ग्रीष्म ऋतु हो, तीन मीटर की गहराई पर कौन सी ऋतु होगी?

आप सोचते हैं कि वहा भी ग्रीष्म होगी? गलत हैं आप। पृथ्वी के तल पर और जमीन के अदर गहराई में समान ऋतु नहीं होती। जमीन ताप का बहुत ही बुरा चालक है। लेनिनग्राद मे जब सब कुछ जमा देने वाली कडी सर्दी पडती है, तब भी वहा दो मीटर की गहराई म तल पर होने वाले तापक्रम परिवर्तन जमीन मे बहुत धीरे धीरे प्रसारित होते हैं और भिन्न गहराइयो तक पहुचने मे भिन्न समय लगाते हैं। उदाहरण क लिये, लेनिनग्राद क्षेत्र के एक स्थान स्लूत्स्का मे ली गयी प्रत्यक्ष मापो से ज्ञात हुआ कि वहा जमीन म तीन मीटर की गहराई पर वर्ष का सबसे गम क्षण 76 दिन देर से पहुचता है और सबसे ठडा क्षण—108 दिन देर से। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि पृथ्वी पर सबसे गर्म दिन 25 जुलाई को था, तो तीन मीटर की गहराई मे सबसे गर्म दिन 9 अक्टूबर का होगा। यदि 15 जनवरी को सबसे ठडा दिन था, तो उक्त गहराई पर यह दिन मई म आयेगा। अधिक गहराई पर आन से य कालातर और भी बडे होंगे।

गहराई म तापक्रम परिवर्तन सिर्फ देर से ही नहीं पहुचते, अपनी प्रचडता भी खो बठते हैं। कुछ विशेष गहराइयो पर इन परिवर्तनो का पता ही नहीं लगता, वे बिल्कुल लुप्त हो जाते हैं। ऐसी जगहो पर शताब्दियो तक एक स्थिर तापक्रम बना रहता है, जो दिये हुए स्थान के लिये वार्षिक औसत होता है। पेरिस की वेधशाला के नीचे 28 m की गहराई पर डेढ सौ साल से एक थर्मोमीटर रखा हुआ है जिसम पारा इतने अर्सों म अपने स्थान से हिला भी नहीं है और सदा एक ही तापक्रम ($+11.7°C$) दर्शाता है। इस थर्मोमीटर को वहा लेवुजिये ने रखा था।

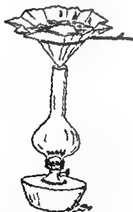
इस प्रकार जमीन के भीतर, जिस पर हम खडे है, वह ऋतु कभी

नहीं होती, जो उसकी सतह पर होती है। जब जमीन के ऊपर जाड़े का मौसम होता है, तीन मीटर की गहराई पर पतझड़ हो रहा होता है। पर यह वैसा पतझड़ नहीं है, जैसा जमीन के ऊपर था। इसमें तापक्रम बड़ा और नीचे होता है। जब जमीन के ऊपर ग्रीष्म होती है, गहराई में तब जाड़े के क्षीण होते स्वर पहुंच रहे होते हैं।

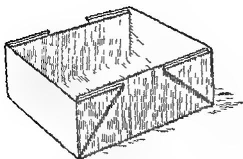
इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक होता है, जब जमीन के अंदर रहने वाले जन्तुओं और पौधों के भूगत अवयवों के जीवन की परिस्थितियों के बारे में बात करनी है। उदाहरणतया, हमें इस बात पर आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि हमारे यहां के वृक्षों में जड़ों की कोशिकाओं का प्रजनन वर्ष के शीताद्ध में ही होता है और तथाकथित कैंबियल रेशों की सक्रियता पूरी गर्मियों के लिये समाप्त हो जाती है। जमीन के ऊपर तने में ठीक इसका उल्टा होता है।

कागज की पतीली

चित्र 83 पर नजर डालिये कागज के दान में अंडा उबल रहा है। आप कहेंगे,– 'कागज जल जायेगा और पानी लालटेन को बुझा देगा'। आप खुद ऐसा प्रयोग कर के देखें। इसके लिये चिमड़े कागज के एक टुकड़े से दोना बना लें और तार के गोल घेरे में ठीक से रख लें ताकि गिरे नहीं। आप देखेंगे कि कागज को आग से कोई क्षति नहीं होती। इसका कारण यह है कि खुले बरतन में पानी 100°C से अधिक तापक्रम तक गर्म नहीं किया जा सकता। सौ डिग्री पानी का क्वथनांक है। इसीलिये कागज में खौलाया जाने वाला पानी, जिसकी तापग्राहिता बहुत ही अधिक है, आग से कागज को मिले अतिरिक्त ताप को अपने में सोखता रहता है और कागज को 100 C से अधिक गर्म नहीं होने देता और यह तापक्रम इतना काफी नहीं है कि कागज



चित्र 83 कागजी पतीले में अंडे का उबलना।



चित्र 84 पानी खौलाने के लिये
कागज का डिब्बा।

जलने लगे। (चित्र 84 म दर्शित कागज को डब्बे की आकृति दे कर काम म लाना अधिक सुविधाजनक होगा)। कागज उस हालत म भी नही जलेगा जब वह सीधे आग की लपटो में रखा होगा।

इसी तरह की परिघटना से सबधित एक और प्रयोग है, जिसे अन्य-मनस्क लोग अनजान मे किया करते हैं और जिसका परिणाम नुकसानदेह होता है बिना पानी रखे समोवार या केटली को गर्म करने से उनके झलया द्वारा जुडे भाग अलग हो जाते हैं। कारण स्पष्ट है। जिस धातु से झलैया की जाती है, वह आसानी से पिघलने वाला होता है पर पानी उसके तापक्रम को खतरे के निशान से आगे नही बढ़ने देता। झलैया किये हुए पतीले को भी बिना पानी के गर्म नहीं करना चाहिये। पुराने मशीन-गन "मक्सिम" में पानी खुद गर्म हो कर हथियार को पिघलने से बचाता था।

आप सीसे के टुकडे को ताश के पत्तो से बनी डिब्बी मे पिघला सकते हैं। इसके लिये शर्त यही है कि आग की लौ कागज के उसी स्थान पर लगनी चाहिये, जहा कागज सीसे को स्पर्श करता है। धातु ताप का अपेक्षाकृत अच्छा सवाहक होता है, अत वह तुरत कागज से गर्मी ले लेता है और उसे अपने गलनाक अर्थात 335° से अधिक गर्म नही होने देता। यह तापक्रम कागज के जलने के लिये पर्याप्त नहीं है।

निम्न प्रयोग भी आसानी से किया जा सकता है (चित्र 85) मोटी सी कील या लोहे की (बेहतर है—ताबे की) छड पर कागज का पतला फीता पेंच की तरह कस कर लपेट ल। इसके बाद छड को लौ पर रखें। आग कागज को लपेट लेगी, कालिख से काला कर देगी, पर उसे तबतक



चित्र 85 अग्नि सह कागज।



चित्र 86 अग्नि सह धागा।

नही जला सकेगी, जबतक कि छड गम हो कर लाल न हो जाये। इसका रहस्य धातु की तापीय सुचालकता मे है, काच की छडी के साथ ऐसा प्रयोग सभव नही है। चित्र 86 मे चाबी पर कस कर लपेटे गये "अग्नि सह" धागे के साथ प्रयोग दिखाया गया है।

बफ फिसलनदार क्यो है?

साधारण फश की अपेक्षा चिकने फश पर फिसलना आसान है। इस हिसाब से ठोस बफ पर भी यही होना चाहिये खुदरी बफ की अपेक्षा समतल चिकनी बफ को अधिक फिसलनदार होनी चाहिये।

पर यदि आपको बफ पर फिसल कर चलने वाली छोटी स्लेज गाडी पर सामान रख कर खुदरे बफ की सतह पर खीचने का अवसर मिलता, तो आप जान गये होते कि आशा के बावजूद गाडी चिकनी बफ की अपेक्षा रूखडी बफ पर अधिक आसानी से फिसलती है। दपण की तरह चिकनी चौरस बफ की अपेक्षा रूखडी बफ अधिक फिसलनदार होती है। इसका कारण यह है कि बफ का फिसलनदार होना उसके चिकनेपन पर नही बल्कि बिल्कुल ही दूसरी बात पर निभर करता है। रहस्य यह है कि दबाव से बफ पर बफ का गलनाक कम हो जाता है।

पहले देखा जाये कि जब हम स्लेज पर या स्केटिंग के जूते पहन कर फिसलते है तो क्या होता है। स्केटिंग के जूते बफ से ढकी जमीन को कुछेक वग मिलिमीटर क्षेत्र पर ही स्पश करते हैं। हमारे शरीर का सारा भार इसी छोटे से क्षेत्र को दबाता है। यदि आपको अध्याय 2 की बात याद हो तो आप फौरन समझ जायेगे कि स्केटिंग-सवार आदमी बफ को काफी बडे बल से दबाता है। अधिक बडे दबाव के कारण बफ कम तापक्रम पर ही पिघल जाती है। उदाहरण के लिये, यदि बफ का तापक्रम $-5°$ है

और स्केटिंग के जूते के कारण बर्फ पर पड़ने वाला दबाव उसके गलनांक को पाँच डिग्री से भी अधिक नीचे कर देता है, तो स्केट के नीचे बर्फ पिघल जायेगी।[1] इससे क्या होता है? स्केट और बर्फ के बीच पानी की पतली सी परत बन जाती है और स्केट-सवार फिसलने लगता है। उसके पैर जहाँ-जहाँ पड़ेंगे, यही होगा। हर जगह स्केट के नीचे की बर्फ पानी की पतली परत में परिणत हो जायगी। सभी ज्ञात पिंडों में एकमात्र बर्फ ही यह गुण रखती है, इसीलिये एक सोवियत भौतिकविद् ने बर्फ को "प्रकृति में एकमात्र फिसलनदार वस्तु" की उपमा दी है। बाकी पिंड चिकने हैं, पर फिसलनदार नहीं हैं।

अब हम अपने प्रश्न पर लौट सकते हैं कि कौन अधिक फिसलनदार है—चिकनी बर्फ या रूखड़ी। हम जानते हैं कि कोई बोझ उतनी ही अधिक शक्ति से दबाता है, जितना कम उसके आधार का क्षेत्र होता है। आदमी किस स्थिति में आधार पर अधिक दबाव डालता है जब वह बर्फ की आइने सी चिकनी सतह पर खड़ा होता है या रूखड़ी सतह पर? स्पष्ट है कि दूसरी स्थिति में, क्योंकि इसमें आदमी रूखड़ी सतह के कुछ उभरे स्थलों पर ही टिका है। इन स्थलों का कुल क्षेत्रफल काफी कम होगा, अतः इन पर दबाव काफी अधिक होगा। बर्फ पर जितना ही अधिक दबाव पड़ेगा, उतना ही अधिक द्रवण होगा और इसीलिये बर्फ उतनी ही फिसलनदार होगी

---

[1] सैद्धांतिक कलन किया जा सकता है कि बर्फ का गलनांक 1°C कम करने के लिये उसपर 130 kg/cm² का दबाव डालना चाहिये। स्लेज या स्केट बर्फ पर इतना बड़ा दबाव डाल सकते हैं? यदि स्केट-सवार के पूरे भार को स्केट व जमीन के स्पर्श-क्षेत्र पर समान रूप से वितरित किया जाये, तो काफी कम दबाव प्राप्त होगा। यह सिद्ध करता है कि स्केट का तल समान रूप से जमीन पर नहीं सटा रहता, उसका एक छोटा भाग ही जमीन से सटा होता है और बर्फ पर दबाव डालता है।

(सैद्धांतिक कलन इस मान्यता पर किया गया है कि बर्फ और उसके पिघलने से प्राप्त पानी एक ही दबाव में हैं। पर लेखक द्वारा वर्णित उदाहरण में बर्फ के गलने से बना पानी साधारण वातदाब में ही है। ऐसी स्थिति में बर्फ का गलनांक शून्य से नीचे करने के लिये अपेक्षाकृत कम दाब की आवश्यकता पड़ती है।—संपादक)

(यह उस स्थिति के लिये सत्य है, जब स्केट का जमीन को स्पर्श करने वाला तल पर्याप्त चौड़ा होता है, काफी सकीर्ण स्पर्श-तल होने की वजह से बर्फ के उभरे भाग फसने लगते हैं और अधिकांश शक्ति इनको काटने में खर्च होने लगती है)।

अधिक दबाव के कारण बर्फ का गलनांक कम हो जाता है—इस तथ्य से दैनिक जीवन की अनेक घटनाओं को समझाया जा सकता है। इसी खूबी के कारण बर्फ के टुकड़ों को आपस में जोर से दबाने पर वे जुड़ कर एक हो जाते हैं। बच्चे जब मुट्ठी भर भुरभुरे बर्फ को हाथ में रख कर दबाते हैं, तो वे अनजाने में इसी गुण का उपयोग करते हैं दबाव बढ़ा कर हिम-कणों के बीच के स्थान में द्रवण क्रिया आरम्भ कर देते हैं। इससे प्राप्त द्रव दबाव दूर होने पर सभी हिम-कणों को एक-साथ जोड़ता हुआ पुन जम जाता है और भुरभुरे बर्फ की जगह बर्फ का एकाश्म गोला प्राप्त होता है। बर्फ की प्रतिमा बनाने के लिये जब हिम रेणुका पर बर्फ का लौंदा लुढ़काना शुरू करते हैं, तो हम यहां भी इसी गुण का उपयोग करते हैं लौंदे के भार से उसके नीचे पड़ी हिम रेणुका की सतह पर द्रवण क्रिया शुरू हो जाती है। प्राप्त द्रव लौंदे के साथ चिपकता हुआ जम जाता है (दबाव समाप्त होने पर) और लौंदे को बड़ा करता जाता है। अब आप समझते होंगे कि बहुत कड़क सर्दी में बर्फ की प्रतिमा गढ़ना क्यों मुश्किल होता है। बर्फ के धूल-कण आपस में चिपकते नहीं, इसके लिये बहुत अधिक दबाव की आवश्यकता पड़ती है। सड़क पर गिरे मुलायम बर्फ को पाहे चलने वालों के भार से दब-दब कर पत्थर की तरह कड़ी परत बना देते हैं—यह भी इसी कारण से।

बर्फ की चुटिया[1]

बर्फ की चुटिया कैसे बनती होगी? किस प्रकार के मौसम में वह बन सकती है जब तापक्रम शून्य से थोड़ा ऊपर होता है या जब वह शून्य

---

[1] आपने बरसात में छप्पर की ओरी से गिरते हुए पानी की धार देखी होगी। आप कल्पना करें कि धार जैसे ही गिरना शुरू करती है, जम कर बर्फ में परिणत हो जाती है और छप्पर की ओरी से शीशे की

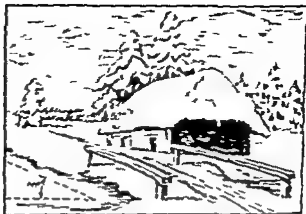
से नीचे होता है? यदि तापक्रम शून्य से अधिक हो, तो पानी जम कर बर्फ म परिणत नही हो सकता। यदि तापक्रम शून्य से कम था, तो फिर छप्पर पर से चूने के लिये पानी कहां से आया? और अत मे, यह भी सभव नहा है कि पहले गर्मी थी और छप्पर पर से ठीक पानी चूने के क्षण हठात कडक सर्दी पडने लगी और चूने को तैयार पानी क्षण भर में जम कर बर्फ की चुटिया मे परिणत हो गया।

बर्फ की चुटिया बनने के लिये आवश्यक है कि एक साथ ही दो भिन्न तापक्रम विद्यमान हो—प्रथमत शून्य से अधिक, ताकि बर्फ गल सके और दूसरे, शून्य से कम, ताकि पानी जम कर बर्फ मे परिणत हो सके।

वास्तविकता मे यही होता भी है छप्पर के नत-तल पर सूर्य किरणें बर्फ को शून्य से अधिक तापक्रम तक गर्म करती हैं, जिससे वह पानी की नन्ही बूदो म परिणत होने लगती है। बूदें जब वहां से बह कर छप्पर की किनारी से चूने की तैयारी करने लगती हैं, जमने लगती हैं, क्योंकि यहा तापक्रम शून्य से कम है। बूद के बाद बूद आ आ कर जमती जाती हैं और प्राप्त होती है शीशे सी पारदर्शक बर्फ की लबी चुटिया।

निम्न स्थिति की कल्पना करें। आकाश साफ है। वातावरण का तापक्रम –1 या –2 डिग्री है। सूर्यकिरणो की वर्षा हो रही है। पर सूर्य की तिरछी किरणें धरती को इतना गर्म नही करती की बर्फ पिघल सके। सूरज की ओर वाले नत छप्पर पर किरणें इतनी तिरछी नही पडती, जितनी तिरछी जमीन पर पडती हैं। नत छप्पर पर किरणें लब की ओर अधिक झुकी होती हैं (चित्र 87)। हमे ज्ञात है कि जिस तल पर किरणें गिरती हैं, उस तल के साथ किरणें जितना ही बडा कोण बनायेंगी, तल को उतना ही अधिक प्रकाश व ताप प्राप्त होगा। (किरणो का प्रभाव इस कोण के ज्या का समानुपाती होता है, चित्र 87 मे दिखायी स्थिति मे क्षतिज तल की अपेक्षा छप्पर के नत-तल का 2.5 गुनी अधिक गर्मी प्राप्त होती है, क्योंकि 20° कोण की ज्या की तुलना म 60° कोण की ज्या 2½ गुनी अधिक बडी है।) यही कारण है कि छप्पर की ढलान

पारदर्शक चुटिया की तरह ज्या कि-त्यो लटकी रह जाती है। इसे बर्फ की चुटिया कह सकते हैं। ठडी जलवायु के देशा मे जाडे के दिना छप्परो के चारो ओर बर्फ की अनेक चुटिया लटकी रहती हैं।—अनु



चित्र 87 सूर्य किरणें क्षैतिज धरातल की अपेक्षा नत छप्परों को अधिक गर्म करती हैं (मछलियाँ कागज की नाव बना रही हैं)।

अधिक गर्म होती है और उन पर की बर्फ पिघल सकती है। पिघला हुआ पानी ढलान पर बहता है और बूंदों के रूप में चून की तैयारी करता हुआ किनारी से नीचे की ओर लटकता है। पर यहां छप्पर के नीचे तापक्रम शून्य से कम है, अतः बूंद जम जाती है (उसे ठंडा करने में वाष्पीकरण का भी हाथ होता है)। जमी बूंद पर दूसरी बूंद लुढ़क आती है और वह भी इसी प्रकार जम जाती है। इसी प्रकार धीरे धीरे बर्फ का एक उभार सा बन जाता है। अगली बार जब ऐसा ही मौसम आता है, तो ये उभार कुछ और लंबे हो जाते हैं और अंत में चुटिया का रूप धारण कर लेते हैं। इस विधि से उन घरों के छप्परों पर बर्फ की चुटियां बनती हैं जिनमें कोई तापदायक प्रणाली नहीं लगी होती।

यही कारण[1] हमारी आशा के समक्ष कहीं अधिक बड़ी सवनियां को

---

[1] यह एक मुख्य कारण है, पर सर्वेसर्वा नहीं है। दिन की लंबाई अर्थात वह अंतराल, जिसके दरम्यान सूर्य पृथ्वी को गर्म करता है—यह भी एक कम महत्त्वपूर्ण कारण नहीं है। पर दोनों ही कारण एक खगोलीय तथ्य से उत्पन्न होते हैं। यह तथ्य है पृथ्वी द्वारा सूर्य के गिर्द परिक्रमण के तल के साथ पृथ्वी की धुरी का झुकाव।

जन्म देता है जलवायवीय कटिबधो व ऋतुओ मे जो भिन्नता होती है, इसका कारण मुख्यत सूय किरणो के आपतन कोणो का परिवतन ही है। सूरज हम से जाडो मे लगभग उतनी ही दूरी पर होता है, जितनी गर्मियो म, ध्रुवो और विषुवत रेखा से भी उसकी दूरिया समान ही हैं (इन दूरियो मे अतर इतना कम है कि उसकी उपेक्षा कर सकते हैं)। पर सूय किरणो के झुकाव का कोण विषुवत के पास कही अधिक बडा है, बनिस्बत कि ध्रुवो के पास, गर्मियो म यह कोण बडा होता है, बनिस्बत की जाडो म। इसी कारण से दनिक तापक्रमो म काफी अतर रहता है और इसीलिये प्रकृति के पूरे जीवन म भी भिन्नता आ जाती है।

विशेष यंत्र—पैंटाग्राफ (चित्र 89)—की सहायता से उसे छोटा भी कर सकते थे।

आप यह न सोचें कि सीधा-सादा काला पुता हुआ चित्र व्यक्ति की विशेषताओं को नही व्यक्त कर सकता। इसके विपरित, अच्छा सिलुएट आदमी को बहुत सही तरह दिखा सकता है।

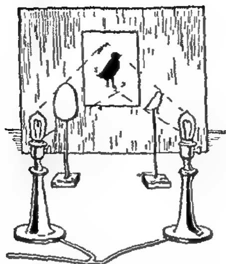
सरल परिरेखाओं द्वारा मूल से मिलता-जुलता चित्र देने की क्षमता के कारण कई चित्रकार छाया चित्रण की ओर आकर्षित हुए और पूरे के पूरे प्राकृतिक दृश्यो आदि को भी इसी रूप म चित्रित करने लगे। सिलुएटी चित्रण धीरे धीरे एक विशेष शैली मे परिणत हो गया, जिसे अनेक चित्रकारो ने अपनाया।

"सिलुएट शब्द का उद्भव बहुत ही मजेदार है XVIII-वी शती के मध्य मे फ्रास के वित्त मत्री एथेन दे सिलुएट थे, जो अपने समकालीनो को मितव्ययता का उपदेश दिया करते थे। उन्हे उच्चवर्गीय लोगो से विशेष शिकायत थी कि वे चित्रो के पीछे बहुत धन बरबाद करते थे। छाया चित्र के सस्तेपन के कारण कुछ मजाकिया लोग उन्हे "a la Silhouette (सिलुएट का) चित्र कहने लगे।

अडे मे चूजा

अपने मित्रो को एक मनोरजक खेल दिखाने के लिये आप छाया के गुणो का उपयोग कर सकते है। तिलचट कागज का एक पर्दा बना लीजिये। एक बडे गत्ते म आयताकार छेद कर के इसमे तिलचट कागज लगा देने से काम चल जायेगा। पर्दे के पीछे दो लप रख दीजिये। दर्शक पर्दे की दूसरी ओर बैठेंगे। एक लप (उदाहरणार्थ बाया) जलायें।

जलते लप और पर्दे के बीच एक अडाकार गत्ता तार से लटका दें या स्तभ पर खडा कर दें। दूसरी ओर बैठे दर्शको को पर्दे पर अडा दिखेगा। (दाया लप अभी जला नही है।) अब आप मित्रो से कह कि आप एक्सरे की मशीन चालू करने जा रहे हैं, जिससे अडे म बैठे चूजे को देखा जा सकेगा। और सचमुच म क्षण भर बाद दर्शक देखते हैं कि अडे का सिलुएट किनारियो पर थोडा प्रकाशमान हो रहा है और उसके बीचो-बीच चूजे का स्पष्ट सिलुएट दिख रहा है (चित्र 91)।



चित्र 91 मिथ्या एक्सरे चित्र

जादू का रहस्य क्या है? आप दाया लप जलाते हैं। उसकी किरणो के पथ पर गत्ते की बनी चूजे की पर्याकृति रखी हुई है, जो पर्दे पर चूजे का सिलुएट देता है। अडाकार छाया का कुछ भाग दायें लप के कारण प्रकाशमान हो जाता है, पर पर्दे के जिस स्थान पर चूजे का सिलुएट है, वहा न बायें लैप का प्रकाश पडता है, न दायें का। इसीलिये अडा अपनी किनारी पर प्रकाशमान हो उठता है और चूजे का सिलुएट अधिक स्पष्ट (काला) दिखता है। पर्दे की दूसरी ओर बठे दशक, जो आपके कारनामा से अनभिज्ञ हैं, यदि भौतिकी और शरीरक्रिया विज्ञान का ज्ञान नही रखते, तो सोचेंगे कि आप सचमुच अडे का एक्सरे कर रहे हैं।

कार्टूनी फोटोग्राफी

बहुत कम ही लोग जानते होंगे कि फोटो-कमरा बिना विशालक शीशे (लेंस) का भी होता है। लेंस की जगह सिर्फ छोटे से गोल छेद से भी काम चल जायेगा। इसमे चित्र कुछ कम स्पष्ट मिलते हैं। बिना लेंस वाले कमरो का एक मनोरजक रूप है 'झिरीदार कमरा'। इसमे गोल छेद की



चित्र 92 झिरीदार कमरे से प्राप्त कार्टूनी फोटो ग्राफ। चित्र क्षैतिज लमडा हुआ है।



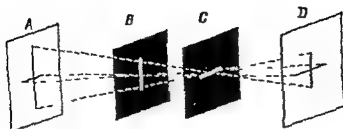
चित्र 93 उदग्र लमडा हुआ कार्टूनी फोटोग्राफ (झिरीदार कमरे से प्राप्त)।

बजाय एक दूसरे को काटने वाली दो महीन दरार होती हैं। कमर के अग्र भाग में दोहरी दीवार होती है एक पर झिरी क्षतिज होती है और दूसरी पर इसके अभिलंब। जब दोनो दीवारे एक-दूसरी से सटी होती हैं, तो चित्र यथा ही प्राप्त होता है, जैसा गोल छेद वाले कमरे से। लेकिन यदि दीवारों के बीच कुछ दूरी हो (उन्हें इस तरह बनाया जाता है कि खिसकायी जा सके), तो कुछ और ही नजर आता है। चित्र हास्यजनक रूप से विकृत हो उठता है (चित्र 92 वा 93) फोटोग्राफ नहीं कार्टून प्राप्त हो जाता है।

इस विकृति का क्या कारण है?

चित्र 94 की स्थिति पर गौर कर क्षतिज झिरी उदग्र झिरी के आगे है। आकृति D (क्रौस) की उदग्र रेखा से चलती किरण प्रथम झिरी C को उसी तरह से पार करेगी, जैसे साधारण छेद को, पीछे की उदग्र झिरी इन किरणो के पथ पर कोई प्रभाव नहीं डालेगी। अत दूधिये शीशे A पर उदग्र रेखा के बिंब का पैमाना दूधिये शीशे A और दीवार C के बीच की दूरी के अनुरूप होगा।

शीशे पर क्षतिज रेखा (यदि झिरियो की स्थितिया नहीं बदली है) कुछ और तरह की होगी। पहली (क्षतिज) झिरी से किरणें बिना एक



चित्र 94 झिरीदार कमरा विकृत आकृति क्यों देता है ?

दूसरे का काटे निर्बाध पार हो जायेंगी। उदग्र झिरी B को ये उसी तरह पार करेगा, जैसे छोटे छिद्र को। इससे दूधिये शीशे पर उस पैमाने का बिंब मिलेगा, जो A से दीवार B तक की दूरी के अनुरूप होगा।

यदि संक्षेप में कहें, तो उदग्र रेखाओं के लिये मानो सिर्फ अगली (क्षैतिज) झिरी रहती है और क्षैतिज रेखाओं के लिये—सिर्फ पिछली (उदग्र)। और चूंकी अगली झिरी पिछली की अपेक्षा दूधिये शीशे से नहीं दूर है, इसलिये दूधिये शीशे A पर सभी उदग्र लंबाइयां क्षतिज लंबाइयों की तुलना में कहीं बड़ी होंगी बिंब खड़ी या उदग्र दिशा में लमडी हुई लगेगी।

इसके विपरीत, यदि उदग्र झिरी आगे हो और क्षैतिज पीछे, तो बिंब क्षैतिज दिशा में लमडा हुआ मिलेगा (तुलना करें चित्र 92 व 93)।

स्पष्ट है कि यदि झिरियां एक दूसरे के सापेक्ष तिरछी हों, तो विकृति कुछ और ही प्रकार की प्राप्त होगी।

ऐसे कैमरों का उपयोग सिर्फ कार्टूनी फोटोग्राफ के लिये ही नहीं किया जाता। उसे दूसरे आवश्यक व व्यावहारिक कार्यों में भी काम में लाया जा सकता है। उदाहरण के लिये, भवनों, कालीनों आदि को सजाने के लिये बेल-बूटों की लंबाई-चौड़ाई बदलने के लिये भी इसका उपयोग किया जा सकता है, ताकि बेल-बूटे किसी खास दिशा में लमडे या सिकुड़े हुए दिखें।

सूर्योदय से संबंधित प्रश्न

माना कि आप 5 बजे सुबह सूर्योदय का अवलोकन कर रहे हैं। ज्ञात है कि प्रकाश का गमन क्षणिक क्रिया नहीं है, स्रोत से प्रेक्षक की आंखों

तो ध्यान में वह कुछ समय लगाता है। अतः ऐसा प्रश्न पूछा जा सकता है यदि प्रकाश का प्रसार क्षणिक होता, तो वहां सूर्योदय आप कितने बजे देख सकते?

सूर्य से पृथ्वी तक ध्यान में प्रकाश को साढ़े 8 मिनट लगते हैं। यदि प्रकाश का प्रसार क्षणिक हो तो इस हिसाब से सूर्योदय हम 8 मिनट पहले, अर्थात 4 बज कर 52 मिनट पर दिखना चाहिए।

बहुतों को शायद विश्वास नहीं होगा कि उत्तर बिल्कुल गलत है। सूरज के 'उदय होने' का कारण यह है कि पृथ्वी अपनी सतह के नये नये बिंदुओं को पहले से प्रकाशमान व्योम की ओर लाती रहती है। अतः प्रकाश के क्षणिक प्रसार के बावजूद भी सूर्योदय आपको उसी क्षण दिखेगा, जिस क्षण अभी, अर्थात प्रकाश के क्रमिक प्रसार की स्थिति में दिखता है। अन्य शब्दों में, सूर्योदय आपको ठीक 5 बजे ही दिखेगा।[1]

यदि आप टेलिस्कोप द्वारा सूर्य की किनारी पर किसी धब्बे या प्रावध के प्रादुर्भाव का प्रेक्षण कर रहे हैं, तो बात दूसरी है यदि प्रकाश का प्रसार क्षणिक होता तो ऐसी घटना का अवलोकन आप 8 मिनट पहले करते।

---

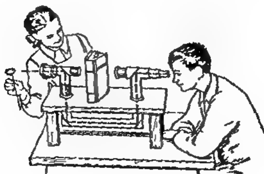
[1] यदि तथाकथित 'वातावरणीय अपवर्तन' का ध्यान में रखा जाये, तो परिणाम और भी आशातीत होगा। अपवर्तन हवा में प्रकाश के पथ को मोड़ देता है और इसीलिये हम सूरज को उसके ज्यामितीय रूप से क्षितिज के ऊपर उठने के थोड़ा पहले ही देख लेते हैं। पर क्षणिक प्रसार की स्थिति में अपवर्तन संभव नहीं है। अपवर्तन तभी हो सकता है जब भिन्न माध्यमों में प्रकाश का वेग भी भिन्न हो। अपवर्तन की अनुपस्थिति के कारण प्रेक्षक को प्रकाश के क्षणिक प्रसार की स्थिति में सूर्य कुछ देर से ही दिखेगा बनिस्बत कि उस स्थिति में जब प्रकाश का प्रसार क्रमिक होता है। समय का अंतर प्रेक्षण-स्थान के अक्षांश वातावरण के तापक्रम तथा अन्य परिस्थितियों पर निर्भर करता और उसका मान दो मिनट से लेकर कुछ दिनों तक (ध्रुववर्ती अक्षांशों पर इससे भी अधिक) होता। आप यहां एक दिलचस्प विरोधाभास देख सकते हैं प्रकाश के क्षणिक (अर्थात अनंत क्षिप्र) प्रसार से सूर्योदय कुछ देर से दिखता, बनिस्बत कि उसके क्रमिक प्रसार से! इस प्रश्न के बारे में और नयी बातें जानने के लिये देखें मेरी पुस्तक 'क्या आप भौतिकी जानते हैं?'।

अध्याय 8

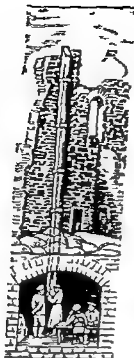
प्रकाश का परावर्तन एवं अपवर्तन

दीवार के पार देखना

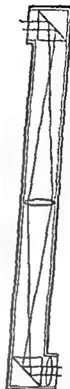
पिछली शती की नवीं दशाब्दी में एक मनोरंजक उपकरण बिका करता था, जिसका नाम था 'एक्सरे उपकरण"। उस समय मैं स्कूल में पढ़ता था और मुझे याद है कि इस धूर्त उपकरण ने किस तरह मुझे चक्कर में डाल दिया था। इसमें एक नली थी, जिसकी सहायता से बिल्कुल अपारदर्शक वस्तुओं के पार भी देखा जा सकता था। इस नली से मैं सिर्फ मोटे कागज ही नहीं, छूरी की मोटी पत्ती के पार भी वस्तुएँ साफ-साफ देख सकता था। ऐसी पत्ती को एक्स किरणें भी बेधने में असमर्थ हैं। इस खिलौने की सरल बनावट का रहस्य आपके लिये स्पष्ट हो जायेगा, यदि आप चित्र 95 पर एक निगाह डालेंगे। चित्र में उक्त नली का प्रतिरूप दिखाया गया है। 45° के कोण पर झुके चार दर्पण किरणों को इस प्रकार परावर्तित करते हैं, कि किरणों का पथ अपारदर्शक वस्तु के नीचे हो जाता है और फिर अपारदर्शक वस्तु के पार स्थित वस्तु तक पहुँच जाता है।



चित्र 95 मिथ्या एक्सरे का उपकरण



चित्र 96 पेरिस्कोप



चित्र 97 पनडुब्बी के पेरिस्कोप का आरेख

युद्ध मे ऐसे उपकरणो का उपयोग काफी प्रचलित है। 'पेरिस्कोप' (चित्र 96) नामक उपकरण की सहायता से आप खाई मे बैठे-बैठे शत्रु की गति विधि देख सकते हैं, इसके लिये आपको अपना सर बाहर निकालने और दुश्मन की गोली खाने का खतरा मोल नही लेना होगा।

पेरिस्कोप मे प्रकाश के प्रविष्ट होने की जगह से प्रेक्षक की आँख तक की दूरी जितनी लबी होगी, उपकरण द्वारा दिखने वाला क्षेत्र उतना ही सीमित होगा। दृश्य-क्षेत्र को विस्तृत करने के लिये ऑप्टिक (प्रकाशीय) शीशो के तंत्र का उपयोग करते हैं। पर शीशे पेरिस्कोप मे प्रविष्ट होने

वाले प्रकाश के कुछ भाग को अवशोषित कर लेते हैं और इसके कारण दृश्य की स्पष्टता धुंधली हो जाती है। ये बातें परिस्कोप की ऊंचाई को सीमित कर देती हैं। 20 मिटर से अधिक ऊंचे परिस्कोप में दृश्य-क्षेत्र अत्यंत संकुचित हो जाता है और दृश्य बिलकुल अस्पष्ट सा हो जाता है। बदली व धुन्ध में अस्पष्टता और भी बढ़ जाती है।

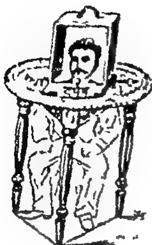
पनडुब्बी के कैप्टेन भी आक्रमण जहाजों को परिस्कोप की मदद से ही देखते हैं। यह एक लंबी नली होती है, जिसका एक सिरा पानी के ऊपर होता है। ये परिस्कोप थल पर प्रयुक्त परिस्कोपों से कहीं अधिक जटिल होते हैं, पर सिद्धान्त दोनों में कोई फर्क नहीं होता। किरणें दर्पण (या प्रिज्म) से परावर्तित हो कर नली के भीतर भ्रमण करती हैं और निचले भाग में पुनः परावर्तित हो कर प्रेक्षक की आँखों तक पहुँचती हैं (चित्र 97)।

"कटा हुआ" सर कैसे बोलता है

यह चमत्कार अक्सर मीनाबाजारों आदि में दिखाते हैं। रहस्य से अनभिज्ञ व्यक्ति को यह निश्चय ही आश्चर्यचकित कर देता है। आप अपने समक्ष एक छोटा टेबुल देखते हैं जिस पर एक थाल रखा होता है। थाल में होता है आदमी का जीता-जागता सर, जो पलकें झपकाता है, बोलता है, खाता है। देखने पर लगता है कि टेबुल के नीचे धड़ छिपाने की कोई जगह नहीं है। आपको टेबुल के काफी निकट नहीं आने दिया जाता, टेबुल और आप के बीच रस्सियों का एक घेरा होता है, फिर भी आप स्पष्ट देख सकते हैं कि टेबुल के नीचे कुछ भी नहीं है।

यदि आपको यह चमत्कार देखने का फिर मौका मिले, तो कागज के एक मुड़े-तुड़े टुकड़े को टेबुल के नीचे खाली स्थान में फेंक दीजियेगा। रहस्य तुरंत खुल जायेगा। कागज टकरा कर गिर जायेगा ... आइने से। यदि कागज का टुकड़ा टेबुल तक नहीं भी पहुँचे, तो भी आइने के लिये छिपना मुश्किल हो जायेगा, क्योंकि उसमें कागज का प्रतिबिंब दिख जायेगा (चित्र 98)।

टेबुल के पैरों के बीच दर्पण को दीवार जैसा लगा देना पर्याप्त होता ताकि उसके पीछे का स्थान दूर से खाली दिखे। जाहिर है कि कमरे की



चित्र 98 कटे सर का रहस्य।

दूसरे या ज्यादा दर्पणों में प्रतिबिंबित नहीं होने चाहिये, दीवार और फर्श पर एक जैसा रंग होने चाहियें उन पर कोई निशानी या बेल-बूटे नहीं होने चाहिये और दर्पणों को पर्याप्त दूरी पर रखना चाहिये।

रहस्य इतना सरल है कि हंसी आती है, पर जब तक उसका पता न चल जाय आदमी आश्चर्य में डूबा रहता है।।

कभी-कभी जादू और अनरदार तरीके से दिखाया जाता है। जादूगर पहले खाली टेबुल दिखाता है उसके ऊपर और नीचे कुछ भी नहीं होता। इसके बाद पर्दे के पीछे से बड़ा डब्बा लाया जाता है, जिसमें (जादूगर के अनुसार) 'बिना धड़ के जिंदा सर" रखा होता है। पर दरअसल डब्बे में कुछ भी नहीं होता। जादूगर इस डब्बे को टेबुल पर रखता है, उसके सामने की दीवार हटा देता है और आश्चर्यचकित दर्शकों के सामने बोलता सर प्रकट हो जाता है। पाठक शायद समझ गये होंगे कि टेबुल के ऊपरी तख्ते पर एक छिपा हुआ ढक्कन सा होता है जिसे नीचे बैठा आदमी खिसका कर छेद से अपना सर ऊपर निकाल लेता है। यह सारा कार्य आसानी के साथ सपन्न किया जा सकता है क्योंकि डब्बे में नीचे से पेंदा नहीं होता। जादू और कई तरीकों से दिखाया जा सकता है पर उन सभी का वर्णन हम नहीं करेंगे, उन्हें देख कर पाठक उनका रहस्य स्वयं समझ जायेंगे।

आगे या पीछे?

घरेलू सामानों में कई ऐसी चीजें हैं जिनका व्यवहार अनेक लोग उपयुक्त ढंग से नहीं करते। इसके पहले हम बता चुके हैं कि कई लोग ठंडा करने के लिये बर्फ का उपयोग सही तरीके से नहीं करते वे पेय

को बक के ऊपर रखते हैं, जब कि उसे बक के नीचे रखना चाहिये। मात होता है कि कई लोग साधारण दपण को व्यवहार मे लाना नहीं जानते। भाईने म भच्छी तरह स दिखने के लिये लाग भक्सर ही लप भपने पीछ रख दत हैं ताकि "प्रतिबिंब पर प्रकाश पडे", जबकि उन्हें खुद पर प्रकाश डालना चाहिये। बहुत सी भौरत इसी प्रकार दपण का प्रयाग करती हैं। भाशा है कि हमारी पाठिकायें निश्चय ही लैंप भपने भागे रखा करेगी।

क्या भाप दपण को देख सकते हैं?

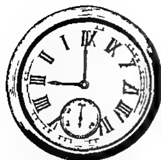
साधारण भाईने को भी भच्छी तरह नहीं जानने का एक भौर प्रमाण भधिकाश लाग शीपक म दिये गये प्रश्न का उत्तर गलत देते हैं यद्यपि भाइने में हर दिन देखा करते हैं।

जो लोग सोचत हैं कि दपण को देखा जा सकता है, वे गलत हैं। भच्छा भौर साफ-सुथरा दपण भदृश्य होता है। भाप दपण का फ्रेम देख सकते हैं, उसका किनारा देख सकते हैं, उसमे प्रतिबिंबित वस्तुभा को देख सकते हैं, पर यदि गदा नही है, तो उस भाप नहा देख सकते। कोई भी परावतक सतह भपने भाप म भदृश्य होती है। उसमे भौर प्रकीणक सतहो में यही फक है (प्रकीणक ऐसी सतह को कहते हैं, जो प्रकाश किरणा का हर सभव दिशा म फैलाती रहती है। बोलचाल की भाषा में परावतक सतह को हम चिकनी, चमकीली या पौलिश की हुई सतह कहते हैं भौर प्रकीणक को—रूखी, चमकहीन भादि)।

दपण का उपयोग करने वाली हाथ की सफाइया, जादू भादि इसी तथ्य पर भाधारित हैं कि दपण खुद भदृश्य रहता है, दृश्य होती हैं सिर्फ उसमे प्रतिबिंबित वस्तुए। बिना धड क सर वाला जादू भी इसी तथ्य पर भाधारित है।

दपण मे हम किसे देखते हैं?

'जाहिर है कि खुद भपने का'—बहुत से लोग उत्तर देंगे।—दर्पण मे हमारा बिंब हमारी खुद की नकल है, हमारा खुद का चित्र है भौर हर तरह स हमसे मिलता-जुलता होता है"।



चित्र 99 ऐसी ही घडी आपके हमशक्ल के पास है जिसे आप आईने म देखते है।

क्या आप इस सादृश्य को जाँचना चाहेगे? आप के दायें गाल पर एक तिल है। आपकी प्रतिमूर्ति के दायें गाल पर कोई निशान नही हैं, पर उसके बायें गाल पर एक काला धब्बा है, जो आपके बायें गाल पर नही हैं। आप कधी दायीं ओर करते हैं, आपका हमशक्ल – बायीं ओर। आपकी दाहिनी भौं बायी की तुलना म कुछ ऊची और घनी है। उसकी यह भौं कुछ नीची और कम घनी है। आप बडी की दायी जेब मे घडी रखते हैं और बायी मे डायरी रखते हैं। आपके हमशक्ल की आदतें ठीक उल्टी हैं वह घडी बायी जेब मे रखता है और डायरी दायी जेब मे। उसकी घडी के डायल पर नजर डालिये। आपके पास ऐसी घडी कभी नही थी उसमे अको की स्थितिया और लिखावट बिल्कुल असाधारण सी हैं, उदाहरणाथ, अक आठ दुनिया मे कही भी इस प्रकार नही लिखा जाता – IIX, और वह लिखा भी गया है बारह की जगह पर। बारह उसमे है ही नही, छे के बाद पाँच आता है, आदि आदि। इन सब बातो के अतिरिक्त, आपके हमशक्ल की घडी म सुइया उल्टी घूमती हैं।

और अत मे, आपके दपणी हमशक्ल मे एक शारीरिक ऐब है, जो, मैं सोचता हूँ, आप म नही है वह वाम-हत्था है वह लिखने, खाने आदि का काम बायें हाथ से करता है, और यदि आप उससे हाथ मिलाना चाहेगे, तो वह अपना बाया हाथ बढायेगा।

यह तय करना बिल्कुल कठिन है कि आपका हमशक्ल पढा लिखा भी है या नही। उसके हाथ म पडी पुस्तक से आप एक पक्ति भी शायद नही पढ सकेगे और जो कुछ वह बायें हाथ से लिखता है, उससे आप एक शब्द भी नही समझ सकेगें।

आपके साथ पूण सादश्य का दावा रखने वाले आदमी का यही चित्रण है। और आप उसके आधार पर खुद के बारे मे अपने खयाल बनाते हैं

मजाक बद किया जाये यदि आप सोचते हैं कि आईने मे झाँकते वक्त आप खुद को देखते हैं, तो यह आप की गलतफहमी है। अधिकतर लोगो

के मुख, धड, कपडे आदि पूर्णतया सममित (सिमेट्रिकल) नही होते (और इस पर हमारा ध्यान भी नही जाता) शरीर का वामार्ध दक्षिणार्ध के साथ पूर्णतया सादृश्य नही रखता। हमारे शरीर के दायें अर्ध के गुण दर्पण मे वामार्ध के गुणो मे परिणत हो जाते हैं और इसके विपरीत वामार्ध के गुण दायें अर्ध मे चले जाते हैं। इसी कारण दर्पण मे हम नहीं, कोई दूसरा ही होता है, जिसके साथ हमारा बहुत कम मेल बैठता है।

दर्पण के समक्ष चित्र बनाना

मूल वस्तु और दर्पण मे उसके प्रतिबिंब की असादृश्यता निम्न प्रयोग द्वारा और अच्छी तरह देखी जा सकती है।

टेबुल पर अपने सामने उदग्र रूप से एक दर्पण खड़ा करें। उसके समीप एक सादा कागज रख कर कोई त्रिभुज या समातर चतुर्भुज का चित्र बनायें। शर्त यही है कि आप कागज व अपना हाथ सीधे न देखें, दर्पण मे उनके प्रतिबिंब को देखते हुए काम करें।

जल्द ही आप मान लेगे कि काम सिर्फ देखने मे आसान है, करने मे नही। वर्षों की लबी अवधि के दौरान हमारी दृश्यानुभूतियो व गत्यात्मक सवेदनाओ के बीच एक विशेष प्रकार का मेल बैठ जाता है। दर्पण इस मेल को तोड देता है, क्योकि वह हमारे हाथ की गति हमारी आँखो को सही नही, विकृत रूप मे दिखाता है। अर्सों से बनी आदत आपकी हर गति का विरोध करेगी आप दायी ओर रेखा खीचना चाहेगे और हाथ बायी ओर खीचेगा, आदि आदि।



चित्र 100 दर्पण मे देखकर चित्र बनाना।

आपको और भी आशातीत विचित्रतायें देखने को मिलेंगी, यदि आप सरल आकृतियों की बजाय अधिक जटिल चित्र बनाने का प्रयास करेंगे। आईने में देखते हुए कुछ लिखने का प्रयास करना और भी हास्यजनक परिणाम देगा।

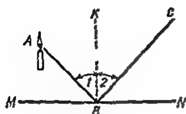
स्याही से कुछ लिख कर उस सोख्ते से दबायें। सोख्ते पर प्राप्त छाप भी दर्पणी सममिति का चित्र होता है। आप उस पर उगी लिखावट को पढ़ने की कोशिश करें। यदि वह बिल्कुल स्पष्ट होगी, तो भी आपके पल्ले शायद ही कुछ पड़ेगा (अक्षरों का झुकाव असाधारण होगा वे बायीं ओर को झुके होंगे) और सबसे मुख्य बात यह होगी कि उन लकीरों का क्रम वैसा नहीं होगा, जिसके हम आदी हो चुके हैं। लेकिन सोख्ते के पास लंब रूप से दर्पण लाने पर अक्षरों के ऐसे प्रतिबिंब प्राप्त होंगे, जिनके हम आदी हैं। इसमें दर्पण उस चीज का सममित बिंब देता है, जो खुद अपने आप में साधारण लिखावट का सममित चित्र है।

मक्खी-सुली जल्दीबाजी

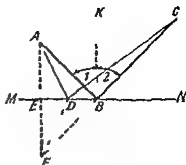
हमें ज्ञात है कि समरूप माध्यम में प्रकाश सरल रेखा, अर्थात लघुतम मार्ग पर भ्रमण करता है। पर प्रकाश उस स्थिति में भी लघुतम मार्ग चुनता है, जब उसे एक बिंदु से दूसरे बिंदु तक सीधे नहीं, किसी दर्पण से परावर्तित होने के बाद उस तक पहुँचना होता है।

आइये, उसके मार्ग का अनुसरण करें। माना कि चित्र 101 में A प्रकाश-स्रोत को द्योतित करता है रेखा MN—दर्पण को। भजित रेखा ABC मोमबत्ती से आंख C तक पहुँचने के लिये किरण का मार्ग है। सरल रेखा KB लंब है MN पर।

प्रकाशिकी के नियम से परावर्तन कोण 2 बराबर है आपतन कोण 1 के। इसे जानने के बाद सरलतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है कि A से दर्पण को छू कर C तक पहुँचने के लिये जितने भी संभव पथ हैं, उनमें ABC सबसे छोटा (लघुतम) है। इसके लिये किरण-पथ ABC की तुलना किसी दूसरे पथ ADC के साथ करते हैं (चित्र 102)। MN पर बिंदु A से लंब डालें और उसे बिंदु F तक बढ़ायें, जहां वह किरण BC



चित्र 101 परावर्तन कोण बराबर है आपतन कोण के।



चित्र 102 परावर्तन करते हुए प्रकाश लघुतम पथ चुनता है।

के भाग को काटता है। F व D बिंदुओं को मिला लें। अब आगे कुछ करने के पहले त्रिभुजों ABE व EBF की तुल्यता सिद्ध करें। दोनों ही त्रिभुज समकोण हैं और आधार EB उभयनिष्ठ है। इसके अतिरिक्त, कोण EFB तथा EAB आपस में बराबर हैं, क्योंकि वे क्रमश: कोण 2 व 1 के बराबर हैं। अत: AE = EF। इसी से समकोण त्रिभुजों AED व EDF की भी तुल्यता सिद्ध की जा सकती है (AE = EF ED — उभयनिष्ठ है, $\angle AED = \angle DEF = 90°$), जिससे ज्ञात होता है AD = DF।

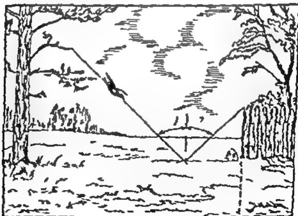
उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर कहा जा सकता है कि पथ ABC व पथ CBF बराबर हैं (क्योंकि AB = FB)। पर इसी तरह से पथ ADC व पथ CDF भी आपस में बराबर हैं। अब यदि CBF लंबाई की तुलना CDF की लंबाई से करें, तो जाहिर है कि CBF छोटा है CDF से (CBF सरल रेखा है)। अत: पथ ABC छोटा है पथ ADC से — और यही सिद्ध करना था।

यदि परावर्तन कोण आपतन कोण के बराबर हो, पथ ABC पथ ADC से हमेशा छोटा होगा, चाहे बिंदु D कहीं भी क्यों न चुना जाये। इसका अर्थ यह है कि स्रोत, दर्पण और आँख के बीच सभी संभव पथों में से प्रकाश उसी को चुनता है, जो सबसे छोटा हो और जिसपर सबसे शीघ्र पहुंचा जा सके। इस तथ्य की ओर अलेक्जेंडर हिरोन ने भी ध्यान दिलाया था। वे दूसरी शती के विख्यात ग्रीक यंत्रकार थे।

उपरोक्त स्थिति मे जिस प्रकार लघुतम पथ ढूढा गया था, इसका ज्ञान अनेक पहेलियो को हल करने मे सहायक हो सकता है। उदाहरण के लिये एक पहेलीनुमा प्रश्न पेश है



चित्र 103 कौवे की समस्या बाडे तक का लघुतम पथ ढूढना।



चित्र 104 कौवे की समस्या का हल।

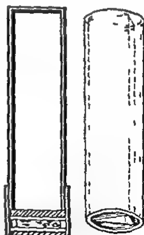
पेड की डाल पर एक कौवा बैठा है। नीचे जमीन पर दाने बिखरे हैं। कौवा जमीन की ओर उड़ता है, अनाज का एक दाना उठाता है और सामने के बाड़े पर बैठ जाता है। प्रश्न है किस जगह वह दाना उठाये, ताकि उसका पथ सबसे छोटा हो (चित्र 103)।

प्रश्न ठीक वैसा ही है, जैसा हम अभी अभी देख चुके है। इसीलिये सही उत्तर देना कठिन नही है कौवे को प्रकाश की किरण का अनुसरण करना चाहिये, अर्थात इस प्रकार उड़ना चाहिये कि कोण 1 बराबर हो कोण 2 के (चित्र 104)। हम देख चुके हैं कि इस तरह से पथ लघुतम होगा।

सुबिंबदर्शी कल और आज

सुबिंबदर्शी (केलाइडोस्कोप) नामक खिलौने को सभी जानते होगे रंग रंगीन कांच के टुकडे दो या तीन समतल दर्पण मे प्रतिबिंबित होते रहते हैं और सुबिंबदर्शी (या सुबिंबक) के हिलने-डुलने के साथ बदलते रहने वाली नयी-नयी अनूठी खूबसूरत आकृतियां बनाते रहते हैं। सुबिंबक को सभी जानते हैं, पर किसी को यह संदेह नही होता होगा कि उसकी मदद से कितनी बडी सख्या म विभिन्न आकृतियां प्राप्त की जा सकती हैं। माना कि आपके सुबिंबक मे कांच के 20 टुकडे हैं और नयी-नयी आकृतियां प्राप्त करने क लिये आप उसे हर मिनट दस बार घुमाते हैं। सारी सभव आकृतियों को देखने म आप कितना समय लगायेंगे?

प्रचड से प्रचड कल्पनाशक्ति भी इसका सही उत्तर नही दे सकती। सागर सूख जायेंगे और पर्वत घिस जायेंगे, पर सुबिंबक आपको नये-नये बेल-बूटे दिखाता रहेगा। आपके नन्हे से खिलौने के भीतर बेल-बूटो की सख्या इतनी विशाल है कि सबको बनाने म कम से कम पाँच खरब वर्ष लग जायेंगे। सभी बेल-बूटों को देखने के लिये आपको



चित्र 105 सुबिंबदर्शी

पाच परख से अधिक वर्ष तक सुबिबक को घुमाना पडगा।

सुबिबक की अनत नयी-नवेली आकृतिया के साथ सज्जाकारा की दिलचस्पी सदा से रही है, क्योकि इस उपकरण की सजनशीलता के साथ उनकी कल्पना शक्ति होड नही लगा सकती। सुबिबक इतन मोहक बल-बूट रचता है कि सजावट म उनका उपयोग हमेशा इष्ट है।

पर आम आदमी म सुबिबक वसी रुचि आजकल नही उत्पन्न करता, जैसी सौ साल पहले करता था। उस समय वह नया-नया निकला था और उसका यशगान गद्य और पद्य दोना ही म हुआ करता था।

सुबिबक का आविष्कार इगलड म 1816 ई म हुआ था। एक-डड साल बाद ही वह रूस म पहुँचा, जहा प्रशसा के साथ इसका स्वागत हुआ।

नीति-कथा के लेखक अ इज्माइलव ने सुबिबक के बारे मे 'वफादार" नामक पत्रिका (जुलाई, 1818) मे लिखा

"सुबिबदर्शी के बारे मे विज्ञापन पढने के बाद मैंने इस अनूठे उपरण को मगाया—

देखा, — और क्या झिलमिलाया आँखो म?
नानाकृतियो और नैन सितारो म
नीलम, लाल, पुखराज,
पन्ना औ मुक्ताराज
और जबुक, और जवाहरात,
मूगे-मोती — दिखे हठात!
हिला दू बस अपना हाथ —
और नया रूप मेरे साथ!

सुबिबदर्शी के दश्यो का वणन पद्य क्या, गद्य म भी नही किया जा सकता है। हाथ के थोडा भी हिलने से आकृतिया बदल जाती हैं और उनमे से कोई भी एक दूसरे स मिलती-जुलती नही होती। और कितने खूबसूरत बेल-बूटे बनते हैं! काश कि उन्हे कपडो पर बनाया जा सकता। पर इतन चमकीले धागे कहा से आयेंगे। काहिलियत से बचने के लिये कही अच्छा काम सुबिबदर्शी के चित्रो को देखना है।

कहते है कि सुबिबदर्शी XVII-वी शती म ही ज्ञात था। कुछ ही

समय पहले इगलड मे उसका पुनर्निमाण हुआ है और वहा से दो महीने पहले उसे फ्रास मे लाया गया। वहा का एक धनवान व्यक्ति 20 000 फ्राक के मूल्य का सुबिबदर्शी बनवा रहा है। उसने काच की जगह हीरे-जवाहरात उपयोग करने की आज्ञा दी है।"

आगे लेखक सुबिबक के बारे मे एक दिलचस्प चुटकुला सुनाता है और निबध का अत करता है एव विषादपूण तथ्य से, जो कृषि-दासता और और पिछडेपन के युग के लिये सामान्य बात थी

'अपने उत्कृष्ट प्रकाशिकीय उपकरणो के लिये विख्यात दरबारी भौतिकविद् व मनकार रोसपीनी आजकल सुबिबदर्शी बनाते हैं और 20 रूबल म बेचते हैं। इसम कोइ सदह नही कि खरीदने वाले बहुत मिल जायेंगे। दुख और आश्चय की बात है कि भौतिकी और रसायन पर व्याख्यान देने से कतव्यनिष्ठ रोसपीनी महाशय को कोई लाभ नही हुआ, इन विषयो म किसी को कोई दिलचस्पी नही है।'

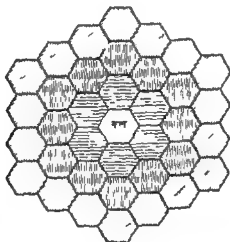
सुबिबक लबी अवधि तक मात्र एक मनोरजक खिलौना ही बना रहा। सिफ आधुनिक समय मे बेल-बूटे बनाने के लिये उसका लाभदायक उपयोग हा रहा है। एक उपकरण बनाया गया है, जिसकी मदद से सुबिबक के बेल-बूटो की फोटोग्राफी की जा सकती है और इस प्रकार सजावट के लिये सभी सभव आकृतिया यत्रवत ज्ञात की जा सकती हैं।

माया-महल और मरीचिकायें

यदि आप को काच के टुकडे जसा छोटा बना कर सुबिबक मे डाल दिया जाये, तो आपको कसा लगेगा? ऐसा प्रयोग सचमुच मे किया जा सकता है। सन 1900 ई० म सगठित परिस की विश्व प्रदशनी मे आये लागो का इसका सुअवसर मिला था। वहा एक तथाकथित 'माया महल' था जो काफी लोकप्रिय हुआ। यह और कुछ नही, एक विशाल व अचर सुबिबक था। आप एक षट्कोण कक्ष की कल्पना कर, जिसकी दीवारे आदश पौलिश वाले बडे-बडे दपणो से बनी हैं। इस दर्पण-कक्ष के कोणो पर खभा आदि के रूप म वास्तु सज्जा लगे हैं, जो छत मे बनी नक्काशी से मेल खाते होते हैं। ऐसे कक्ष मे दशक अनत कक्षो, स्तभा व अपने

हमशक्लो की भीड के बीच अपने को पा कर हतप्रभ सा हो जाता है। वे उसे चारो ओर से घेर लेते हैं, और जहा तक वह देख सकता है, सिर्फ कक्ष, स्तभ और हमशक्ल ही नजर आते हैं।

चित्र 106 मे क्षतिज लकीरो से भरे कक्ष एक बार परावर्तन से प्राप्त होते हैं, दुबारा परावर्तित होने पर खडी रेखाओ से भरे 12 कक्ष प्राप्त होते हैं। आडी रेखाओ से भरे 18 कक्ष तीसरे परावर्तन के परिणाम हैं। कक्षो की सख्या हर नये परावर्तन के साथ बढती जाती है और कितने परावर्तन सभव हैं, यह दर्पणो के पालिश और उनकी समातरता की कोटि पर निर्भर करता है। व्यवहारत वहा बारहवे परावर्तन से प्राप्त प्रतिबिंब दिख रहे थे, अर्थात नजरो के सामने 468 कक्ष थे।

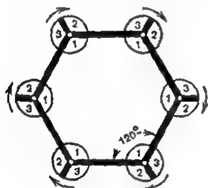


चित्र 106 केंद्रीय कक्ष की दीवारो के तीन बार परावर्तित होने से 36 कक्ष मिलते हैं।

इस चमत्कार का रहस्य कोई भी समझ सकता है, यदि वह प्रकाश परावर्तन के नियमो को जानता है। यहा तीन जोडे समातर दर्पण हैं और दस जोडे दर्पण कोनो मे लगे हैं, फिर इतने अधिक प्रतिबिंब क्यो न मिले। पेरिस प्रदर्शनी के तथाकथित माया महल मे एक और रोचक प्रकाशिकीय प्रभाव था। इस महल के निर्माताओ ने असख्य छवियो के साथ-साथ पूरे

दृश्य के क्षणिक परिवर्तन का कमाल भी दिखाने की कोशिश की थी। ऐसा लगता था, जैसे वे दर्शकों को एक विशाल सुबिबक मे खड़ा कर के भीतर से ही नये-नये दृश्य दिखा रहे हैं।

'माया महल' मे दृश्य-परिवर्तन का इंतजाम इस प्रकार किया गया था दीवार कोनो से कुछ दूर पर ऊचाई के सहारे कटे हुए थे। ऐसा कहा जा सकता है कि दीवार कुछ छोटे थे और कोने उनसे मिल कर पुरा कक्ष बनाते थे। ये कोने अपनी



चित्र 107



चित्र 108 "माया-महल का रहस्य

धुरी पर घूम सकते थे, उनके घूमने से दूसरी तरफ से छिपा कोना कक्ष के भीतर आ जाता था। चित्र 107 से स्पष्ट है कि कोना *1 2* व *3* के अनुरूप तीन दृश्य दिखाये जा सकते थे। अब मान लीजिये कि *1* से इंगित सभी कोने उष्णकटिबंध के जंगलों का दृश्य दिखाते है, *2* द्वारा इंगित कोने अरबी सज्जा और *3* द्वारा इंगित कोने भारतीय मंदिर मे दृश्य दिखाते हैं। छिपी युक्ति द्वारा सभी कोने

एकबारगी से घूमते हैं और जगल का दृश्य अरबी मज्जा या मंदिर के दृश्य में परिणत हो जाता है। पूरे "जादू" का रहस्य प्रकाश किरणों के परावर्तन जैसी सरल भौतिक सवृत्ति पर आधारित है।

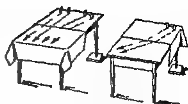
प्रकाश का अपवर्तन क्यों और कैसे होता है?

एक माध्यम से दूसरे म प्रविष्ट होते क्षण प्रकाश के पथ की दिशा बदल जाती है। इस अपवर्तन को कई लोग प्रकृति का नखरा मानते हैं। यह समझ मे नही आता कि नये माध्यम में प्रकाश अपनी पुरानी दिशा क्यों नहीं बनाये रख सकता, वह नयी दिशा म क्यो चल पडता है। जो ऐसा सोचते हैं, उन्हे जानना चाहिये कि प्रकाश किरण के साथ वही होता है, जो कधे-से-कधा मिला कर बढते हुए सैनिको की पक्ति के साथ होता है जब वे किसी सुगम स्थल स निकल कर दुगम स्थल की सीमा मे प्रविष्ट होते हैं। पिछली शती के विख्यात खगोलशास्त्री व भौतिकविद जोन गरशल इसके बारे मे लिखते हैं

' मान ले कि एक टुकडी के सनिक कधे से कधा मिला कर एक पक्ति म चल रहे हैं। स्थान एक सरल रेखा द्वारा विभक्त है, जिसके एक ओर जमीन समतल है व चलने के लिये सुविधाजनक है, पर दूसरी ओर जमीन ऊबड-खाबड है, उस पर चलना उतना सरल नही है। यह भी मान ले कि पक्ति इस विभाजक रेखा के साथ कोई कोण बनाते हुए चल रही है। अत सभी सैनिक एक साथ नही, बल्कि एक एक कर के इस सीमा को पार करेंगे। इस स्थिति मे हर सनिक सीमा रेखा को पार करने के बाद अपनी गति धीमी करेगा, क्योकि यहा जमीन पहले जैसी सुगम नही है। वह उन सनिको की बराबरी मे नही चल पायगा, जो अभी अच्छी जमीन पर ही चल रहे हैं। हर सनिक इस कठिनाई को महसूस करेगा। अत पक्ति का वह भाग, जो दुगम जमीन पर आ चुका है, बाकी बचे भाग के साथ उस बिंदु पर अधिक कोण बनायेगा, जिस पर वह सीमा को काटती है (यदि सैनिक पहले की तरह ही कधे से कधा मिलाये पक्तिबद्ध बढ रहे हैं, तीतर बीतर नही हो जाते)। कधे से कधा मिलाये रहने की आवश्यकता के कारण हर सनिक को नयी जमीन पर नयी पक्ति के लब चलना होगा। इस तरह सीमा पार का पथ नयी पक्ति पर लब होगा और सीमा

के पहले वाले पथ के साथ उसका अनुपात वैसा ही होगा, जैसा उनके नये वेग का पुराने वेग के साथ होगा।"

छोटे पैमाने पर आप प्रकाश अपवतन की इस दृश्य-सुगम उपमा को टेबुल पर कार्यान्वित कर सकते हैं। टेबुल के आधे हिस्से पर कोई मोटी दरी बिछा दीजिये (चित्र 109)। टेबुल को थोड़ा झुकाव देकर उस पर



चित्र 109 अपवतन का कारण सम समझाने वाला एक प्रयोग।

चक्कों के एक जोड़े को लुढ़कने दीजिये, जो एक ही अक्ष के साथ जड़े हुए हैं (यह आप किसी टूटे खिलौने, जैसे इजन से ले सकते हैं)। यदि चक्कों की गति की दिशा दरी की किनारी के लब है, तो चक्कों के पथ का अपवतन नहीं होगा। यहा आपको एक प्रकाशिकीय नियम का उदाहरण मिलता है माध्यमों के विभाजक तल के लब चलती हुई किरण अपवर्तित नहीं होती।

यदि चक्का की गति की दिशा दरी की किनारी के साथ कोई झुका कोण बनाती है, तो इस किनारी पर, अर्थात भिन्न वेग प्रदान करने वाले दो माध्यमों की विभाजक रेखा पर चक्कों का पथ मुड़ जायेगा।

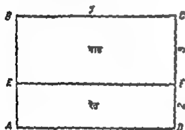
आसानी से देख सकते हैं कि अधिक वेग वाले भाग (खाली टेबुल) से कम वेग वाले भाग (दरी बिछे स्थान) में प्रविष्ट होने पर पथ ("किरण") आपतन बिंदु से विभाजक रेखा पर खींचे गये लब की ओर झुकता है। विपरीत स्थिति में वह इस लब से दूर हो जाता है।

इससे एक और महत्त्वपूर्ण बात ज्ञात होती है अपवतन का कारण दोनों माध्यमों में वेगों की भिन्नता है। अपवतन की सारी सवृत्तिया के मूल में यही तथ्य है। वेगों में अतर जितना ही अधिक होगा, अपवतन भी उतना ही अधिक होगा। तथाकथित 'अपवतन गुणाक" और कुछ नहीं, इन वेगों का अनुपात भर है। जब आप पढ़ते हैं कि हवा से पानी में सक्रमण के लिये अपवतन गुणाक $^4/_3$ है, तो इसके साथ ही आप यह भी जान लेते हैं कि प्रकाश पानी की अपेक्षा हवा में 1 3 गुना अधिक तेज चलता है। इन बातों से प्रकाश प्रसरण की एक और ज्ञातव्य विशेषता सबधित

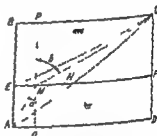
है। यदि परावर्तन की स्थिति में प्रकाश लघुतम पथ चुनता है, तो अपवर्तन की स्थिति में वह क्षिप्रतम पथ चुनता है "लक्ष्य" तक किरण को कोई भी दूसरी दिशा उतनी शीघ्रता (क्षिप्रता) से नहीं पहुँचा सकती, जितनी शीघ्रता से उसे यह टूटा (मुड़ा) हुआ पथ पहुँचा सकता है।

छोटे पथ की अपेक्षा बड़ा पथ कब जल्द पार होता है?

क्या टेढ़ा पथ सचमुच में सीधे पथ की अपेक्षा जल्द लक्ष्य तक पहुँचा सकता है? हाँ, यदि पथ के भिन्न टुकड़ों पर क्षिप्रता भिन्न हो। स्मरण करें कि यदि गाँव दो रेलवे स्टेशनों के बीच में कहीं स्थित हो, तो वहाँ के निवासी क्या करते हैं। दूर वाले स्टेशन तक जाने के लिये पहले घोड़े पर नजदीक वाले स्टेशन की ओर जाते हैं और फिर ट्रेन में बैठ कर लक्ष्य तक पहुँचते हैं। लघुतम पथ तो यही होता, यदि वे घोड़े पर बैठ कर सीधे दूर वाले स्टेशन की ओर चल देते। पर वे पसंद करते हैं घोड़े और ट्रेन वाला पथ, क्योंकि इस पर वे जल्द पहुँचते हैं।



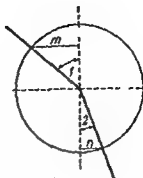
चित्र 110 घुड़सवार की समस्या A से C तक का क्षिप्रतम पथ ढूँढ़ना।



चित्र 111 घुड़सवार की समस्या का हल। क्षिप्रतम पथ AMC है।

एक और उदाहरण की ओर थोड़ा ध्यान दें। घुड़सवार को बिंदु A से सेनापति के शिविर C तक पत्र के साथ पहुँचना है। बीच में बलुवाही व मैदानी जमीन हैं, जिनकी आपसी सीमा रेखा EF है। मैदान की तुलना में बालु पर घोड़ा दुगुना धीमे चलता है। घुड़सवार को कौन सा पथ चुनना चाहिये कि वह शिविर तक जल्द से जल्द पहुँच सके? प्रथम दृष्टि में प्रतीत होता है कि क्षिप्रतम पथ सरल रेखा AC होगी। पर यह बिल्कुल गलत है और मैं नहीं सोचता कि ऐसा कोई घुड़सवार होगा, जो इस पथ को

चुनेगा। बालू पर की धीमी गति उसके मन में सही विचार उत्पन्न करेगा कि बलुवाही भूभाग को वह कम झुके पथ द्वारा पार करे। बेशक, इसके कारण मदानी भूभाग पर उसका पथ अधिक लंबा हो जायेगा, पर यहां घोडा दुगुनी तेज चाल से चलता है। अतः यहां कुल मिला कर घुड़सवार फायदे में ही रहेगा। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि घुड़सवार का पथ दोनों प्रकार के भूभागों की सीमा पर अपवर्तित हो जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त, अपवर्तन ऐसा होना चाहिये कि उसका मदानी पथ विभाजक रेखा EF के लंब के साथ अधिक बड़ा कोण बनाये बनिस्बत कि बलुवाही पथ के।



चित्र 112 ज्या क्या है? m और त्रिज्या का अनुपात कोण 1 की ज्या है, n और त्रिज्या का अनुपात – कोण 2 की ज्या है।

ज्यामिति और विशेषकर पिथागोरस-प्रमेय से परिचित पाठक देख सकते हैं कि ऋजु पथ AC क्षिप्रतम नहीं है, दी गयी परिस्थितियों में लक्ष्य तक पहुंचने के लिये एक क्षिप्र पथ भजित रेखा AEC है (चित्र 111)।

चित्र 110 में दिखाया गया है कि बलुवाही जमीन की चौड़ाई 2 km है, मैदानी स्थल की – 3 km तथा दूरी BC = 7 km है। अतः पिथागोरस साध्य के अनुसार चौड़ाई AC (चित्र 111) बराबर है $\sqrt{5^2+7^2} = \sqrt{74} = 8.60$ km। बालू पर इस रेखाखंड का भाग AN पूरी लंबाई AC का $^2/_5$ अंश अर्थात् 3.44 km है। चूंकि मैदान की अपेक्षा बालू पर घोड़ा दुगुना धीरे चलता है, इसलिये बालू पर 3.44 km की दूरी समय के लिहाज से 6.88 km लंबे मदानी पथ के बराबर होगी। अतः 8.60 km लंबा मिलाजुला पथ AC समय के दृष्टिकोण से समतुल्य है 12.04 km लंबे मैदानी पथ के।

इसी विधि से भजित पथ AEC को भी मैदानी पथ में व्यक्त करें। खंड AE = 2 km है और वह 4 km मैदानी पथ के समतुल्य होगा। खंड EC = $\sqrt{3^2+7^2} = \sqrt{58} = 7.61$ km है। अतः भजित पथ AEC समतुल्य है 4 + 7.61 = 11.61 km के।

इस प्रकार, "छोटा" व सीधा पथ मैदानी जमीन पर 12 04 km चलने के बराबर है। "अधिक लंबा" पथ, जैसा कि आप देखते हैं, 12 04–11 61 = 0 43 या लगभग आधे किलोमीटर की छूट देता है।

पर अभी तक हमने क्षिप्रतम पथ नहीं दिखाया। नियमानुसार क्षिप्रतम पथ वह होगा, जिसम (यहा हमे त्रिकोणमिति की सहायता लेनी पड़ेगा) कोण b की ज्या व कोण a की ज्या का अनुपात बराबर होगा मैदान व बालू पर की क्षिप्रताओ के अनुपात अर्थात 2 : 1 के। दूसरे शब्दों में, दिशा इस प्रकार चुननी चाहिये कि $\sin a$ से $\sin b$ दुगुना हो। इसके लिये भूपट्टिया की विभाजक रेखा को ऐसे बिंदु M पर पार करनी चाहिये, जो E से एक किलोमीटर दूर स्थित हो, ताकि

$$\sin b = \frac{6}{\sqrt{3^2+6^2}} \qquad \sin a = \frac{1}{\sqrt{1+2^2}}$$

अनुपात $\frac{\sin b}{\sin a} = \frac{6}{\sqrt{45}} \quad \frac{1}{\sqrt{5}} = \frac{6}{3\sqrt{5}} \quad \frac{1}{\sqrt{5}} = 2$ दोनो क्षिप्रताओ का अनुपात है।

और कितने लबे मैदानी पथ के समतुल्य होगा यह पथ? कलन करे $AM = \sqrt{2^2+1^2}$, और यह 4 47 km लबे मैदानी पथ के समतुल्य होगा। $MC = \sqrt{45} = 6\ 71$ km। पूरे पथ की दूरी 4 47 + 6 71 = 11 18, अर्थात् ऋजु पथ से 860 m कम होगा (हमे ज्ञात है कि AC 12 04 km के समतुल्य है)।

आप देख रहे हैं कि दी हुई स्थितियो मे घुमावदार पथ चुनने से कितना लाभ है। प्रकाश किरणें इसी प्रकार से क्षिप्रतम पथ चुनती हैं, क्योकि प्रकाश के अपवर्तन का नियम समस्या के गणितीय हल की शर्तों को ठीक-ठीक पूरा करता है अपवर्तन कोण की ज्या व आपतन कोण की ज्या का अनुपात बराबर होता है नये व पुराने माध्यमो मे प्रकाश-वेगो के अनुपात के। माध्यमो का अपवर्तन सूचकांक (अपवर्तनांक) भी इसी अनुपात के बराबर होता है।

परावर्तन व अपवर्तन दोनो के गुणो को एक नियम म बाधने के लिये हम कह सकते हैं कि प्रकाश हर स्थिति म क्षिप्रतम पथ पर गमन करता है, अर्थात् वह उस नियम का पालन करता है, जिसे भौतिकविद "क्षिप्रतम आगमन का नियम (फेर्मा नियम) नाम से पुकारते हैं। यदि माध्यम

सर्वत्र समरूप नहीं है और उसका अपवर्तक गुण एक बिंदु से दूसरे बिंदु की ओर धीरे धीरे बदलता है (जैसे पृथ्वी के वातावरण में), तो क्षिप्रतम आगमन का नियम इस स्थिति में भी पालित होता है। पृथ्वी के वातावरण में प्रविष्ट हो कर प्रकाश की किरणें हल्की सी वक्रित हो जाती हैं। इस घटना को खगोलशास्त्रियों की भाषा में "वातावरणीय अपवर्तन" कहते हैं और इसका कारण भी उक्त नियम ही है। वातावरण में, जो नीचे की ओर क्रमश अधिक घना होता जाता है, प्रकाश किरण इस प्रकार नमती (झुकती) है कि उसकी अवतलता जमीन की ओर बनती है। इसके कारण किरण ऊपरी परतों में देर तक चलती रहती है। वहा उसकी गति वातावरण द्वारा इतनी क्षीण नहीं होती, जितनी नीचे। निचली परतों में वह कम समय तक चलती है, क्योंकि उसमें चलना कठिन होता है। मिला जुला कर वह लक्ष्य तक शीघ्र ही पहुँचती है, बनिस्बत कि यदि वह सरल रेखा पर चलती।

क्षिप्रतम आगमन का सिद्धांत (फेर्मा का नियम) सिर्फ प्रकाशीय सवृत्तियों (घटनाओं) के लिये ही सत्य नहीं है इसका अनुसरण ध्वनि भी करती है। यह नियम सभी तरंगी गतियों के लिये सामान्य है, चाहे तरंगों की प्रकृति कुछ भी क्यों न हो।

पाठक निश्चय ही तरंगी गतियों के इस गुण का कारण जानना चाहते होंगे। इस प्रश्न पर विख्यात आधुनिक भौतिकविद श्रेडिंगर के शब्द प्रकाश डाल सकते हैं।[1]

उन्होंने भी आगे बढ़ती फौज का उदाहरण लिया है, पर वे ऐसे माध्यम में प्रकाश की गति को समझाना चाहते हैं, जिसका घनत्व क्रमानुगत रूप से धीरे धीरे बदलता है।

"मान लें,—वे लिखते हैं,—पंक्ति को बिल्कुल सीधी बनाये रखने के लिये सैनिकों को एक लंबा डंडा दिया गया है। सभी सैनिक उसे हाथों से पकड़े हुए कंधे से कंधा मिलाये चल रहे हैं। हुक्म मिलता है यथाशक्ति तेज दौड़ो। यदि जमीन की विशेषतायें धीरे धीरे बदलती हैं, तो पहले दायें भाग के (उदाहरणार्थ) और फिर बायीं ओर के सैनिक अधिक तेजी

---

[1] नोबेल प्राइज प्राप्त करते वक्त (1933 ई में) यह उन्होंने अपने प्रतिवेदन में पढ़ा था।

से भागने लगेंगे और पंक्ति की गतिदिशा स्वयं मुड़ जायेगी। यहां हम पायेंगे कि तय किया गया पथ सीधा नहीं, बल्कि वक्र है। कारण आसानी से समझा जा सकता है दी गयी विशेषताओं वाले भूभाग पर यह पथ लक्ष्य तक पहुँचने के लिये समय के लिहाज से लघुतम (अर्थात क्षिप्रतम) होगा।"

नये रौबिंसन

आप बेशक जानते होंगे कि जूल वेन के उपन्यास 'रहस्यमय द्वीप" के पात्रों ने निर्जन स्थल में कैसे बिना माचिस या चकमक के आग प्राप्त की थी। रौबिंसन की सहायता आकाश से गिरी बिजली ने की थी, जिससे एक वृक्ष जलने लगा था। जूल वेन के नये रौबिंसनों की विद्वान इंजिनियर के प्रत्युत्पन्नमतित्त्व व भौतिकीय नियमों के ठोस ज्ञान ने मदद की। आपको याद होगा कि भोले भाले नाविक पेनक्रोफ ने जब शिकार से लौट कर इंजिनियर व जर्नलिस्ट को लहकते अलाव के पास बैठे देखा, तो कितना आश्चर्यचकित हुआ।

'—किसने आग जलायी ?—नाविक ने पूछा।

—सूरज ने,—स्पिलेट ने जवाब दिया।

जर्नलिस्ट मजाक नहीं कर रहा था। आग सचमुच में सूरज ने दी थी, जिससे नाविक इतना खुश हो रहा था। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था और वह आश्चर्य में इतना डूबा हुआ था कि इंजिनियर से कुछ पूछ भी न सका।

—मतलब कि आपके पास जलाने वाला काँच था ?—हरबर्ट ने इंजिनियर से पूछा।

—नहीं पर मैंने उसे बना लिया।

और उसने दिखाया कि कैसे लेंस बनाया जा सकता है। उसने पास दो साधारण शीशे थे, जिसे उसने अपनी और स्पिलेट की घड़ी से निकाल रखा था। उसने उनकी किनारी सटा कर उसमें पानी भर लिया और किनारी गीली मिट्टी से चिपका दी। यह आग जलाने वाले असली लेंस की बराबरी कर सकता था। इसी की सहायता से इंजिनियर ने सूर्य किरणों को सूखी घास पर संकेंद्रित कर के आग जलायी थी।

शायद पाठक के मन मे यह प्रश्न उठे कि घडी के शीशो के बीच पानी भरने की क्या आवश्यकता थी। क्या हवा से भरा दो पार्श्वों से उत्तल बरतन किरणो को सकद्रित नही कर सकता?

घडी का कॉच बाहरी व भीतरी दो समातर (समकेंद्रीय) वक्र तलो द्वारा घिरा होता है। भौतिकी के अनुसार ऐसे तलो द्वारा घिरे माध्यम मे प्रविष्ट होते वक्त किरणें अपनी दिशा नही बदलती। दूसरा शीशा भी ऐसा ही है और उसे पार करते वक्त भी वे अपनी दिशा मे परिवतन नही लाती। यही कारण है कि वे नाभि पर इकत्रित नही होती। एक बिंदु पर किरणो को सकेंद्रित करने के लिये शीशों के बीच के स्थान में कोई ऐसा पारदशक द्रव्य होना चाहिये, जो किरणो को हवा की तुलना म अधिक अपवर्तित कर सके। जूल वेर्न के उपन्यास का इजिनियर यही करता है।

आग जलाने वाले लेंस का काम शीशे की साधारण सुराही भी कर सकती है, यदि उसका आकार गोल हो। इस बात को लोग प्राचीनकाल से ही जानते हैं। उन्होंने इस बात पर भी ध्यान दिया था कि इससे सुराही का पानी गर्म नही होता, ठडा ही रहता है। कभी-कभी ऐसा होता था कि खुली खिडकी पर रखी पानी की ऐसी सुराही पर्दे मे आग लगा देती थी, मेज की सतह को झुलसा देती थी, आदि। प्राचीन दवाफरोश अपनी दूकान सजाने के लिये गोल बोतलो मे रगीन पानी रखा करते थे और यह परपरा कभी-कभी बडी-बडी दुघटनाओ का कारण बन जाया करती थी, विशेषकर उस स्थिति मे, जब सुराही के निकट कोई ज्वलनशील वस्तु रखी होती थी।

पानी भरे गोल फ्लास्क की सहायता से घडी की कॉच मे रखा पानी खौलाया जा सकता है। इसके लिये 12 cm व्यास वाला छोटा फ्लास्क भी काफी रहेगा। यदि फ्लास्क का व्यास 15 cm हो, तो नाभि (फोकस) पर तापक्रम 120°C तक उठ सकता है। फ्लास्क की सहायता से सिगरेट सुलगाना उतना ही सरल है, जितना कॉच के लेंस से, जिसके बारे म लोमोनोसोव ने 'कॉच के लाभ" नामक कविता मे लिखा था

प्रमथ्यु से क्या कम हैं हम,
कॉच से सूय की अग्नी
धरती पर लाते हैं।

गपोड शखा का गाली दे हम,
निष्पाप स्वर्गानल से
बीडी सुलगाते हैं।

यहा यह बता देना आवश्यक होगा कि पानी वाले लेस कांच के लेसो की तुलना मे काफी क्षीण होते हैं, क्योकि, प्रथमत, पानी मे काफी कम अपवर्तन होता है और, दूसरे, पानी गर्मी देने वाली अवरक्त किरणो को बहुत बडी मात्रा में सोख लेता है।

आश्चर्य की बात है कि शीशे के लेस का अग्निदायक गुण प्राचीन यूनानवासियो को चश्मा व दूरबीनो की खोज के हजारो साल पहले से ही ज्ञात था। उदारणार्थ, लेस का नाम अरिस्तोफान के विख्यात हास्यक (कामेडी) "बादल" मे आता है। सुकरात पूछता है स्त्रोप्तियाद से

"यदि कोई तुम पर पाँच तालातोन के कर्ज का दावा करे और तुम्हारे खिलाफ अर्जी लिखे, तो उसे कैसे नष्ट करोगे?

स्त्रेप्तियाद—हाँ, मिल गया अर्जी नष्ट करने का तरीका, और वह भी ऐसा कि तुम प्रशसा किये बगैर नही रहोगे! दवाफरोशो के यहां तुमने एक सुदर पारदर्शक पत्थर तो देखा ही होगा, उससे आग जलाते हैं।

सुकरात—आग जलाने वाला शीशा?

स्त्रेप्तियाद—बिल्कुल।

सुकरात—फिर?

स्त्रेप्तियाद—जबतक वकील लिखेगा, मैं उसके पीछे से अर्जी पर सूरज की किरणें भेज कर अक्षरो को पिघला दूगा"

स्पष्टता के लिय याद दिला दूँ कि अरिस्तोफान के समय यूनानवासी मोम की परत चढे तख्तो पर लिखा करते थे। लिखावट धूप मे सचमुच पिघल कर लुप्त हो सकती थी।

बर्फ से अलाव सुलगाना

दोनो पार्श्वों से उत्तल वीक्ष (लेस) बर्फ से भी बनाया जा सकता है और इसीलिये आप बर्फ से भी आग सुलगा सकते हैं शर्त यही है कि वह पर्याप्त पारदर्शक हो। बर्फ धूप मे पिघलेगी नही, क्योकि किरणो

को अपवर्तित करने से यह गर्म नही होती। पानी और बर्फ के अपवर्तन गुणाको मे अधिक का अतर नही है। इसीलिये यदि पानी से आग जलायी जा सकती है, तो यही काम बर्फ से भी किया जा सकता है।

बर्फ का लेंस अच्छा काम आया था जूल वेर्न लिखित "कप्तेन हेटरास की यात्रा" मे। चकमक पत्थर खो चुका था और –48°C की भयानक ठड म कही से आग मिलने की गुजाइश नही थी। सोच में पड़े यात्रियो को इस स्थिति से मुक्ति दिलायी डा क्लाबोनी ने

"–यह दुर्भाग्य की बात है,–हेटरास ने कहा।

–हाँ,–डाक्टर ने छोटा सा उत्तर दिया।

–हमारे पास दूरबीन भी नही है कि उसका लेंस निकाल कर आग जलायें।

–जानता हूँ,–डाक्टर ने कहा,–और बहुत ही अफसोस की बात है। यहाँ सूरज कितना तेज चमक रहा है, सूखी घास बहुत जल्द सुलग जाती।

–अब करना क्या है, भालू के बच्चे मास से भूख मिटानी होगी,–हेटरास ने कहा।

–हाँ,–डाक्टर कुछ सोचते हुए बडबडाया,–जब कोई उपाय नही रहेगा। पर क्यो न

–आपने कुछ सोच निकाला क्या?–हेटरास ने जिज्ञासा की।

–मेरे मन म एक विचार आया है

–विचार?–कर्णधार ने खुश होते हुए कहा।–यदि आपके दिमाग मे विचार आया है, तो चिंता की कोई बात नही रह जाती, हम बच गये।

–लेकिन यह कहाँ तक सभव है, कुछ कहा नही जा सकता,–डाक्टर ने हिचकिचाते हुए कहा।

–क्या सोचा है आपने?–हेटरास ने पूछा।

–हम लेंस बना सकते हैं।

–कैसे?–कर्णधार ने उत्सुकता दिखायी।

–बर्फ के टुकडे से।

–क्या आप सचमुच सोच रहे हैं कि

—और नही तो क्या! आखिर सूर्य किरणों को एक बिंदु पर जमा ही तो करना है, और इसके लिये बर्फ अच्छे से अच्छे शीशे की बराबरी कर सकता है। लेकिन मैं मीठे पानी से जमे बर्फ को अधिक पसद करूंगा, क्योंकि वह अधिक कड़ा व पारदर्शक होता है।

—वहां देखिये! यदि मैं गलत नही हूँ, तो हमे इसी की जरूरत है। बर्फ के उस टीले का रग देखिये, वह मीठे पानी से जमा है।

—आपका कहना सही है। कुल्हाडी ले और चले।

तीनो मिल कर उक्त टीले की ओर चल पडे। बर्फ सचमुच मीठे पानी का था।



चित्र 113 "डाक्टर ने सूखी घास पर सूर्य किरणों को सकेंद्रित किया।"

डाक्टर ने करीब एक फीट व्यास वाले बर्फ के टुकडे को काटने के लिये कहा। इसके बाद उसने कुल्हाडी से उसे समतल सा किया, फिर चाकू से काट-छाँट की, लेंस के आकार मे तराशा और हथेली से रगड रगड कर उसे चिकना कर लिया। लेंस तयार था और अच्छे से अच्छे काँच के लेंस से टक्कर ले सकता था। सूरज पर्याप्त तेजी से चमक रहा था। डाक्टर ने लेंस को किरणो के पथ पर रखा और सूखी घास पर उन्हें सकेंद्रित किया। घास कुछ ही क्षणों मे जल उठी।"



चित्र 114 बर्फ का लेंस बनाने के लिये कटोरी।

जूल वेन का किस्सा इतना काल्पनिक नहीं है बर्फ के लेंस से आग जलाने का प्रयोग पहली बार इंगलैंड मे किया गया था। 1763 ई मे वहां बर्फ के काफी बडे लेंस से एक पेड मे आग लगायी गयी थी। तब से यह प्रयोग कई बार सफलतापूर्वक दुहराया जा चुका है। यह बात दूसरी है कि बर्फ का पारदर्शक लेंस कुल्हाडी, चाकू और खाली हाथ (–48°C की भयानक ठंड मे !) जैसे औजारो से बनाना कठिन है। पर बर्फ का लेंस बनाने के लिये सरल विधि भी है अनुरूप कटोरी मे पानी डाल कर फ्रीज मे जमा लीजिये और फिर बरतन को हल्का सा गर्म करके तैयार लेंस निकाल लीजिये।

सूर्य किरणों से सहायता

ऐसे लेंस का उपयोग करते वक्त यह न भूलें कि खिडकी के शीशे से आने वाली धूप में आप कुछ भी जला नहीं पायेंगे। शीशा सूर्य किरणों की ऊर्जा को काफी बडी मात्रा में अवशोषित कर लेता है और बची-खुची ऊर्जा इतनी पर्याप्त नहीं होती कि किसी चीज को जलाने लायक गर्मी दे सके। बेहतर है खुले स्थान पर किसी ऐसे दिन प्रयोग करें, जब वातावरण का तापक्रम शून्य से नीचे हो।

एक और प्रयोग करें, जो सर्दियों मे सरलतापूर्वक सपन्न हो सकता है। धूप के दिन बाहर पडी बर्फ पर एक नाप के दो कपडे के टुकडे—एक काला और एक सफेद—रख दें। एक घंटे बाद आप देखेंगे कि काला कपडा बर्फ में कुछ नीचे धँस गया है, पर सफेद उसी ऊँचाई पर है। कारण ढूँढना कठिन नहीं है काले कपडे के नीचे बर्फ जल्द पिघलता है, क्योंकि काले धागे सूर्य किरणों के बडे भाग को सोख लेते हैं। सफ़ेद कपडा उल्टा उन्हें प्रकीर्णित कर देता है और इसीलिये काले कपडे की तुलना मे बहुत कम गर्म होता है।

यह शिक्षाप्रद प्रयोग पहली बार संयुक्त राज्य के स्वतन्त्रता सेनानी बेंजामीन फ्रैंकलिन ने किया था। उनका नाम तड़ित चालक के आविष्कार के लिये अमर है। अपने प्रयोग का वर्णन व इस प्रकार करते हैं "एक बार मैं दर्जी की दुकान से कपड़ा के कई टुकड़े ले आया। हर टुकड़े का रंग अलग अलग था काला, गाढ़ा नीला, हल्का नीला, हरा, गुलाबी, सफेद। और भी कई दूसरे रंग थे, उनके नाम भी अलग अलग थे। एक दिन, जब काफी अच्छी धूप उगी हुई थी, मैंने इन टुकड़ों को बाहर बर्फ पर बिछा दिया। काला कपड़ा कुछ ही घंटो बाद इतना गर्म हो गया कि बिल्कुल ही बर्फ मे धँस गया। सूर्य की किरणें अब उस तक नहीं पहुंच रही थीं। गाढ़ा नीला कपड़ा भी उतना ही धँसा हुआ था, जितना काला। हल्का नीला काफी कम धँसा था, अन्य रंग के कपड़े उतना ही कम धँसे थे, जितना हल्का उनका नाम था। सफेद टुकड़ा बिल्कुल नहीं धँसा था।"

"सिद्धांत बेकार होगा, यदि उससे कोई व्यावहारिक निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।—आगे वे कहते हैं।—क्या हम इस प्रयोग से यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि गर्म जलवायु वाले देश में, जहाँ सूरज काफी तेज चमकता है, सफेद की तुलना में काला कपड़ा अधिक गर्मी देता है, अतः कम फायदेमंद है? यदि शरीर की उन गतियों पर ध्यान दिया जाये, जो शरीर को खुद-ब-खुद गर्मी देती हैं, तो काला कपड़ा और भी बेकार है, वह शरीर को अतिरिक्त गर्मी देता है। क्या वहाँ स्त्री-पुरुषों की टोपियाँ सफेद नहीं होनी चाहिये, जो लू लगाने वाली गर्मी से बचाव करती हैं? क्या काले रंग से पुती दीवारें दिन भर में इतनी गर्मी अवशोषित नहीं कर सकती कि रात को भी कुछ हद तक गर्म बनी रहें और फल आदि को जमने से बचा सकें? क्या ध्यान से प्रेक्षण करने वाला व्यक्ति अनेक दूसरी छोटी बड़ी बातों से दूसरे प्रकार के लाभ नहीं प्राप्त कर सकता?

ये निष्कर्ष कैसे हैं और कहाँ तक उनका व्यावहारिक उपयोग सम्भव है—यह जर्मनी के जहाज "गौस्स" से पता चलता है, जो 1903 में दक्षिणी ध्रुव के अभियान पर निकला था। जहाज जमे बर्फ के बीच फंस गया था और उसे मुक्त करने के सारे तरीके नाकामयाब साबित हो रहे थे। बारूद से लेकर आरी तक का उपयोग किया जा चुका था, कुछेक सौ घन मीटर बर्फ तोड़ी जा चुकी थी, पर जहाज जहाँ का तहाँ फँसा रहा। अंत में सूर्य किरणों का उपयोग करने का निश्चय किया गया। राखे और

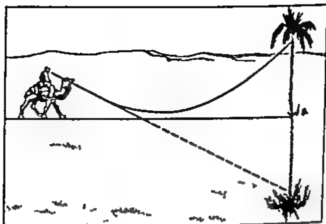
कोयले को बर्फ पर फैला कर एक पट्टी बनायी गयी, जो करीब 2 km लंबी और दसेक मीटर चौड़ी थी। वह जहाज को निकटतम सुरक्षित स्थान तक ले जाने वाली थी। ध्रुव पर उस समय गर्मी का मौसम था। दिन लंबे और साफ थे और सूर्य किरणें वह करने में सफल हो गयी, जो डिनामाइट भी नहीं कर सका था। पट्टी के नीचे बर्फ पिघल कर चूर हो गयी और जहाज उसके शिकंजे से निकल गया।

मरीचिकाओं के बारे में नयी-पुरानी बातें

साधारण मरीचिका का भौतिक कारण सबको पता होगा। मरुभूमि के तप्त बलुवाही-तल में दर्पणी गुण इसलिये आ जाते हैं, क्योंकि उसके निकट स्थित हवा की परत का घनत्व कम होता है। दूरस्थ वस्तु से नत प्रकाश-किरणें हवा की इस परत तक आने के बाद अपना पथ इस प्रकार वक्रित कर देती हैं कि आगे चल कर वे प्रेक्षक की आँखों तक पहुँच जाती हैं। लगता है जैसे वे बहुत बड़ा आपतन कोण बनाती हुई बालू से परावर्तित हो रही हों। इसीलिये प्रेक्षक को भ्रम होता है कि मरुभूमि में सब तरफ पानी ही पानी है, जो तटवर्ती वस्तुओं को अपनी सतह पर प्रतिबिंबित करता है (चित्र 115)।

अधिक सही होगा यह कहना कि हवा की तप्त परत किरणों को दर्पण की तरह नहीं, जलीय तल की तरह परावर्तित करती है, यदि जलीय तल को गहराई में से देखा जाये। यहाँ साधारण परावर्तन नहीं होता, यहाँ वह होता है, जिसे भौतिकविद "आंतरिक परावर्तन" कहते हैं। इसके लिये आवश्यक है कि प्रकाश की किरण हवा की परत को अत्यंत न्यून झुकाव पर बेधे। यह झुकाव इससे कहीं कम होना चाहिये, जितना सरलीकृत चित्र 115 में दिखाया गया है। यदि ऐसा नहीं होगा तो किरणों का आपतन "चरम कोण" को पार नहीं कर सकेगा और इसके बिना आंतरिक परावर्तन नहीं हो सकता।

चलते-चलते इस सिद्धांत के एक और पक्ष पर गौर कर लें। उपरोक्त व्याख्या के अनुसार अधिक घनत्व वाली परतों को ऊपर होनी चाहिये और कम घनत्व वाली को—नीचे। पर हम जानते हैं कि घनी व भारी हवा नीचे की ओर प्रवृत्त होती है और वहाँ से हल्की गैसों को ऊपर विस्थापित

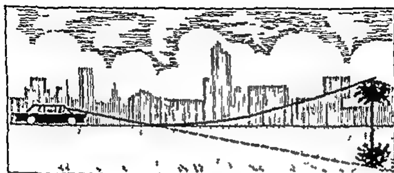


चित्र 115 मरुभूमि मे मरीचिका की उत्पत्ति। पाठ्य-पुस्तकों मे अक्सर इस चित्र को दिखाया जाता है। इसमे प्रकाश किरणो के पथ को अतिशयोक्ति के साथ झुका कर दिखाया गया है।

कर देती है। फिर मरीचिका के लिये आवश्यक स्थिति – कि घनी हवा की परते ऊपर रहे और विरल हवा की नीचे – कैसे प्राप्त हो सकती है?

बात इतनी सी है कि परतो की आवश्यक स्थिति निश्चल हवा मे नहीं, बल्कि निरंतर गतिमान हवा मे प्राप्त होती है। जमीन द्वारा तप्त हवा जमीन पर ही नही पडी रहती, वह निरंतर उठती है और उसका स्थान दूसरी कम गर्म हवा लेती रहती है। इस निरंतर विस्थापन के कारण तप्त रेत के ऊपर विरल हवा की एक परत सदा विद्यमान रहती है। यह सही है कि यह परत नयी-नयी हवा से बनती रहती है, पर किरणो के प्रसरण पर इससे कोई फर्क नही पडता।

जिस मरीचिका के बारे मे हम बात कर रहे हैं वह प्राचीन काल से ही ज्ञात है। आधुनिक मौसम विज्ञान मे इसे "निम्न" मरीचिका कहते हैं (उच्च मरीचिका तब उत्पन्न होती है जब प्रकाशकिरणें वातावरण के ऊपरी भागो मे स्थित विरल वायु-परता से परावर्तित होती हैं)। अधिकांश लोगो का विश्वास है कि मरीचिका का यह क्लासिकल रूप सिर्फ दक्षिणी देशो की मरुभूमियो मे ही दृष्टिगोचर होता है। पर यह गलत है। निम्न मरीचिका हमारे अक्षांशों पर भी दिखती है। हमारे यहाँ ये सवृत्तियाँ

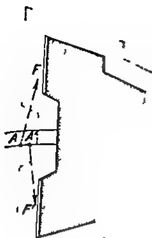


चित्र 116 कोलतार वाली सड़क पर मरीचिका।

गर्मियो मे विशेष कर कोलतार की सड़को पर दिखती हैं, जो काली होने के कारण धूप में बहुत अधिक गर्म हो जाती हैं। इस स्थिति में सड़क की रुखड़ी सतह दूर से ऐसी लगती है, मानो उस पर पानी फैला हो और उसमे दूरस्थ वस्तुए प्रतिबिम्बित हो रही हो। ऐसी मरीचिकाओ को बनाने वाला किरण-पथ चित्र 116 मे दिखाया गया है। यदि ध्यान से ढूँढा जाये, तो ऐसी सवृत्तिया कही अधिक बार अवलोकित हो सकती हैं।

एक दूसरे प्रकार की मरीचिका है—पार्श्विक मरीचिका, जिसकी विद्यमानता का शायद बहुतो को आभास भी नही है। यह गम उदग्र दीवार से परावर्तन है। इस प्रकार के दृश्य का वर्णन एक फासीसी लेखक ने किया है। किले के नजदीक आने पर उसने देखा कि कक्रीट की दीवार हठात दर्पण की तरह चमकदार हो गयी और उसमें परिवेश का कुछ भाग प्रतिबिबित होने लगा। ऐसा प्रतीत होता था, मानो किसी ने रुखड़ी गदी सतह को अचानक पालिश कर के चमका दिया हो। उनके दर्पणी गुण का रहस्य यही था कि दीवारे गर्म धूप मे काफी तप्त हो गयी थी। चित्र 117 में किले की दीवारो की स्थितिया (F व F′) तथा प्रेक्षण-स्थल (A व A′) दिखाये गये हैं। पता चला कि मरीचिका हर बार दिखती थी, जब दीवारे सूर्य किरणो से पर्याप्त गर्म हो जाती थी। इस सवृत्ति का फोटो भी खीचा जा चुका है।

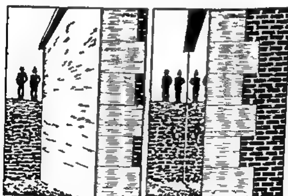
चित्र 118 मे किले की दीवार F दिखायी गयी है, जो पहले रुखड़ी व चमकहीन थी (बायें) और बाद मे दर्पण सी चमकदार हो गयी



चित्र 117 किले का आरेख, जिसमे मरीचिका दृष्टिगोचर होती है। बिंदु A से देखने पर दीवार F दर्पण की तरह दिखती है और बिंदु A' से दीवार F।

(दायें)। ये चित्र बिंदु A' से लिये गये हैं। बायें चित्र मे साधारण चमकहीन कंक्रीट की दीवार है, जिसमें पास खडे दो सैनिको की आकृतियां प्रतिबिंबित नही हो रही हैं। दायें वही दीवार है, जिसमे दर्पण का काफी कुछ गुण आ चुका है और उसमे निकटवर्ती सैनिक का सममित प्रतिबिंब दिख रहा है। स्पष्ट है कि यहां प्रतिबिंब दीवार की सतह द्वारा नही बन रहा है, वह दीवार के सहारे खडी गर्म हवा की परत द्वारा बन रहा है।

प्रचंड गर्मी के दिनो म बडे विशाल भवनो की सूर्य से तप्त दीवारो पर ध्यान देना चाहिये, हो सकता है कि मरीचिका दिख जाये। यदि ध्यानपूर्वक खोज व प्रेक्षण किया जाये, तो मरीचिका के बनने वाली स्थितियो की सख्या बढ सकती है।



चित्र 118 गदी सी खुरदुरी दीवार (बायें) हठात दर्पण की तरह पालिश की हुई चमकदार दिखने लगती है (दायें)।

"हरी किरण"

"आपने सागर पार क्षितिज पर अस्त होते हुए सूर्य का कभी अवलोकन किया है? कभी आपने उस क्षण तक रुक कर देखने की कोशिश की है, जब सूर्य के गोले की ऊपरी किनारी क्षितिज को स्पर्श करने लगती है और फिर लुप्त हो जाती है? शायद हाँ। पर क्या आपने इस घटना का अवलोकन किया है, जब देदीप्यमान प्रकाश-स्रोत अपनी अंतिम किरण छोड़ता है और उस समय आकाश बिल्कुल साफ व पारदर्शक होता है? शायद नहीं। कभी ऐसा अवसर मिले, तो छोड़ें नहीं आपकी आँखों पर लाल किरणों का प्रहार नहीं होगा, आप हरा रंग देखेंगे, दीव्य हरा रंग, जैसा दुनिया मे एक भी चित्रकार अपनी कूची से नहीं रच सकता, स्वयं प्रकृति भी इसे पुनर्जन्म नहीं दे सकती, न तो बहुभाम वनस्पति जगत में, न स्वच्छतम सागर जल के रंगों मे।"

जूल वेन के उपन्यास "हरी किरण' की नायिका किसी अंग्रेजी सामाचार-पत्र में ऐसा एक निबंध पढ कर अपनी आँखो से हरी किरण देखने को लालायित हो उठती है और इसी एकमात्र अभिलाषा से प्रेरित हो कर लंबी समुद्रयात्रा पर निकल पड़ती है। उपन्यासकार के अनुसार यह स्कॉटलंड-वाला इस प्राकृतिक दृश्य को ढूँढने मे असफल रही, पर इस दृश्य की वास्तविकता व विद्यमानता पर कोई शक नहीं किया जा सकता। हरी किरण कोई किस्से की बात नहीं है, पर उसके साथ अनेक किस्से जुड़े हैं। यह ऐसा दृश्य है जिसे देख कर कोई भी प्रकृति प्रेमी मोहित हुए बिना नहीं रह सकता। लेकिन उसे ढूढने और देख सकने के लिये काफी धीरज चाहिये।

हरी किरण क्यो प्रकट होती है।

कारण स्पष्ट हो जायेगा, यदि आप स्मरण करें कि काँच के प्रिज्म से देखने पर वस्तुएं कैसी नजर आती हैं। एक प्रयोग करें कागज का पन्ना दीवार पर लटका कर उसे प्रिज्म से देखें, प्रिज्म का चौड़ा पार्श्व (आधार) नीचे व क्षैतिज होना चाहिये। पहली बात आप देखेंगे कि कागज अपनी वास्तविक स्थिति से कुछ ऊपर उठ आया है और, दूसरे, ऊपर बैंगनी-नीली पट्टी दिखेगी और नीचे पीली-लाल। कागज का ऊपर उठना प्रकाश के अपवर्तन पर निर्भर करता है और वर्ण पट्टियों का बनना शीशे के प्रकीर्णक गुण, अर्थात भिन्न रंगो की किरणो को भिन्न प्रकार से

अपवर्तित करने के गुण पर निर्भर करता है। बैंगनी और नीला वर्ण सबसे अधिक अपवर्तित होते हैं, इसीलिये बैंगनी-नीली पट्टी ऊपर नजर आती है, सबसे कम अपवर्तन होता है लाल वर्ण का, अतः लाल पट्टी सबसे नीचे बनता है।

आगे कही गयी बात को अच्छी तरह से समझने के लिये वर्ण-पट्टियों की उत्पत्ति का कारण जानना आवश्यक है। प्रिज्म कागज के श्वेत वर्ण को सभी स्पेक्ट्रमी वर्णों में विघटित कर देता है। इसके कारण कागज के एक नहीं, अनेक चित्र प्राप्त होते हैं, और हर चित्र किसी एक वर्ण का होता है। पर ये चित्र वर्णों की अपवर्तनशीलता के अनुसार एक के ऊपर एक चढ़े होते हैं। एक पर एक चढ़े रंगीन चित्रों के सम्मिलित प्रभाव के कारण वे सफेद दिखते हैं। पर ऊपर और नीचे इन्द्रधनुषी पट्टी दिखती है, क्योंकि कागज के विभिन्न चित्र पूरी तरह से एक पर एक नहीं चढ़े होते। हर चित्र दूसरे से थोड़ा ऊपर या नीचे खिसका हुआ होता है और इसीलिये हर चित्र की ऊपरी व निचली किनारी दूसरे चित्रों के रंगों के प्रभाव से मुक्त होती है। यह प्रयोग विख्यात जर्मन कवि गेटे ने भी किया था, पर वे इसका अर्थ नहीं समझ सके। फलस्वरूप उन्होंने न्यूटन के वर्ण सिद्धान्त को गलत करार कर दिया और वे अपना एक अलग "वर्णसिद्धांत" बनाने में लग गये, जो लगभग पूरी तरह गलत-सलत धारणाओं पर आधारित था। आशा है कि हमारे पाठक महान कवि की भूल नहीं दुहरायेंगे और प्रिज्म से सभी वस्तुओं को पूरी तरह से दूसरे रंगों में रंगने की मांग नहीं करेंगे।

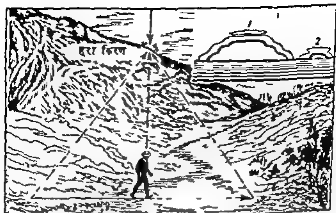
पृथ्वी का वातावरण हमारी आँखों के लिये एक विराट प्रिज्म ही है, जिसका आधार नीचे की ओर है। क्षितिज पर स्थित सूर्य को हम गैस के बने प्रिज्म से देखते हैं। सूर्य की ऊपरी किनारी पर नीली व हरी पट्टी होती है और निचली किनारी पर—लाल-पीली। लेकिन उदय व अस्त होने के क्षण, जब सूर्य लगभग पूरी तरह क्षितिज के नीचे छिपा होता है, ऊपरी किनारी पर नीली पट्टी दिख सकती है। वह द्विवर्णी होती है—नीचे से नीले व हरे वर्णों के मिलने के कारण आसमानी और ऊपर से सिर्फ नीली होती है। जब क्षितिज के निकट हवा बिल्कुल शुद्ध व पारदर्शक होती है, हम नीली पट्टी ('नीला रंग') देखते हैं। पर अक्सर नीला रंग वातावरण द्वारा प्रकीर्णित हो जाता है और सिर्फ हरी पट्टी बच जाती है। यही 'हरी किरण' का अवतरण कहलाता है। यदि हवा साफ व पारदर्शक नहीं हो,

तो हरे व नीले दोनो ही वर्णों के किरणो का प्रकीणन हो जाता है और कोई भी पट्टी नही दिखती, सूरज अरुणाभ गोले के रूप मे अस्त हो जाता है।

पुल्कोव्स्की के खगोलशास्त्री गे भा तीखोव ने "हरी किरण पर जो विशेष अन्वेषण किया है, उसके आधार पर हरी किरण दिखेगी या नही, इसके लक्षण बताये जा सकते हैं। "यदि अस्त होते समय सूय का रग लाल है और उसे नगी आँखो से सरलतापूर्वक देखा जा सकता है, तो विश्वास-पूर्वक कहा जा सकता है कि हरी किरण नही दिखेगी।" कारण स्पष्ट है सूय का लाल रग वातावरण द्वारा नीली व हरी किरणो, अर्थात् ऊपरी पट्टियो के तीव्र प्रकीणन का द्योतक है। 'इसके विपरीत,—खगोलशास्त्री लिखता है,—यदि सूरज का साधारण श्वेताभी पीला रग लगभग ज्यो का त्यो रह जाता है और अस्त होते वक्त भी उसकी रोशनी काफी तेज रहती है (अर्थात् वातावरण उसके प्रकाश को बहुत कम मात्रा म अवशोषित करता है—या ये), तो हरी किरण के दिखने की कही अधिक सभावना है। पर यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि क्षितिज रेखा स्पष्ट हो, जगल, मकान आदि के कारण कटी छँटी न हो। ऐसा उत्तम स्थान सिफ सागर-तल पर ही हो सकता है। यही कारण है कि नाविक लोग हरी किरण की सवृत्ति से अधिक परिचित होते हैं।"

उपरोक्त बातो से स्पष्ट है कि "हरी किरण" देखने के लिये सूय का अवलोकन उस समय करना चाहिये, जब वह उदय या अस्त हो रहा हो। दक्षिणी देशो म क्षितिज के पास आकाश अधिक साफ व पारदशक होता है। इसीलिये वहाँ "हरी किरणो के दिखने की सभावना अधिक होती है। पर हमारे यहाँ भी इसकी कम सभावना नही है। जो लोग सोचते हैं कि हमारे यहाँ ऐसी सवृत्तियो का दशन अत्यत विरल है, वे शायद जूल वेर्न के उपन्यास से काफी प्रभावित हुए हैं। यदि धैयपूर्वक प्रयत्न करेंगे, तो यह सुदर दृश्य कभी न कभी दिख ही जायेगा। कभी-कभी दूरबीन द्वारा हरी किरण दिख जाया करती है। एजेशिया के दो खगोलशास्त्री इस दृश्य का निम्न वणन देते हैं

' सूर्यास्त के ठीक एक मिनट पहले जब गोले का पर्याप्त बडा भाग दिखता रहता है, उसकी स्पष्ट पर लहराती आगे-पीछे फिसलती गोल सीमा-रेखा एक हरी पट्टी द्वारा घिरी होती है। यह पट्टी नगी आँखो से तबतक नही दिखती, जबतक कि सूय पूरी तरह छिप नही जाता। सूरज के पूणतया



चित्र 119 लबे समय तक "हरी किरणो" का प्रवलोकन, पहाडी के पार हरी किरणें पाच मिनट तक दिखायी देती रही। ऊपर दायें—टली स्कोप से दृष्टिगोचर "हरी किरणें"। सूय के गोले का कटूर प्रनियमित है। स्थिति 1 मे सूय की चमक से श्रासें चकाचौंध हो जाती हैं, इसीलिये नगी श्राखो से सूय का हरा कोर नही दिखता। स्थिति 2 मे सूर्य लगभग छिप जाता है श्रौर "हरी किरण" नगी श्राखो से दिखने लगती है।

छिपने पर ही वह दिखती है। यह कहना अधिक सही होगा कि वह सूरज के पूणतया छिपने के क्षण ही दिखती है। यदि बहुत शक्तिशाली दूरबीन से देखा जाये (जो दूरस्थ वस्तुश्रो को सौ गुनी बडी दिखा सकती हो), तो पूरी घटना को सविस्तार देखा जा सकता है हरी पट्टी 10 मिनट पहल स दिखनी शुरू हो जा सकती है। वह सूरज की ऊपरी सीमा से शुरू होती है। सूय मडल की निचली किनारी के पास लाल पट्टी होती है। हरी पट्टी की चौडाई प्रारभ मे काफी कम होती है (श्राँखो पर मात्र कुछक सेकेड का कोण बनाती है।), पर सूरज के डूबने के साथ-साथ बढती जाती है। कभी-कभी उसकी चौडाई श्राँख पर श्राधे मिनट तक का कोण बना लेती है।

हरी पट्टी की ऊपरी किनारी पर हरे रग के उभरे हुए भाग भी होते हैं, जो सूय के ग्रस्त होने के साथ-साथ स्वय भी नीचे फिसलते रहते हैं। कभी-कभी वे टूट कर पट्टी से ग्रलग हो जाते हैं ग्रौर कुछ सेकेडो तक स्वतत्र चमकते रहते हैं, फिर लुप्त हो जाते हैं (चित्र 119)।

पर बहुधा यह दृश्य एक-दो सेकेंड तक ही दिखता है। कुछ विशेष स्थितियों में यह अवधि काफी लंबी हो जा सकती है। एक बार तो "हरी किरण' पाँच मिनट तक दिखती रही थी! सूरज सुदूर पर्वत के पार डूब रहा था। तेज चलते पथिक को लग रहा था कि सूरज अपने हरे तेज में पहाड़ की ढलान पर फिसल रहा है (चित्र 119)।

सूर्योदय के समय भी, जब उसकी ऊपरी किनारी थोड़ी-थोड़ी दिखने लगती है, "हरी किरण' का दृश्य कम रोचक नहीं होता। यह इस धारणा का खंडन करता है कि हरी किरण मात्र प्रकाशिकीय भ्रम है, जो डूबते सूर्य की चमक से थकी आँखों को दिख जाती है।

सूर्य कोई एकमात्र नक्षत्र नहीं है, जो "हरी किरणें" भेजता है। अस्त होते शुक्र ग्रह से भी उत्पन्न "हरी किरणें" अवलोकित हुई हैं।

अध्याय 9

दृष्टि-शक्ति एक आंख की और दो आंखों की

जब फोटोग्राफी नहीं थी

फोटोग्राफी हमारे दैनिक जीवन मे बिल्कुल घुल मिल गया है। हम कल्पना भी नही कर सकते कि हमारे हाल के पूर्वज कसे इसके बिना काम चलाते थे। सौ साल पहले इगलैंड के सरकारी विभागों मे लोगो का चित्र कैसे लिया जाता था, इसका एक रोचक वर्णन डिकेंस के "पिकविक क्लब की डायरी" मे मिलता है। दृश्य कर्ज नही चुका सकने वाले लोगों के लिये बने जेल का है, जहाँ पिकविक को लाते हैं।

पिकविक से बैठने के लिये कहा जाता है, ताकि उसका चित्र उतारा जा सके।

'—मेरा चित्र उतारेंगे' —खुश हो कर मि पिकविक ने कहा।

—आपका रूप और रग, सर,—मोटे जेलर ने कहा।—आपको मालूम होना चाहिये कि हम लोग चित्र उतारने मे उस्ताद हैं। पलक मारने की देर नही लगेगी कि आपका चित्र तयार हो जायेगा। आराम से बठिये, सर, अपना ही घर समझिये।

आमत्रण मान कर मि पिकविक बैठ गये। समुएल (उनके नौकर) ने उनके कान मे फुसफुसा कर कहा कि यहाँ "चित्र उतारने" का मतलब कुछ और ही है

—इसका मतलब है, सर, कि जेलर कुछ समय तक गौर से आपकी शक्ल देखेंगे, ताकि मिलने आये लोगों मे आपकी पहचान हो सके।

'चित्र उतारने' का कार्य शुरू हो गया। एक तरफ मोटा जेलर बेशर्मी से आँखें फाड़े मि पिकविक को देख रहा था और दूसरी तरफ उसका साथी एक नये कैदी पर टकटकी लगाये बठा था। एक तीसरे सज्जन ठीक मि पिकविक की नाक के पास तैनात हो कर उनकी शक्ल के उतार चढ़ाव व दूसरी विशेषताओं का अध्ययन करने लगे।

अत में चित्र उतर गया और मि पितविम को कदखाने में बद कर दिया गया।"

यह यादाश्त मे चित्र उतारने की विधि थी। इससे और पहले लोग सिर्फ हुलिया याद रखते थे। पुश्किन के "बरिस गदुनोव" मे ग्रिगोरी ग्रतरेपेव की हुलिया सरकारी कागजातों में इस प्रकार बयान थी "कद का छोटा, छाती चौड़ी, एक हाथ दूसरे से कुछ छोटा, आँखें नीली, बाल-भूरे-लाल, गाल व ललाट पर मस्से"। आज के जमाने मे एक फोटोचित्र से ही काम चल जाता है।

बहुतों को नहीं भाता

फोटोग्राफी हमारे यहां पिछली शती की चौथी दशाब्दी मे आयी। उस समय इसे डागेरोटाइप कहते थे।[1] उसे कागज पर नही धातुई पत्तरा पर उतारा जाता था। इस प्रकाश-लेखन मे एक असुविधा थी—फोटो खिचाने वाले को दसियो मिनटों तक बैठ कर पोज देना पड़ता था।

"मेरे दादा,—लेनिनग्राद के एक भौतिकविद् ग्रो वेइनबैर्ग याद करते हैं,—सिर्फ एक फोटो प्राप्त करने के लिये, जिसकी दूसरी प्रति भी नहीं बन सकती थी, कमरे के सामने 40 मिनट तक बैठे रहे!"

फिर भी, बिना चित्रकार के चित्र प्राप्त करने का विचार इतना नया था कि लोग इसके आदी नही हो पा रहे थे। 1845 ई की एक रूसी पत्रिका मे इससे सबधित एक रोचक घटना छपी थी।

> "बहुत से लोग अभी भी विश्वास करना नही चाहते कि डागेरोटाइप स्वय तस्वीर उतारता है। एक बडे आदमी अपनी चित्र बनवाने आये। मालिक (अर्थात् फोटोग्राफर।—या ये) ने उन्हे बैठा दिया, लेंस ठीक किया, पीछे से तख्ता फिट कर दिया, घड़ी देखी और बाहर निकल गया। जबतक मालिक कमरे मे था, ये बडे आदमी बिना हिले-डुले अपनी जगह पर बैठे रहे, पर जसे ही वह कमरे से निकला, तस्वीर खिचाने वाले साहब ने बैठे रहने की कोई जरूरत नही समझी।

[1] इस विधि के आविष्कारक डागेर थे।

वे खडे हो गये, तबाकू सूघी, और कैमरे के चारो ओर घूम-घूम कर उसका निरीक्षण करने लगे, शीशे मे झाँकने के बाद बडबडाये—अजीब चीज है, और फिर कमरे मे चहलकदमी करने लगे।

मालिक जब लौटा, आश्चयचकित रह गया। उसने पूछा—आप क्या कर रहे हैं? मैंने जो आपसे कहा था कि बिना हिले डुले बैठे रहिये।

—बैठा तो था ही, पर आप चले गये, फिर मैं बैठ कर क्या करता?

—मेरे जाने के बाद ही तो बैठना था।

—पर यह तो बेकार का बैठना होता!"

पाठको को शायद लगता हो कि अब हम फोटोग्राफी से सबधित ऐसी गलतफहमियो से बहुत दूर हो चुके हैं। पर हमारे समय मे भी अधिकाश लोग फोटोग्राफी से इतना परिचित नही हैं और बहुत कम ही लोग ऐसे हैं, जिन्हे फोटो चित्र देखना आता हो। आप सोचते होगे कि इसमे आने न आने का क्या सवाल है हाथ मे तस्वीर ली और देख ली। पर काम इतना सीधा नही है। प्रकाश-लेखन से प्राप्त चित्र ऐसी चीज है, जो हमारे दैनिक जीवन मे बिल्कुल घुल मिल गयी है, फिर भी हम इसे अच्छी तरह नही जानते। अधिकतर फोटोग्राफर भी (शौकिये और पेशेवर) फोटो चित्रो को वैसे बिल्कुल नहीं देखते, जैसे देखना चाहिये। फोटोग्राफी की कला के जन्मे करीब सौ साल हो गये हैं, फिर भी बहुत से लोग नही जानते कि इसके चित्रो को कैसे देखना चाहिये।

फोटो चित्र देखने की कला

बनावट के अनुसार फोटो-कैमरा एक बहुत बडी आँख के समान है दूधिये शीशे पर बनने वाला चित्र लेस और वस्तु के बीच की दूरी पर निर्भर करता है। फोटो-कैमरा कागज पर उस परिप्रेक्षी दृश्य को जड देता है, जो हमारी आँख को (ध्यान दें—सिर्फ एक आँख को!) दिखता, यदि उसे लेस की जगह रख देते। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि हम चित्र से वैसी ही अनुभूति प्राप्त करना चाहते हैं, जैसी वास्तविकता से मिलती है, तो हमे चाहिये—

1) चित्र को सिर्फ एक आँख से देखना और
2) चित्र को आँख से आवश्यक दूरी पर रखना।



चित्र 120 चेहरे से कुछ दूरी पर उगली बायीं व दायीं आखो से कसी दिखती है।

समझना कठिन नही है कि दोनो आँखो से देखने पर हमे सिर्फ समतली चित्र मिलेगा, जिसमे कोई परिप्रेक्षी (व्योम) गहराई नही होगी। यह हमारी दृष्टि के गुणो का आवश्यक परिणाम है। जब हम कोई ठोस वस्तु को देखते हैं, हमारे दृष्टि-पटलों पर दो असमान चित्र बनते हैं बायी आँख को बिल्कुल वही नही दिखता, जो दायी आँख को दिखता है (चित्र 120)। चित्रो की यह असमानता ही वह मुख्य कारण है, जिसके चलते हमें वस्तुए ठोस लगती हैं, चौरस नही हमारी चेतना दोनो ही सवेदनाओ को एक व्योमधर्मी चित्र मे मिला लेती है (व्योमदर्शी की बनावट इसी पर आधारित है)। यदि हमारे सामने कोई चौरस समतली वस्तु (जसे दीवार) होती, तो दूसरी बात होती। दोनो आँखो को बिल्कुल समान सवेदनायें मिलती, इस समानता के कारण ही हमारी चेतना वस्तु को चौरस रूप में देखती है।

अब स्पष्ट हो गया कि दोनो आँखो से फोटो चित्र देखने पर हम कसी गलती करते हैं, दोनो आँखो से देख कर हम चेतना को दो समान सवेदना चित्र भेजते हैं, जिससे उसे विश्वास हो जाता है कि उसके सामने समतली दृश्य है, व्योम दृश्य नही। जो चित्र एक आँख के लिये बनाया गया है, उसे दोनों आँखो से देखने के कारण हमे वह नही मिलता, जो फोटोग्राफी दे सकती है। फोटोग्राफी द्वारा इतना अच्छा बनाया गया भ्रम हमारी छोटी सी गलती के कारण नष्ट हो जाता है।

फोटो किस दूरी से देखना चाहिये?

दूसरा नियम—कि चित्र को आँख से एक विशेष दूरी पर रखना चाहिये—भी इतना ही महत्वपूर्ण है। इसकी अवहेलना करने पर सही परिप्रेक्ष्य नही प्राप्त हो सकता।

कितनी दूरी से देखना चाहिये?

दूरी इतनी होनी चाहिये कि चित्र ग्रांख पर उतना ही बड़ा कोण बनाये, जितना बड़ा वस्तु लेंस पर बना रही थी (जब फोटो खींचा जा रहा था), या दूधिये शीशे पर का बिंब लेंस पर बना रहा था (चित्र 121)।

इससे ज्ञात होता है कि चित्र को ग्रांख से उस दूरी पर रखना चाहिये, जो लेंस से वस्तु की दूरी से उतनी ही गुनी कम है, जितनी गुनी वास्तविक वस्तु चित्र से बड़ी है। संक्षेप में, चित्र को ग्रांख से उस दूरी पर रखना चाहिये, जो लगभग लेंस की नाभिकीय दूरी के बराबर है।

यदि ग्राप यह ध्यान में रखें कि ग्रधिकतर शौकिया फोटोग्राफी के कमरों में नाभिकीय दूरी 12–15 cm है[1], तो समझ जायेंगे कि हम कभी भी चित्रों को सही दूरी से नहीं देखते साधारण दृष्टि वाले लोग 25 cm से कम की दूरी पर नहीं देख पाते। दीवार पर लटका हुग्रा फोटो चित्र ग्रौर भी चौरस लगता है क्योंकि वह ग्रौर भी दूर से देखा जाता है।



चित्र 121 फोटो कमरे में कोण 1 बराबर है कोण 2 के।

सिर्फ निकट दृष्टि वाले लोग, जो कम दूरी पर भी ग्रच्छी तरह से देख सकते हैं (ग्रौर बच्चे भी, जो काफी निकट से देखने की क्षमता रखते हैं), उस प्रभाव का रसास्वादन कर सकते हैं, जो एक साधारण फोटो चित्र दे सकता है। ग्रांख से 12–15 cm की दूरी पर फोटो चित्र रख कर वे चौरस दृश्य नहीं देखते, बल्कि व्योम दृश्य देखते हैं, जिसमें निकटवर्ती वस्तु दूरस्थ वस्तुग्रों से स्पष्टतः ग्रलग दिखती है जैसा कि व्योमदर्शी में।

ग्राशा है कि ग्रब पाठक इस बात से सहमत हो जायेंगे कि ग्रधिकांशतः हम सिर्फ ग्रपनी ग्रज्ञानता के कारण ही फोटो चित्रों का पूरा ग्रानंद नहीं ले पाते ग्रौर बेकार ही उन्हें निर्जीव की संज्ञा देते हैं। बात सिर्फ इतनी

---

[1] पुस्तक में उन्हीं कैमरों की बात चल रही है, जो इसकी रचना-काल में प्रचलित थे। — संपादक।

है कि हम फोटो को आँखो से आवश्यक दूरी पर नही रखते और एक आँख के लिये बने चित्र को दो आँखो से देखते हैं।

विशालक शीशे का एक विचित्र गुण

हम समझा चुके हैं कि निकट दृष्टि के लोग साधारण फोटो चित्रो को आराम से व्योम चित्रो के रूप मे देख सकते हैं। पर साधारण दृष्टि वाले लोगो को क्या करना चाहिये? वे चित्र को आँखो के बहुत निकट नही ला सकते, पर उनकी मदद विशालक शीशा कर सकता है। दुगुनी परिवधक शक्ति वाले विशालक की सहायता से वे बिना आखो पर जोर डाले निकट दृष्टि वाले आदमी की तरह देख सकते है कि कैसे फोटो चित्र मे उभार व गहराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन तथ्यो से स्पष्ट हो जाता है कि एक आँख से देखने और दोनो आँखो से देखने मे काफी बडा अतर है। एक आँख से देखने पर साधारण फोटो चित्र मे व्योम गुणो का दर्शन हो सकता है।

यह तथ्य सर्वविदित है, पर इसका कारण, जो हमारे लिये स्पष्ट हो चुका है, बहुत कम लोग जानते है।

"मनोरजक भौतिकी" के एक समीक्षक ने मुझे लिखा था

पुस्तक के अगले प्रकाशन मे निम्न प्रश्न पर ध्यान दें साधारण विशालक मे देखने पर फोटो चित्र उभारयुक्त क्यो लगता है? मेरा खयाल है कि व्योमदर्शी की जटिल व्याख्यायें आलोचना के सामने नही टिकती। व्योमदर्शी मे एक आँख से देखने की कोशिश करे सिद्धातो के बावजूद भी व्योम दृश्य नष्ट नही होता।'

पाठको को तो स्पष्ट हो गया होगा कि व्योमदर्शी का सिद्धात इस तथ्य से गलत सिद्ध नही होता।

खिलौनो की दूकानो मे बिकने वाले 'मनोरमा" इसी रोचक प्रभाव पर आधारित हैं। इन नन्हे उपकरणो मे लोगो के ग्रुप या किसी भूदृश्य का चित्र विशालक शीशे द्वारा एक आँख मे देखा जाता है। व्योम दृश्य की प्राप्ति के लिये यह काफी है। इस भ्रम को और प्रभावी बनाने के लिये चित्र में से निकट की वस्तुओ को काट कर आँख के कुछ निकट रख देते हैं। हमारी आँखें निकटवर्ती वस्तुओ के व्योम सबधो के प्रति बहुत सवेदनशील है, पर दूरस्थ वस्तुओ के प्रति नही।

फोटो चित्र का परिवधन

क्या ऐसा फोटो चित्र नही बनाया जा सकता कि उसे साधारण आँख भी बिना किसी विशालक के सही सही देख सके ? यह पूरी तरह से सभव है, इसके लिये कैमरो में अधिक नाभिक दूरिया वाले लेसा का उपयोग करना चाहिये। पहले कही गयी बातो के आधार पर यह समझा जा सकता है कि 25–30 cm लबी नाभिक दूरी वाले लेस से प्राप्त फोटोचित्र को एक आँख द्वारा साधारण दूरी से देखा जा सकता है, वह उभारयुक्त नजर आयेगा।

ऐसी तस्वीर भी बनायी जा सकती हैं, जिन्हे दोना आँखो व बडी दूरिया से देखा जा सकता है। हम कह चुके हैं कि जब दोनो आँखें किसी वस्तु की दो बिल्कुल समान तस्वीरे देती हैं, तो हमारी चेतना उन्हे मिला कर समतली चित्र मे परिणत कर देती है। पर दूरी बढने पर चेतना की यह प्रवृत्ति क्षीण होती जाती है। 70 cm लबी नाभिक दूरी वाले लेस से खीचे गये चित्र को व्यावहारिकत दोनो आँखो से देखा जा सकता है, परिप्रेक्ष्य खराब नही होगा।

पर अधिक नाभिक दूरी वाले कमरे लेसो का प्रयोग असुविधाजनक है, अत एक दूसरी विधि बतायी जा सकती है साधारण लेस वाले कमरे से तस्वीर खीच कर उसे डेवेलपर द्वारा परिवधित कर देते है। इससे वे दूरिया भी बढ जाती हैं, जिनसे चित्र को देखना चाहिये। यदि 15 cm नाभिक दूरी वाले लेस से खीचे गये फोटो को 4 या 5 गुना बडा कर लिया जाये, तो इष्ट प्रभाव प्राप्त करने के लिये यह काफी रहेगा इस चित्र को 60 75 cm की दूरी से दोना आँखो द्वारा देखा जा सकता है। चित्र मे थोडी अस्पष्टता रहेगी, पर यह व्योमानुभूति मे बाधक नही बनेगी। उभार व परिप्रेक्ष्य के दृष्टिकोण से चित्र बेशक फायदे मे रहेगा।

सिनेमा हॉल मे उत्तम स्थान

सिनेमा के प्रेमियो ने ध्यान दिया होगा कि कुछ चित्रो मे वस्तुओ की उभार व गहराई असाधारण रूप से स्पष्ट होती हैं। पृष्ठभूमि की तुलना मे आगे की आकृतिया इतनी उत्तल होती हैं कि आप भूल जाते हैं कि पर्दे पर देख रहे हैं या वास्तविकता मे।

चित्र के व्योम गुण फिल्म की कोटि पर ही निर्भर नहीं करते, जैसा कि अक्सर सोचा जाता है। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि आप हॉल मे कहा बैठे हैं। चल चित्र अत्यंत लघु नाभिक-दूरी वाले कैमरों द्वारा लिये जाते और पर्दे पर अत्यधिक परिवर्धित रूप मे दिखाये जाते हैं – करीब 100 गुना अधिक। अत उन्हें दोनो आँखो व बडी दूरियो (10 cm × 100 = 10 m) से देखा जा सकता है। चित्र के व्योम गुण अधिकतम स्पष्ट होते हैं, जब वह आँखो से इतना दूर होता है कि उसके द्वारा हमारी आँख पर बनाया गया कोण चित्र खीचते वक्त लेंस पर वस्तु द्वारा बनाये गये कोण के बराबर होता है। सिर्फ इस स्थिति मे चित्र वास्तविक परिप्रेक्ष्य का भान कराता है।

लेकिन किस स्थान से चित्र हमारी आँखो पर ऐसा कोण बना सकेगा? प्रथमत, स्थान ऐसा होना चाहिये कि आप वहाँ से सीधा चित्र के बीच मे देख सकें और, दूसरे, पर्दे से आपकी दूरी और चित्र की चौडाई का अनुपात लेंस की नाभिक दूरी व फिल्म रील की चौडाई के अनुपात के बराबर हो।

चल चित्रो के लिये उपयुक्त लेंसो की नाभिक दूरिया आवश्यकतानुसार 35 mm 50 mm 75 mm 100 mm तक की होती हैं। फिल्म की मानक चौडाई 24 mm होती है। 75 mm की नाभिक-दूरी के लिये (उदाहरणत) हमे अनुपात मिलता है

$$\frac{\text{इष्ट दूरी}}{\text{चित्र की चौडाई}} = \frac{\text{फिल्म की चौडाई}}{\text{नाभिक दूरी}} = \frac{75}{24} \approx 3$$

अत इस स्थिति मे पर्दे पर चित्र की चौडाई से लगभग तिगुनी दूरी पर बैठना चाहिये। यदि पर्दे पर चित्र की चौडाई 6 डेग है, तो ऐसे चित्रो को देखने के लिये उत्तम स्थान पर्दे से 18 कदम की दूरी पर होगा।

चल चित्रो को व्योम-गुण प्रदान करने के लिये आविष्कृत विधियो की जाँच करते वक्त उपरोक्त बातो को अवश्य ही ध्यान मे रखना चाहिये ऐसा भी हो सकता है कि चित्र के व्योमदर्शीय गुणो का कारण अभी अभी बतायी गयी बात हो, जब कि अविष्कारक इसे अपनी विधि की देन मानता हो।

पत्रिकाओं मे चित्र देखना

पुस्तको व पत्रिकाओ मे छपे फोटो चित्रो मे वे ही गुण होते हैं, जो मूल फोटो चित्रो मे विशेष दूरी से एक आँख द्वारा देखने पर वे भी व्योम-

धर्मी प्रतीत होते हैं। पर पत्रिकाओं के सारे चित्र एक ही लेंस द्वारा नहीं खींचे गये होते हैं, अतः आवश्यक दूरी टटोल-टटोल कर ज्ञात करना पड़ता है। इसके लिये एक आँख बंद कर के चित्र को हाथ में इस प्रकार रखें कि चित्र आँख से यथासंभव महत्तम दूरी पर हो और उसका मध्य आँख की सीध में हो। अब चित्र को धीरे-धीरे आँखों के समीप लायें और साथ-साथ उसे देखते भी रहें। आप आसानी से जान लेंगे कि किस दूरी पर चित्र के व्योमगुण अपनी पराकाष्ठा पर होते हैं।

बहुत से चित्र, जो साधारणतः अस्पष्ट तथा समतली लगते हैं, उपरोक्त विधि से देखने पर स्पष्ट व व्योमधर्मी दिखने लगते हैं। इस प्रकार से देखने पर पानी की चमक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है तथा इससे दूसरे व्योमदर्शीय प्रभाव भी नजर आने लगते हैं।

आश्चर्य होता है कि इतने साधारण तथ्यों को भी बहुत कम लोग जानते हैं, जबकि यहां जो कुछ कहा गया है, कोई पचासएक साल पहले ही सरल व लोकप्रिय पुस्तकों में लिखा जा चुका है। "बुद्धि की कसौटी के आधार' में उसके लेखक डी॰ कार्पेंटर फोटो चित्र देखने की विधि के बारे में लिखते हैं :

'ध्यान देने योग्य है कि फोटो चित्र देखने की इस विधि से (जो ऊपर बतायी जा चुकी है) वस्तु की सिर्फ व्योम विशेषतायें ही स्पष्ट नहीं हो जाती, दूसरी विशेषतायें भी सजीव हो उठती हैं और वास्तविकता का भ्रम बढ़ जाता है। फोटो चित्रों का सबसे कमजोर पक्ष है स्थिर पानी दिखा सकना। यदि पानी का चित्र दोनों आँखों से देखा जाये, तो उसकी सतह मोम से घिसी हुई लगती है। पर यदि उसे एक आँख से देखा जाये तो उसमें आश्चर्यजनक पारदर्शिता व गहराई नजर आने लगती है। यही बात अन्य परावर्तक सतहों के साथ भी है। दोनों आँखों से देखने पर आप भिन्न सतहों में फर्क नहीं ज्ञात कर सकते, पर एक आँख से देख कर आप काँसे और हाथी दाँत की सतहें पहचान सकते हैं। तात्पर्य यह है कि वस्तु किस द्रव्य की बनी है, इसका निर्णय आप चित्र के आधार पर तभी कर सकते हैं, जब उसे एक आँख से देखें, न कि दोनों आँखों से।'

एक और परिस्थिति पर ध्यान दें। यदि फोटो चित्रों को परिवर्धित करने पर वे सजीव हो उठते हैं, तो उन्हें छोटा करने पर उनकी निर्जीवता बढ़ जाती है। यह बात दूसरी है कि फोटो चित्र छोटा बनाने पर वह अधिक

स्पष्ट होता है। पर साथ ही वह अधिक समतली दिखने लगता है और उसमें वस्तुओं के व्योम गुण नजर नहीं आते। इसका कारण उपरोक्त बातों से स्पष्ट है फोटोचित्रों को छोटा करने से उसमें "परिप्रेक्षी दूरियां" (वस्तुओं के व्योम गुणों को दर्शाने वाली दूरियां), जो वैसे ही छोटी हैं, और भी छोटी हो जाती हैं।

चित्र देखना

जो कुछ फोटो चित्रों के बारे में कहा गया है, वह कुछ हद तक चित्रकार के हाथ से बनाये चित्रों के लिये भी सही है उन्हें भी एक विशेष दूरी से देखना चाहिये, तभी आप परिप्रेक्ष्य (चित्र में वस्तु के व्योम गुणों की अभिव्यक्ति, अर्थात् वस्तु की लंबाई व चौड़ाई, उसकी गहराई और उभार, आगे व पीछे के बिंदुओं में अंतर, आदि) को अनुभव कर सकेंगे। सिर्फ इसी स्थिति में चित्र आपको सपाट नहीं लगेगा, उसमें आप वास्तविक दृश्य का दर्शन कर सकेंगे। इन चित्रों को भी एक आंख से देखना अधिक लाभप्रद रहेगा, विशेषकर यदि उनका आकार काफी बड़ा नहीं है।

"बहुत पहले से ही ज्ञात है,—उसी पुस्तक में इस प्रश्न के बारे में अंग्रेज मनोवैज्ञानिक कारपेंटर लिखते हैं,—कि यदि चित्र में परिप्रेक्षी गुण, वस्तुओं के प्रकाशमान व छायेदार भागों और उनके स्थान क्रम आदि वास्तविकता के अनुरूप है, तो उसे भी एक आंख से देखना चाहिये, दोनों से नहीं। एक आंख से देखने पर चित्र और भी सजीव हो उठता है। सजीवता का प्रभाव और बढ़ाया जा सकता है, यदि हम उसे किसी नलिका द्वारा देखें, जिससे चित्र के सिवा और कुछ नहीं दिखे। इस तथ्य को पहले बिल्कुल गलत तरीके से समझाया जाता था 'हम दो आंखों की बजाय एक आंख से अधिक अच्छा देखते हैं,—बेकन का कहना है,—क्योंकि इसमें जीवन शक्ति एक स्थान पर जमा हो जाती है और अधिक प्रभावशाली हो उठती है'।

पर वास्तविकता में यहां बात कुछ और ही है। जब हम साधारण दूरी से चित्र को दोनों आंखों से देखते हैं, तो उसमें अंकित दृश्य को सपाट मानने पर विवश हो जाते हैं। पर जब हम उसे एक आंख से देखते हैं, हमारी बुद्धि परिप्रेक्ष्य, प्रकाश व छाया आदि के भ्रमों में अधिक आसानी

से विश्वास कर लेती है। अत जब हम काफी देर तक गौर से चित्र देखते हैं, वह जल्द ही मूर्त हो उठता है, उसमे वस्तुओ के वास्तविक व्यौम गुण प्रकट हो जाते हैं। भ्रम का प्रभावशाली होना इस बात पर निर्भर करता है कि चित्रकार ने कितनी सच्चाई से वास्तविकता को समतल कागज पर प्रक्षिप्त किया है। एक आँख से देखने पर यह लाभ होता है कि हमारी बुद्धि चित्र की मनचाही व्याख्या करने को स्वतत्र होती है, चित्र मे अकित दृश्य को सपाट (समतली) मानने के लिये उसे कोई विवश नही करता।"

बडे-बडे चित्रो की फोटोग्राफी से प्राप्त छोटे चित्रो म वस्तुओ के व्यौम गुण और अधिक उभर आते हैं। यह समझने मे कठिनाई नही होगी, यदि आप स्मरण करेंगे कि चित्रो को छोटा करने पर अक्सर वह दूरी भी कम हो जाती है, जिस पर से उसे देखना चाहिये, और इसीलिये चित्र कम दूरी से ही व्यौम दृश्य का भ्रम उत्पन्न कर सकती है।

व्योमदर्शी क्या है?

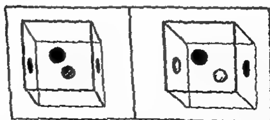
समतली (सपाट) चित्रो के बाद अब ठोस वस्तुओ पर आयें और निम्न प्रश्न पर गौर करे वस्तुए आखिर ठोस (या त्रिविम) क्या लगती हैं, सपाट क्यो नही दिखती? आँख की रेटीना पर बनने वाले चित्र तो सपाट ही होते हैं। फिर वस्तुए हमे समतली क्यो नही लगती, त्रिविम (लबाई, चौडाई और मुटाई युक्त) क्यो नजर आती हैं?

इसके कई कारण हैं। प्रथमत, वस्तु के विभिन्न भागो की अलग-अलग प्रकाशमानता के आधार पर हम वस्तु के वास्तविक रूप का अदाजा लगा सकते हैं। दूसरे, इसमे उस तनाव की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है, जो हम वस्तु के भिन्न दूरियो पर स्थित भागो को समान स्पष्टता से देखने की कोशिश करते वक्त अनुभव करते हैं सपाट चित्र के सभी भाग हमारी आँखो से समान दूरी पर स्थित होते हैं, पर ठोस पिंड के भिन्न भाग हमारी आँखो से भिन्न दूरियो पर होते हैं और उन्हें देखने के लिये आँख को अलग अलग दूरियों पर फोकस करना होता है। पर सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि हमारी दोनो आँखें एक ही वस्तु के अलग अलग चित्र प्राप्त करती हैं। बायीं आँख व दायी आँख किसी भी वस्तु का बिल्कुल समान चित्र नहीं प्राप्त करतीं। यह आप आसानी से मान लेगे, यदि किसी समीपस्थ

वस्तु को बारी-बारी से एक एक आँख बंद कर के देखेंगे। हर आँख वस्तु का कुछ भिन्न चित्र देती है और मस्तिष्क इसी भिन्नता की व्याख्या के आधार पर त्रिविम वस्तु की संवेदना प्राप्त करता है (चित्र 120 व 122)।

अब आप कल्पना करें कि किसी एक वस्तु के दो चित्र हैं एक चित्र में वस्तु इस तरह से अंकित है, जैसे बायीं आँख उसे देखती है और दूसरे चित्र में—जैसे दायीं आँख। यदि इन चित्रों का अवलोकन इस प्रकार से किया जाये कि हर आँख सिर्फ "अपना" चित्र ही देख सके, तो दो समतली चित्रों की जगह हमें एक उत्तल व्योम-गुणी वस्तु दिखेगी, वस्तु अधिक व्योम प्रतीत होगी, बनिस्बत की यदि हम एक आँख से वास्तविक ठोस पिंड ही देखें। इस तरह के युग्म चित्र विशेष उपकरण द्वारा देखे जाते हैं, जिन्हें व्योमदर्शी कहा जाता है। पुराने व्योमदर्शियों में चित्रों का संगम दर्पण की मदद से कराया जाता था पर आधुनिक व्योमदर्शियों में हम शीशे के उत्तल प्रिज्मों की सहायता लेते हैं वे किरणों के पथों को इस प्रकार से विचलित करते हैं कि उन्हें मन ही मन पीछे बढ़ाने पर दोनों चित्र एक दूसरे के ऊपर आ जाते हैं। प्रिज्मों की उत्तलता के कारण चित्र कुछ परिवर्धित भी हो जाते हैं। जैसा कि आप देखते हैं, व्योमदर्शी का सिद्धांत अत्यंत सरल है। पर सरल साधना से भी कितना शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है।

अधिकांश पाठकों को निस्संदेह विभिन्न दृश्यों की व्योमदर्शीय फोटोग्राफी देखने का अवसर मिला होगा। कइयों ने व्योमदर्शी में आकृतियों का आरेख भी देखा होगा, जो व्योम ज्यामिति का पठन पाठन सरल करने के लिये बनाये जाते हैं। आगे हम व्योमदर्शी के इन प्रचलित उपयोगों के बारे में बातें नहीं करेंगे। ऐसे उपयोगों के बारे में बताना अधिक लाभदायक होगा, जिसे बहुत कम लोग जानते हैं।



चित्र 122 धब्बेदार काँच का घन, बायीं व दायीं आँखों से देखने पर।

व्योमदर्शीय चित्रों को आप बिना किसी विशेष उपकरण के भी देख सकते हैं। इसके लिये सिर्फ आंखों को अनुकूल दिशाओं में निर्दिष्ट करने का अभ्यास करना होगा। परिणाम वही मिलेगा, जो व्योमदर्शी से देखने पर मिलता है, सिर्फ चित्र का आकार बड़ा नहीं दिखेगा। व्योमदर्शी के आविष्कारक व्हीटस्टोन ने शुरू शुरू इसी विधि का उपयोग किया था।

यहां कुछ व्योमदर्शीय चित्र दिये जा रहे हैं, जो जटिलता के क्रम में हैं। आपको सलाह है कि इन्हें बिना व्योमदर्शी के देखने का प्रयत्न करें। सफलता कुछ अभ्यास के बाद ही मिलेगी।[1]

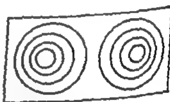


चित्र 123 धब्बों के मध्य में कुछ देर तक गौर से देखते रहें—दोनों धब्बे एक में मिल जायेंगे।

शुरू करें चित्र 123 से। इसमें काले बिन्दुओं का एक जोड़ा है। आप उन्हें आंखों के सामने रखें और कुछ



चित्र 124 इनके साथ भी यही करें। दोनों के एक में मिलने के बाद अगला अभ्यास आरंभ करें।

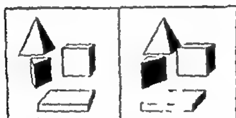


चित्र 125 जब ये आकृतियां एक में मिल जायेंगी, आपको लगेगा, जैसे आप एक लंबी नली के भीतरी भाग को देख रहे हैं।

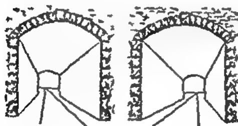
---

[1] यहां एक बात बता दूं: व्योमदर्शी में भी व्योम का दर्शन सबके वश की बात नहीं है। कुछ लोग (जैसे तिर्यक दृष्टि वाले या जो एक आंख से काम करने के आदी हैं) यह काम बिल्कुल नहीं कर सकते। कुछ लोगों को नवें अभ्यास के बाद ही इसमें सफलता मिलती है। तीसरे प्रकार के लोग, जो अधिकांशतः युवा-वर्ग से होते हैं, करीब पंद्रह मिनट के अभ्यास से ही सीख लेते हैं।

सेकंड तक उनके बीच से दृष्टि न हटायें। साथ ही ऐसा प्रयत्न करे, मानो आप इन चित्रों के पीछे दूर रखी किसी वस्तु को देखना चाहते हैं। जल्द ही आप देखेंगे कि बिंदु दो नहीं, चार हैं। हर बिंदु के दो हो जाते हैं। इसके बाद किनारे वाले बिंदु तैरते हुए दूर भाग जायेंगे और भीतर के दो बिंदु मिल कर एक हो जायेंगे। यदि आप यही क्रिया क्रमश चित्र 124 व 125 के साथ दुहरायेंगे, तो अंतिम स्थिति मे चित्रों के सगम के परिणामस्वरूप आपको एक दूर जाती लंबी नली का भीतरी भाग दिखेगा।



चित्र 126 इन दो आकृतियों के एक में मिलने पर चारों ज्यामितीय पिंड हवा में तैरते से लगेंगे।



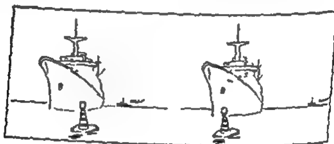
चित्र 127 लंबा, दूर तक जाता हुआ गलियारा।



चित्र 128 काच के बरतन मे मछली।

इसमे सफलता मिलने के बाद आप चित्र 126 के साथ अभ्यास शुरू कर दे सकते हैं। यहां सागर के क्षण हवा में लटकी ठोस ज्यामितीय आकृतियों को देखेंगे। चित्र 127 आपको एक लंबा गलियारा दिखायेगा। चित्र 128 पारदर्शक शीशे के डिब्बे में तैरती मछली से आपका मन मोह लेगा। और अंत में, चित्र 129 आपके समक्ष एक पूरा समुद्री दृश्य प्रस्तुत करेगा।

ऐसे युग्म चित्रों को बिना किसी उपकरण के देखना अपेक्षाकृत सरलता से सीखा जा सकता है। मेरे कई मित्र कुछ बार ही कोशिश कर के इस कला में निपुण हो गये। निकट व दूर दृष्टि वाले लोगों को इन्हें देखने के लिये चश्मा उतारने की भी जरूरत नहीं है। देखना सीखते वक्त चित्र को आंख के सामने आगे-पीछे कर के आवश्यक दूरी ढूंढने का भी प्रयत्न करना चाहिये। अभ्यास के वक्त प्रकाश अच्छा होना चाहिये, इससे जल्द सफलता मिलेगी।



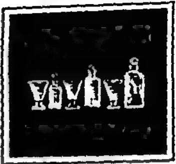
चित्र 129 सागर का व्योमदर्शी दृश्य।

बिना व्योमदर्शी के इन चित्रों को देखने का अच्छा अभ्यास कर लेने के बाद आप कोई भी व्योमदर्शीय फोटोग्राफी नंगी आंखों से देख सकेंगे, आपको विशेष उपकरण की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। आगे (पृ. 205 व 212 पर) जो व्योमदर्शीय फोटो चित्र दिये गये हैं उन्हें भी खाली आंख देखने का प्रयत्न कर सकते हैं। पर इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि आंखें थकें नहीं।

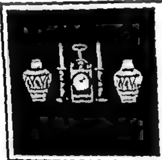
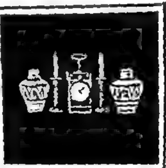
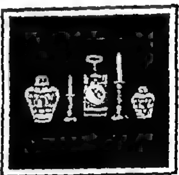
यदि आपको उपरोक्त अभ्यास में कठिनाई हो, तो किसी दूर-दृष्टि वाले के चश्मे से काम चला सकते हैं। गत्ते पर दो छेद कर के उनपर शीशों को चिपका दें। चित्रों के बीच कागज या गत्ते की दीवार बना दें। अब शीशों से देखें—यह अच्छे व्योमदर्शी का काम करेगा।




नंगी आँखों से देखने पर



त्रिविमदर्शी में

चित्र 130

चित्र 130 म बायी ग्रोर म दो फोटो चित्रा म दवा पीने के तीन गिलास हैं, जो एक ही नाप के लगते हैं। ग्राप कितना भी गौर से क्यों न देखें, गिलासो के ग्राकार म कोई ग्रतर नही मिलेगा। लेकिन ग्रतर है ग्रौर काफी बडा ग्रतर है। गिलास समान लगते हैं, क्योंकि वे ग्रांखो या कैमरा से समान दूरी पर नही हैं बडी बोतल दो छोटी बोतलो से कुछ पीछे रखी है। पर कौन सी बोतल पीछे है? चित्रो के साधारण ग्रवलोकन से ग्राप यह निर्धारित नही कर सकते।

पर यदि ग्राप व्योमदर्शी का सहारा ले या उपरोक्त व्योमदशक दृष्टि से देखें, तो प्रश्न का उत्तर देना सरल हो जाता है। ग्राप देखेंगे कि बायीं ग्रोर का गिलास बीच वाले से पीछे है ग्रौर बीच वाला–दायें गिलास से। गिलासा के ग्राकारा का वास्तविक ग्रनुपात दायें चित्र म दिखाया गया है।

चित्र 130 म ही (नीचे) एक इससे भी ग्राश्चयजनक स्थिति दिखायी गयी है। ग्राप सुराहिया, घडी व मोमबत्तियो को देख रहे हैं। दोना सुराहिया व दोना मोमबत्तिया समान ग्राकारो की दिखती हैं, पर उनके वास्तविक ग्राकार काफी भिन्न है, बायी सुराही दाया से दुगुनी ऊँची है ग्रौर बायी मोमबत्ती दाया की ग्रपेक्षा काफी नीची है। व्योमदर्शीय ग्रवलोकन से इस भ्रम का कारण फौरन पता चल जाता है वस्तुए एक पक्ति मे नही हैं। बडी वस्तुए कुछ दूर रखी हैं ग्रौर छोटी–कुछ निकट।

'दो ग्रांखो की दृष्टि" व्योम का बोध कराती है ग्रौर इसीलिये एक ग्रांख की दृष्टि' से ग्रधिक लाभप्रद है।

जालसाजी पकडने का ग्रासान तरीका

मान ले कि दो बिल्कुल समान चित्र हैं, जसे तुल्य ग्राकार क दो काले वग। व्योमदर्शी मे देखने पर दोनो म कोई ग्रतर नही दिखेगा। यदि दोनो वर्गों के कद्र म एक एक श्वेत बिदु हो, तो व्योमदर्शी मे देखने पर वे वर्गों के भीतर ही दृष्टिगोचर होगे। पर यदि बिदु केंद्र से थोडा भी इधर-उधर होगा, तो व्योमदर्शी मे वह वग स थोडा ग्रागे या पीछे नजर ग्रायेगा।

व्योमदर्शी की सहायता से चित्रों में व्योम गुण देखने के लिये उनमें थोड़ा अंतर होना आवश्यक है, यह अंतर क्षुद्र से क्षुद्र भी हो, तो काफी रहेगा।

यह दस्तावेजों व कागजी मुद्रा इकाइयों की जालसाजी पकड़ने का सरलतम तरीका है। संदेहाधीन नोट और असली नोट को साथ रख कर व्योमदर्शी में देखने पर हल्का से हल्का अंतर भी आसानी से दिखने लगेगा। यह अंतर किसी अक्षर के लिखने के तरीके में हो सकता है, या किसी छोटी सी लकीर के खीचने में। पर इसी के कारण यह अक्षर या रेखा बाकी चीजों की पृष्ठभूमि से कुछ आगे या पीछे नजर आने लगेगी।[1]

बल्य की दृष्टि में

यदि वस्तु हमसे 450 मीटर से अधिक की दूरी पर है, तो हमारी दोनों आँखों के बीच की दूरी उनसे प्राप्त संवेदनाओं में अंतर उत्पन्न कर सकने में असमर्थ हो जाती है। इसीलिये दूरस्थ वस्तु या दृश्य सपाट दिखते हैं। इसी कारण से आकाश के सभी नक्षत्र एक समतल पर नजर आते हैं, यद्यपि चंद्रमा अन्य ग्रहों से नजदीक है और ग्रहों की तुलना में तारों की दूरियां कल्पनातीत हैं।

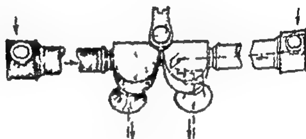
450 मीटर से अधिक दूरी पर स्थित वस्तु का व्योम गुण देख सकने में हम असमर्थ होते हैं। इतनी दूरी से वस्तु दायीं व बायीं आँखों को एक जैसी दिखती है, क्योंकि आँखों के बीच की दूरी 450 m की तुलना में नगण्य है। यदि इतनी दूर स्थित वस्तु की व्योमदर्शीय फोटोग्राफी भी की जाये, तो वह व्योम धर्मी नहीं लगेगी।

लेकिन एक काम किया जा सकता है। वस्तु के फोटो चित्र दो ऐसे बिंदुओं से लिये जा सकते हैं, जिनके बीच की दूरी हमारी आँखों के बीच

---

[1] यह विचार *XIX*-वीं शती में डोव ने प्रस्तुत किया था, पर आज की कागजी मुद्रा इकाइयों के लिये यह विधि सफलतापूर्वक प्रयुक्त नहीं हो सकती। इन्हें कुछ इस तरह से छापा जाता है कि दो असली नोट भी व्योमदर्शी से देखने पर व्योम चित्र दे सकते हैं। पर डोव की विधि से दो किताबों का मुद्रण तीसरे से अलग किया जा सकता है, यदि तीसरे को छापते वक्त उसके अक्षर बदले गये थे।

की दूरी से काफी अधिक हो। ऐसे चित्रों को व्योमदर्शी में देखने पर ऐसा लगेगा, जैसे आपकी आँखों के बीच की दूरी काफी बढ़ गयी हो। भूभागों का व्योमदर्शीय चित्र इसी विधि से लिया जाता है। अक्सर इन्हें उत्तल पार्श्वों वाले विशालक प्रिज्मों की सहायता से देखा जाता है, क्योंकि ऐसे चित्र हमें दृश्य को लगभग वास्तविक आकार में दिखाते हैं। प्रभाव अनूठा होता है।



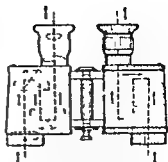
चित्र 131 व्योम दूरदर्शी

पाठक शायद समझ गये होंगे कि दो दूरबीनों का इस प्रकार जोड़ा जा सकता है कि उनसे किसी भूभाग के व्योम गुणों का बिना फोटोचित्रों के ही सीधा अवलोकन किया जा सके। ऐसे उपकरण को व्योमदूरबीन कहते हैं। इसमें दोनों नलियों की दूरी आँखों के बीच की दूरी से अधिक होती है और दोनों बिंब परावर्तक प्रिज्मों की सहायता से आँखों तक पहुँचाये जाते हैं (चित्र 131)। ये उपकरण इतने अजीब हैं कि उनमें देखने से प्राप्त अनुभव का वर्णन करना मुश्किल हो जाता है। इसमें प्रकृति का एक दूसरा ही रूप देखने को मिलता है। सुदूर स्थित पर्वत, चट्टानें, घर आदि सभी कुछ व्योम व उत्तल लगता है, कुछ भी सपाट समतल पर्दे सा नहीं दिखता। अक्सर दूरस्थ जहाज अचल लगता है, पर इस उपकरण में आप उसकी गति का निरीक्षण कर सकते हैं। यदि पृथ्वी पर सचमुच में दैत्य होते, तो उन्हें ऐसा ही कुछ दिखता।

यदि दुनाली दूरबीन दस गुना बड़े बिंब दे सकता है और उसमें नलियों के बीच की दूरी आँखों के बीच की दूरी से छे गुनी अधिक है (अर्थात् $6.5 \times 6 = 39$ cm है), तो उसमें अनुभूत दृश्य की व्योम अभिता $6 \times 10 = 60$ गुनी अधिक प्रतीत होगी, बनिस्बत कि नंगी आँखों से प्राप्त

दृश्य से। इसका मतलब है कि 25 km की दूरी पर स्थित वस्तु भी व्योमधर्मी प्रतीत होगी।

भू-सर्वेक्षको, नाविको, तोपचियो, यात्रियो आदि के लिये ऐसे दूरबीन काफी महत्त्व रखते हैं, विशेषकर यदि उनमें दूरियां नापने के लिये विशेष प्रयुक्ति लगी हो।





चित्र 132 प्रिज्मयुक्त दूरबीन

जाइस की प्रिज्मयुक्त दुनाली दूरबीन से भी यही प्रभाव प्राप्त होता है, क्योकि इसमे नलिया के बीच की दूरी आंखो के बीच की दूरी से कुछ अधिक है (चित्र 132)। नाटक वगैरह देखने के लिये प्रयुक्त दूरबीनो में नलियों के बीच की दूरी कम होती है (ताकि पर्दे दूर-दूर खडी दीवारो की तरह न दिखने लगें)।

व्योमदर्शी में ब्रह्मांड

यदि व्योमदूरबीन से चांद या कोई अन्य आकाशीय पिंड देखेंगे, तो उसका व्योम गुण नजर नही आयेगा। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है, क्योकि अतरिक्षी दूरियां इन दूरबीनो के लिये विराट हैं। पृथ्वी से किसी ग्रह की दूरी के सामने नलियो के बीच की 30–50 cm की दूरी का क्या महत्त्व हो सकता है! यदि ऐसा उपकरण बनाया जा सकता, जिसमे नलियो के बीच की दूरी दसियों या सैकडो किलोमीटर लबी होती, तब भी ग्रहो के अवलोकन से कोई फायदा नही होता। वे हमसे करोडो किलोमीटर की दूरी पर हैं।

यहा पुन व्योमदर्शीय फोटोचित्रो का सहारा लिया जा सकता है। माना कि हम पिछली शाम को किसी ग्रह का फोटो खींच चुके हैं और आज शाम को उसी ग्रह का एक और चित्र लेते हैं। चित्र पृथ्वी के एक ही स्थल से लिये गये हैं। पर पृथ्वी एक रात दिन की अवधि मे लाखो किलोमीटर तय कर चुकती है, अत दोनो चित्र सौर-मडल के भिन्न बिंदुओ से लिये गये

हैं। स्पष्ट है कि दोनो चित्र समान नही होगें और यदि उन्हें पास रखकर व्योमदर्शी से देखेंगे, तो चित्र सपाट नही व्योम-गुणी नजर अयेगा।

इस प्रकार, पृथ्वी की कक्षीय गति का उपयोग करते हुए दो बहुत बडी दूरियो पर स्थित बिंदुओ से आकाश का चित्र लिया जा सकता है। आप किसी ऐसे दैत्य की कल्पना करे, जिसकी आँखो के बीच की दूरी कई करोड किलोमीटर है। आधुनिक खगोलशास्त्री ऐसा ही दृश्य देखते हैं, जो इस दत्य को दिखेगा।

व्योमदर्शी का आजकल नये ग्रहो (अधिक सही होगा कहना ग्रह-खडो या आस्टेरायडा) की खोज मे उपयोग होता है। मगल और वृहस्पति के कक्षा के बीच ये बहुत बडी सख्या मे विद्यमान हैं। अबतक इनकी खोज सिर्फ सयोग की बात मानी जाती थी। अब सिर्फ आकाश के इस क्षेत्र के दो फोटो चित्रा की व्योमदर्शीय तुलना करना पर्याप्त है। चित्र सिर्फ अलग अलग समय मे लिये जाने चाहिये। इन चित्रा मे यदि कोई ग्रह-खड होगा, तो वह बिल्कुल अलग दिखेगा। चित्र की पृष्ठभूमि से वह आगे या पीछे प्रतीत होगा।

व्योमदर्शी से भिन्न बिदुआ की स्थितियो मे अतर का ही पता नही चलता, बल्कि उनकी चमक मे जो अतर है, वह भी दिख जाता है। खगोलशास्त्री इस विधि का सफलतापूर्वक उपयोग तथाकथित प्रत्यावर्ती तारा को ढूढने मे भी करते हैं, जिनकी चमक एक नियत अवधि मे बदल जाया करती है। यदि आकाश के दो चित्रो मे किसी तारे की चमक भिन्न है, तो व्योमदर्शी से फौरन इसकी सूचना मिल जायेगी कि इस तारे ने अपनी चमक बदली है।

त्रिनेत्र की दृष्टि में

यह मत सोचिये कि त्रिनेत्र शब्द यहा गलती से आ गया है। हम सचमुच मे तीन आँखो से देखने की बात करने जा रहे हैं।

तीन आँखो से देखना ? क्या हमे तीन आँखें प्राप्त हो सकती हैं ?

विश्वास करे, हम ऐसी ही दृष्टि के बारे मे बात करने जा रहे हैं। विज्ञान आदमी को तीसरी आँख नही दे सकता, पर यह दिखा सकता है कि तीन आँखो वाले जीव को दुनिया कैसी दिखती।

लेकिन पहले एक चीज पर ध्यान दें। व्योमदर्शीय चित्र एक आँख वाले व्यक्ति को भी दिखाया जा सकता है और इससे उसे व्योम गुणा की दृश्यानुभूति करायी जा सकती है। साधारण स्थितियों मे बेशक उसे ऐसी अनुभूति नही हो सकती। विधि यह है बायी व दायी आँखो के लिये अलग अलग तस्वीरें एक ही पर्दे पर बारी-बारी से पर जल्दी-जल्दी बदलते हुए दिखाते हैं। दो आँखो वाला व्यक्ति जिन दो तस्वीरो को एक साथ देखता है, एक आँख वाला व्यक्ति उन्हे बारी-बारी से क्रम म देखेगा। यदि चित्रो के बदलने की आवृत्ति बहुत तेज होगी, तो उसे वैसा ही दिखेगा, जैसा दो आँखो वाले व्यक्ति देखते हैं। कारण स्पष्ट है अलग अलग चित्रो की दृश्यानुभूतिया घुल मिल कर सिनेमा की तरह एक सतत चित्र बना देती हैं और भ्रम होता है कि चित्र बारी-बारी से नही एक साथ देखे जा रहे हैं।[1]

पर यदि यह सभव है, तो दो आँखो वाले व्यक्ति की एक आँख को तेजी से बदलते दो चित्र दिखाये जा सकते हैं और दूसरी आँख को तीसरा चित्र दिखाया जा सकता है। तीनो चित्र यदि एक ही वस्तु के हैं, पर तीन भिन्न बिदुओ से खीचे गये हैं, तो वे मिल-जुल कर चेतना को एक नये प्रकार के दृश्य की अनुभूति करायेंगे।

अन्य शब्दो मे, एक वस्तु के तीन सभव आँखो के अनुकूल तीन बिदुओ से तीन चित्र लिये जाते हैं। इनमे से दो तेजी के साथ बदल-बदल कर एक आँख को दिखाये जाते हैं। उन्हें तेजी से बदलने के कारण वे घुल-मिल कर एक जटिल व्योम चित्र बनाने लगते हैं। इसी बीच दूसरी आँख को तीसरे चित्र की अनुभूति होती रहती है।

इन परिस्थितियो म यद्यपि हम दो आँखो से ही देखते हैं, पर अनुभूति ठीक वैसी ही प्राप्त होती है, जैसी तीन आँखो से देखने पर होती। इससे चित्र म अकित दृश्यो की व्योम धर्मिता काफी बढ जाती है।

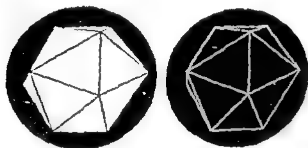
---

[1] सिनेमा के चित्र कभी-कभी अनूठे तौर पर व्योम धर्मी नजर आते है। इसका कारण शायद अशत यह भी हो सकता है कि चित्र लेते वक्त कैमरा तेजी से दायें-बायें कपन कर रहा था। यह ऐसे कैमरे मे फिल्म को आगे बढाने वाली प्रयुक्ति के कारण होता है। इस कपन के कारण चित्र असमान हो जाते हैं और पर्दे पर तेजी से एक-दूसरे का स्थान लेते हुए आपस मे घुल-मिल कर व्योम धर्मी दृश्यो की अनुभूति कराते हैं।

चित्र 133 में एक बहुफलक की व्योम फोटोग्राफी है एक काले पृष्ठ पर सफेद रेखाओं से बनाया गया है और दूसरा सफेद पृष्ठ पर काली रेखाओं से। व्योमदर्शी में यह चित्र कैसा दिखेगा? कहना मुश्किल है। देखिये कि हेल्महोल्टस क्या कहते हैं

"जब किसी व्योमदर्शीय चित्र-युग्म में से एक श्वेत रंग का है और दूसरा काले रंग का, तो दोनों मिल कर चमकदार फलक का चित्र देते हैं। यहाँ कागज व चित्र के मलिन होने से भी यही परिणाम मिलेगा। मणिभो (क्रिस्टलों) के इस विधि से बनाये गये व्योमदर्शीय प्रारेख चमकदार ग्रफाइट से बने मणिभों की अनुभूति देते हैं। इस विधि से पानी, पत्तियो आदि कि चमक का और भी बढ़िया व्योम चित्र लिया जा सकता है।"

हमारे महान शरीरक्रिया वैज्ञानिक सिचेनव की पुरानी, पर अनद्यातीत पुस्तक 'ज्ञानेंद्रियो का शरीरक्रिया विज्ञान दृष्टि" (1867 ई) में इस सवति की अनूठी व्याख्या दी गयी है



चित्र 133 व्योम चमक। व्योमदर्शी में देखने पर ये आकृतिया एक में मिलकर काले परिप्रेक्ष्य में चमकदार क्रिस्टल का चित्र देते हैं।

"विभिन्न प्रकार से प्रकाशित या बहुरंगी तलों के कृत्रिम व्योमदर्शीय समन्वय के प्रयोगो में चमकदार पिंडो की वास्तविक परिस्थितिया उत्पन्न की जाती हैं। मलिन सतह और चमकदार (पौलिश की हुई) सतह में क्या फर्क है? मलिन सतह प्रकाश को सभी दिशाओं में छीटती हुई परा

र्वतित करती है, इसीलिये उसे किसी भी तरफ से क्यो न देखा जाये, वह समान रूप से प्रकाशित लगती है। पौलिश की हुई सतह प्रकाश को सिर्फ एक दिशा में परावर्तित करती है। इसीलिये ऐसी स्थिति भी सभव है, जब एक आँख पर उससे परावर्तित होन वाली बहुत सी किरणें पडने लगती हैं और दूसरी आँख पर लगभग बिल्कुल नही (यह स्थिति हम काली व श्वेत सतहो के व्योमदर्शीय समन्वय मे देखते हैं)। स्पष्ट है पालिश की हुई सतह को देखने पर दोना आँखो के बीच परावर्तित प्रकाश का असमान वितरण (अर्थात एक आँख मे कम व दूसरी मे अधिक प्रकाश पडने की स्थिति) अवश्यभावी है।

इस प्रकार पाठक देख सकते हैं कि व्योमदर्शीय चमक इस विचार की सत्यता सिद्ध करता है कि बिबों के व्योम समन्वय की क्रिया मे प्राथमिक भूमिका अनुभव की होती है। दृष्टि-क्षेत्रो के बीच की खींचा-तानी उसी क्षण दृढ धारणा मे परिणत हो जाती है, जब अनुभव की गोद में पले दृष्टि-उपकरणो को किसी वास्तविक दृश्य के साथ उनके अंतर की तुलना करने का अवसर दिया जाता है।"

अत चमक दिखने का कारण (कम से कम एक कारण) यह है कि बायीं व दायीं आँखो के सामने अलग अलग तरह से चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। बिना व्योमदर्शी के इस कारण का हमे कभी पता न चलता।

क्षिप्र गति की स्थिति मे दृष्टि

इसके पहले हम बता चुके हैं कि एक ही वस्तु के भिन्न भिन्न यदि तेजी के साथ बदलते हुए बारी-बारी से दिखाये जायें तो व्योम घमिता की अनुभूति होती है।

प्रश्न उठता है क्या यही प्रभाव उस स्थिति म नही उत्पन्न हो सकता, जब अचल चित्र गतिमान आँखो से देखे जा रहे हो? दूसरे शब्दो मे, क्या वस्तुओ की वसी ही व्योम घमिता तब नही दिखेगी जब वस्तु अचल रहे और आँख तेजी के साथ गतिमान हो?

जसी आशा की गयी थी इस स्थिति मे भी व्योमदर्शीय प्रभाव पाया जाता है। कई पाठको ने ध्यान दिया होगा कि तेज चलती गाडी से खीचे गये सिनमा चित्र में भी व्योमदर्शीय चित्रो से कुछ कम व्योम घमिता नही

होती। यह हम खुद भी देख सकते हैं, यदि रेलगाड़ी या मोटरगाड़ी में स्थित यात्री दूसरों पर ध्यान दें। भूदृश्य में आगे व पीछे की वस्तुएं स्पष्टतः अलग-अलग दिखेंगी, जिससे व्योमधर्मिता का भान होता है। गहराई की अनुभूति तीव्र हो जाती है और 450 m से अधिक दूरी पर भी आगे व पीछे की वस्तुओं में अंतर दिखने लगता है। स्मरण दिला दूं कि 450 m स्थिर आँखों की व्योमदर्शिता की सीमा है।

तेज गाड़ी से दिखाई पड़ने वाले भू-दृश्य की मोहकता का कारण यहीं ढूंढना क्या सही नहीं है? दूरस्थ वस्तुएं पीछे छूटती जाती हैं और हम परिवेश प्रकृति की विराटता का ज्ञान करने लगते हैं। जब हम मोटरगाड़ी में बैठे जंगल के बीच से निकलते हैं, पेड़ स्पष्टतः एक दूसरे से दूर दिखते हैं। अचलावस्था में हमारी आँखें उन्हें अलग नहीं कर पातीं।

पहाड़ी स्थलों पर सरपट दौड़ते घुड़सवार के लिये जमीन की उभार स्पष्ट हो जाती हैं, पहाड़ियों व घाटियों की व्योमधर्मिता मूर्त हो उठती है।

यह सब एक आँख वाला व्यक्ति भी देख सकता है, जिसके लिये उपरोक्त अनुभूतियां बिल्कुल नयी होती हैं। हम बता चुके हैं कि व्योमदृष्टि के लिये भिन्न चित्रों को एक साथ दोनों आँखों से देखने की आवश्यकता नहीं है। एक आँख से भी वस्तुओं की व्योमधर्मिता देखी जा सकती है, यदि तीव्र गति से एक-दूसरे का स्थान लेते हुए भिन्न चित्र एकाकार हो जायें।[1]

उपरोक्त बातों की जाँच करना बहुत सरल है। इसके लिया थोड़ा सा इस बात पर ध्यान देना होगा कि रेलगाड़ी या बस में चलते वक्त हमारी आँखों को क्या दृष्टिगोचर होता है। आपको एक दूसरी ही बात नजर आयेगी, जिसके बारे में डोव ने सौ साल पहले ही लिखा था (सचमुच में भूली बिसरी बातें भी नयी होती हैं!) खिड़की से दृष्टिगोचर पीछे भागती हुई वस्तुएं छोटी प्रतीत होती हैं। इस तथ्य का व्योमदर्शीय दृष्टि के साथ कोई संबंध नहीं है। इसका कारण यह है कि इतनी तेजी से

---

[1] ट्रेनों से खींचे गये चल चित्रों की सर्वविदित व्योमधर्मिता का कारण यही है, जो और भी स्पष्ट हो जाती है यदि ट्रेन वक्र पथ पर चल रही हो और वस्तुएं वक्रता त्रिज्या की दिशा में हों। इसे "रेलगाड़ी का प्रभाव" कहते हैं और यह फिल्म ऑपरेटर अच्छी तरह से जानते हैं।

गतिमान वस्तु को देख कर हम उसके छोटे होने का गलत निष्कर्ष निकालते हैं यदि वस्तु हमसे निकट है, — जाने अनजाने हम सोचना शुरू करते हैं, — तो वास्तविकता मे साधारणतया उसे निकट होना चाहिये, क्योंकि सिर्फ इसी स्थिति मे वह हमेशा की तरह इस आकार का प्रतीत होगा। यह व्याख्या हेल्महोल्ट्स की है।

रंगीन चश्मो से

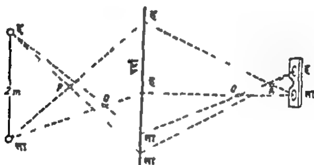
यदि आप सफेद तख्ते पर लाल रंग से लिखे अक्षरो को लाल ऐनक से देखेंगे, तो आपको सिर्फ लाल पृष्ठभूमि दिखेगी। लिखावट का नामो निशान नहा रह जायेगा, क्योंकि लाल अक्षर लाल पृष्ठभूमि में विलीन हो जाते हैं। इसी चश्मे से यदि सफेद पर नीले अक्षरो को पढने की कोशिश करेंगे, तो आपको लाल पृष्ठ पर स्पष्ट काले अक्षर दिखेंगे। समझा जा सकता है लाल शीशे को नीली किरणें नही पार कर सकती (शीशा इसीलिये तो लाल है कि वह सिर्फ लाल किरणा को पार कराता है)। फलस्वरूप नीले अक्षरो के स्थान पर आप रंग की अनुपस्थिति, अर्थात काली रेखायें देखेंगे।

तथाकथित ' उभरे चित्रो" (ऐनाग्लीफ) का प्रभाव रंगीन शीशो के इसी गुण पर आधारित है। ऐनाग्लीफ मे अक्षर इस प्रकार से छापे जाते हैं कि वे व्योम-गुणी प्रतीत होने लगते हैं, जैसे आप व्योमदर्शी म देख रहे हो। इसके लिये अक्षरो के बायी व दायी आंखा से दिखने वाले चित्रो को एक पर एक छापा जाता है, सिर्फ उनके रंग अलग अलग होते हैं — एक का नीला और दूसरे का काला।

दो रंगीन साधारण चित्रो की जगह एक व्योमधर्मी चित्र देखने के लिये रंगीन शीशो से देखना काफी रहेगा। दायी आंख को लाल शीशे से सिर्फ नीली छाप दिखेगी, जो इस आंख के अनुकूल है (और अक्षर काला दिखेगा)। बायी आंख को नीले शीशे से उसके अनुकूल सिर्फ लाल छाप दिखेगी। हर आंख सिर्फ उसी चित्र को देखती है, जो उसके लिये है। यहाँ वे ही स्थितियां हैं, जो व्योमदर्शी मे होती हैं अत परिणाम भी वही होना है व्योम धर्मिता का भ्रम।

उपरोक्त नियम पर ही जादुई परछाइयां आधारित हैं, जो कभी-कभी सिनेमा में दिखायी जाती हैं।

"जादुई परछाइयां" तब बनती हैं, जब पर्दे पर दिखायी जाने वाली आकृतियां व्योमधर्मी लगने लगती हैं, अर्थात् जब पर्दे पर वे उभरी हुई व उत्तल दिखने लगती हैं। ऐसी परछाइयां देखने के लिये दर्शकों को दुरंगा चश्मा पहनना पड़ता है, क्योंकि इस भ्रम का कारण दुरंगा व्योमदर्शी है। जिस वस्तु की परछाई दिखानी हो, उसे पर्दे और साथ रखे लाल व हरे प्रकाश-स्रोतों के बीच में रखते हैं। पर्दे पर दो (लाल व हरी) परछाइयां मिलेगी। दोनों ही एक-दूसरे को पार कर लेती हैं। दर्शक उन्हें नंगी आंखों से नहीं देखते हैं। उनकी आंखों पर लाल व हरे रंग के चौरस शीशों का चश्मा होता है।



चित्र 134 "छाया चमत्कार" का रहस्य

अभी-अभी समझाया गया था कि इन परिस्थितियों में व्योम आकृतियों का भ्रम पैदा होता है, जिसके कारण वे पर्दे के तल से आगे की ओर उभरी हुई लगती हैं। "जादुई परछाइयों" का भ्रम काफी रोचक होता है कभी लगता है कि फेंकी गयी वस्तु ठीक दर्शकों के सिर पर गिरने वाली है, कभी कोई विशाल मकड़ा हवा में दर्शकों के सिर पर रेंगना शुरू कर देता है, जिससे बचने के लिये वे बरबस अपना सिर इधर-उधर घुमाने लगते हैं या डर के मारे चीख पड़ते हैं। इसका उपकरण काफी सरल

है, उसे चित्र 134 की सहायता से समझा जा सकता है। ह य सा का प्रप है हरा व लाल वल्व (बायें), P और Q पर्दे व बल्वों के बीच रखी वस्तुए हैं, ह व ला कमरा के साथ p व q पर्दे पर इन वस्तुओं की लाल व हरी परछाइयां द्योतित करते हैं, P_1 व Q_1 उन स्थानों को इंगित करते हैं, जहा हरे (ह) व लाल (ला) रंग के शीशे से देखने पर दर्शकों को वस्तुए P तथा Q नजर आयेंगी। जब विशाल मकड़ा Q से P की ओर भागता है तो दर्शकों को लगता है कि वह Q_1 से P_1 की ओर भागा है।

वैसे, पर्दे के पार जब कोई वस्तु प्रकाश-स्रोत के निकट आती है जिसके कारण उसकी छाया का आकार बढ़ने लगता है, तो भ्रम होता है कि वस्तु पर्दे से दर्शकों की ओर आ रही है। हर उड़ती चीज, जो दर्शकों को पर्दे से अपनी ओर आती दिखती है, दरअसल उल्टी दिशा म—पर्दे से प्रकाशस्रोत की ओर—गतिमान होती है।

रगों का रूपांतरण

यहा एक प्रयोग के बारे मे कुछ बताना चाहिये, जो लेनिनग्राद की "मनोरजक विज्ञान प्रदर्शनी" के दर्शकों को बहुत पसद आया था। एक कोना अतिथि-कक्ष की भाँति सजा हुआ है। इसम गद्दो के खोल गाढे नारगी रग के हैं, टेबुल हरे रग का है और उस पर शीशे की सुराही म क्रेनबेरी का रस और भिन्न रगो के फूल रखे हैं। आलमारियों के खानों पर किताबें हैं, जिनकी जिल्दों पर रग बिरगे अक्षर दिख रहे हैं। शुरू-शुरू यह सब साधारण श्वेत प्रकाश म दिखाया जा रहा है। अब स्विच थोडा घुमाया जाता है और श्वेत प्रकाश लाल प्रकाश मे परिवर्तित हो जाता है। इससे कमरे का पूरा रूप रग बदल जाता है गद्दो के खोल गुलाबी हो जाते हैं, हरा टेबुल-क्लॉथ गाढा नीलारुण हो जाता है, रस पानी की तरह वर्णहीन हो जाता है, फूल अपना रग बदल कर बिल्कुल दूसरी तरह के दिखने लगते हैं, जिल्दो पर की रगबिरगी लिखावट म से कुछ का नामो निशान नही रह जाता।

स्विच थोडा और घुमाने पर कमरा हरे रग से प्रकाशित हो जाता है और अतिथि-कक्ष का रग रूप पुन बदल जाता है।

ये रोचक रूपातरण पिडो के रग सबधी न्यूटनी सिद्धात के दृष्ट सिद्धात कहता है कि पिड की सतह उस रग को नही दिखती, जि सोख लेती है, बल्कि उस रग को, जिसे वह प्रकीणित करती है, की आँखो मे फेंकती है। इगलैंड के ही एक अन्य भौतिकविद् टिंड बात को निम्न शब्दो मे व्यक्त करते हैं

"जब हम वस्तुओ को श्वेत वर्ण के प्रकाश से प्रकाशित करते लाल रग हरी किरणो के अवशोषण से बनता है और हरा रग—लाल के अवशोषण से। बाकी रग दोनो ही स्थितियो मे प्रकट होते हैं। है कि पिड नकारात्मक रूप से रग ग्रहण करते हैं रगीन दिखना ने आत्मसातन का परिणाम नही, बहिष्करण का परिणाम है।'

हरा टेबुल-क्लौथ श्वेत प्रकाश मे इसलिये हरा दिखता है, क्योंकि अधिकाशत हरे रग और उसके निकटवर्ती स्पेक्ट्रमी रगो को प्रकीणित है, अन्य किरणो को वह कम प्रकीणित करता है या उनके अधिकाश को अवशोषित कर लेता है। यदि ऐसे टेबुल-क्लौथ पर लाल-बैंगनी का प्रकाश डाला जाये, तो वह अधिकाशत बैंगनी रग को प्रकीणित क और लाल रग का अधिकाश भाग अवशोषित कर लेगा। इसके कारण को गाढे अरुणाभ की सवेदना मिलेगी।

अतिथि-कक्ष मे होने वाले सारे वर्ण रूपातरणो का कारण यही है। रहस्यमय लगती है सिर्फ क्रेनबेरी रस के रगहीन होने की बा लाल वर्ण का द्रव लाल प्रकाश म पानी की तरह रगहीन क्यो हो ज है? इसका राज यही है कि सुराही सफेद कागज पर रखी है और का हरे टेबुल-क्लौथ पर बिछा है। यदि कागज हटा लिया जाये, तो आप दे कि रस लाल रग का ही है। रगहीन वह सिर्फ सफेद कागज के साथ लग है, जो लाल प्रकाश म स्वय लाल हो जाता है। पर टेबुल-क्लौथ के रग के विरुद्ध हम कागज को आदतवश सफेद ही मानते हैं। और चूं द्रव का रग कागज के मिथ्या श्वेत रग से मिलता-जुलता है, इसलिये को भी हम सफेद मानने लगते हैं, हमारी आँखो के लिये वह क्रेनबे रस से वर्णहीन जल मे परिणत हो जाता है।

ऐसा प्रयोग सरलीकृत रूप म आप भी कर सकते हैं। इसके लि भिन्न रगो के काँच जमा कीजिये और परिवेशी वस्तुओ को देखिये, परिणा यही होगा। (ऐसे प्रभावो का वर्णन मेरी पुस्तक 'क्या आप भौतिकी जान हैं?' म किया गया है।)

किताब की ऊँचाई

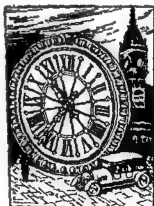
अपने मेहमान या मित्र के हाथ में कोई पुस्तक दे कर उससे पूछें कि पुस्तक को दीवार के सहारे खड़ी कर देने पर वह किस ऊँचाई तक पहुँचेगी। जब वह बता दे (दूर से ही अदाज से, बिना खुद झुक कर किताब को खड़ा किये), तो आप किताब उससे ले कर फर्श पर दीवार के सहारे खड़ी कर दें पता चलेगा कि बतायी गयी ऊँचाई से आधी दूरी तक ही वह पहुँचती है।

प्रयोग अधिक सफल होगा, यदि वह खुद झुक कर अपनी उंगलियों से ऊँचाई नहीं बताये, बल्कि शब्दो के सहारे आपको समझा दे। जाहिर है कि प्रयोग सिर्फ किताब के साथ ही नहीं, लैंप, टोपी आदि किसी भी चीज के साथ किया जा सकता है। वस्तु सिर्फ ऐसी होनी चाहिये, जिसे हम आँखो के निकट से देखने के आदी हो।

इस गलत अदाजे का कारण यह है कि जब किसी वस्तु को उसके अनुतीर (लबाई की दिशा में) देखते हैं, तो उसकी लबाई कुछ छोटी लगने लगती है।

घटाघर की घड़ी का आकार

आपके मेहमान ने जो गलती की है, वह हमलोग हर बार दुहराते हैं, जब हम ऊँचाई पर रखी किसी वस्तु को देखते हैं। यह गलती विशेषकर उस समय होती है, जब हम घटाघर की घड़ी का आकार अदाज से निर्धारित करने की कोशिश करते हैं। हम सभी जानते हैं कि वह काफी बड़ी होती है। पर इसके बावजूद भी उसका वास्तविक आकार हमारी धारणा से काफी बड़ा होता है। चित्र 135 में वेस्टमिस्टर अब्बाट (लडन) के घटाघर की प्रसिद्ध घडी का डायल दिखाया गया है, जब वह नीचे सड़क पर उतारा गया था।



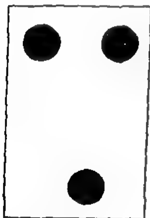
चित्र 135 वेस्टमिस्टर अब्बाट के घटाघर की घड़ी के आकार

उसकी तुलना मे लोग-बाग कीडो की तरह लगते हैं। घटाघर के छत को नीचे से देख कर विश्वास नही होता कि उसमे इतना बडा डायल आ सकता है, पर डायल और छेद बराबर हैं।

सफेद और काला

चित्र 136 को दूर से देख कर बतायें निचले बिंदे और ऊपर के किसी एक बिंदे के बीच की खाली जगह मे ऐसे ही कितने बिंदे अट सकते हैं—चार या पाँच? उम्मीद यही है कि आप कहेंगे चार आराम से अट जायेंगे, पाचवे के लिये जगह थोडी कम पडेगी।

जब आप से कहा जायेगा कि इस स्थान मे ठीक तीन बिंदे अटेंगे, इससे एक भी ज्यादा नही,—तो आपको विश्वास नही होगा। कागज और परकाल का प्रयोग कर के खुद देख सकते हैं कि आप गलत हैं।



चित्र 136 नीचे वाले गोले और ऊपर वाला मे से प्रत्येक गोले के बीच की दूरी ऊपरी गोलों के बाह्य कोरा की दूरी से अधिक लगती है, पर दरहकीकत सारी दूरिया बराबर हैं।

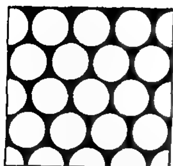
इस विचित्र भ्रम को—कि समान आकार के काले व सफेद स्थलो में से काला स्थल छोटा लगता है—'कांति' (इर्रेडियेशन) कहते हैं। यह भ्रम हमारी आँखो की बनावट के अपूर्ण होने के कारण उत्पन्न होता है। हमारी आँखें भी प्रकाशिकीय उपकरण हैं, पर वे प्रकाशिकी का पूर्णतया पालन नही करती। उसका अपवर्तक माध्यम दृष्टि-पटल पर इतना स्पष्ट आकृति नही बनाता, जितनी स्पष्ट आकृति अच्छी तरह फोकस किये गये कमरे मे दूधिये शीशे पर बनती है। तथाकथित गोलाकार विपथन के कारण हल्के रगो की हर आकृति एक कांतिमान छल्ले से घिरी होती है, जो उसका आकार बडा कर देती है। परिणामस्वरूप हल्के रग के स्थल समान आकार वाले काले स्थलो की तुलना मे बडे लगते हैं।

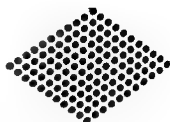
महान कवि गेटे अपने "प्रकृति सिद्धात" मे (जिसम वे प्रकृति के पटु प्रेक्षक के रूप मे आते हैं, पर भौतिकी के सिद्धान्तवेत्ता के रूप मे नहीं) इस भ्रम के बारे मे लिखते हैं

"कृष्णाभ वस्तु समान आकार वाली गौर (हल्के रगो की) वस्तुओ से छोटी लगती है। यदि काली पृष्ठभूमि पर श्वेत वृत्त और श्वेत पृष्ठभूमि पर उसी व्यास का काला वृत्त एक साथ देखा जाये, तो काला वृत्त सफेद से $^1/_5$ अश छोटा लगेगा। यदि काला वृत्त इसी हिसाब से कुछ बडा कर दिया जाये, तो दोनो बराबर लगेंगे। चद्र-हसिया को देखने पर लगता है कि वह बडे व्यास वाले वृत्त से काट कर बनाया गया है और चाद का अधकारमय भाग, जो थोडा-थोडा दिखता रहता है (चाद का "भभूती वण'—या पे), अपेक्षाकृत कम व्यास वाले वृत्त से काटा हुआ लगता है। किसी चीज की किनारी से प्रकाश स्रोत देखने पर लगता है कि किनारी कुछ कटी-छँटी है। रेखनी के ऊपर से यदि मोमबत्ती की लौ झाकती हो, तो रेखनी के उस स्थान पर कटाव सा दिखता है। उदय व अस्त होते वक्त सूय क्षितिज मे मानो गडढा सा कर देता है।'

इन अवलोकनो मे सब कुछ सही है। गलत सिफ एक बात है कि श्वेत वृत्त उसी व्यास वाले काले वृत्त से हमेशा एक निश्चित अश द्वारा ही बडा दिखता है। वास्तविकता तो यह है कि श्वेत वृत्त काले से कितना अश बडा दिखेगा, यह उस दूरी पर निभर करता है, जिससे वृत्ता को देखा जा रहा है। ऐसा क्यो होता है, इसका कारण अभी समझ मे आ जायेगा।

चित्र 136 को आँखो से कुछ दूर कर दीजिये—भ्रम और भी शक्तिशाली हो जायेगा। इसका कारण यह है कि गौर स्थल को घेरने वाली प्रकाश-छल्ले की चौडाइ घटती बढती नही है, हमेशा एक रहती है। इसीलिये यदि नजदीक से देखने पर वह किसी गौर स्थल की चौडाई 10% बढा देती है, तो दूर से देखने पर (जब स्थल की आकृति स्वय छोटी हो जाती है) वही पट्टी उसकी चौडाई 30% से 50% तक बढा सकती है। आखो की इसी विशेषता द्वारा अक्सर चित्र 137 के विचित्र गुण को समझाया जाता है। नजदीक से अवलोकन करने पर आप काली पृष्ठभूमि पर अनेक सारे श्वेत गोल बिदे देखेंगे। पर चित्र को दो-तीन कदम दूर से देखें। यदि आपकी दृष्टि बहुत अच्छी है, तो पाँच छे कदम की दूरी से भी देख सकते हैं। आकृति बदल जायेगी, आपको श्वेत गोल बिदो के स्थान पर श्वेत षटकोण दिखने लगेंगे, जसे मधुमक्खी के छत्ते मे घर होते हैं।





चित्र 137 कुछ दूरी से देखने पर वृत्त षटकोण से लगते हैं। चित्र 138 काले गोले दूर से षटकोण लगते हैं।

इस भ्रम का भी कारण कांति ही बताते हैं, पर जबसे मैंने श्वेत पृष्ठ भूमि पर दूर से षटकोण प्रतीत होने वाले काले बिंदो को देखा (चित्र 138) तबसे मुझे इस कांति वाली व्याख्या से संतोष नही होता, यद्यपि कांतिमान पट्टी यहा बिंदा का आकार बढाती नही, घटाती है। वैसे एक बात है कि दृष्टि-भ्रमो की ज्ञात व्याख्याओ मे से किसी को भी संतोषप्रद नही कहा जा सकता। वे सभी अपूर्ण हैं। अधिकांश भ्रमो की तो कोई व्याख्या ही नही है।[1]

कौनसा अक्षर अधिक काला है?

चित्र 139 की सहायता से हम अपनी आंखो के एक और दोष—निबिंदुत्व (ऐस्टिगमैटिज्म)—से परिचित हो सकते हैं। यदि आप इसे सरसरी निगाह से देखेंगे तो शायद चारो अक्षर समान रूप से काले नही लगेंगे। आप यह याद कर ले कि कौन सा अक्षर सबसे अधिक काला लग रहा है। अब चित्र को घुमा कर पार्श्व से देखें। आप को एक परिवर्तन नजर आयेगा जो अक्षर सबसे अधिक काला था, अब थोडा हल्का पड़ गया है और एक बिल्कुल दूसरा ही अक्षर सबसे अधिक काला है।

---

[1] इसके बारे में सविस्तार देखें मेरी पुस्तक 'दृष्टि भ्रम''—प्रकाशिकीय भ्रमो का एक चित्र-संग्रह।



चित्र 139 एक आंख बंद कर इस लिखावट को देखें। इनमे से एक अक्षर अन्यों की अपेक्षा अधिक काला लगेगा।

यथार्थतः सभी अक्षर समान रूप से काले हैं। सिर्फ उन्हें बनाने वाली रेखाओं की दिशायें भिन्न हैं। यदि हमारी आँखें शीशे के बने महंगे लेंसों की तरह पूर्ण होती, तो रेखाओं की दिशायें अक्षरों के कालेपन पर असर नहीं डालती। पर आँख प्रकाश को हर दिशा में समान रूप से अपवर्तित नहीं करती और इसीलिये हम उदग्र, क्षैतिज व आड़ी रेखाओं को समान स्पष्टता से नहीं देख पाते।

शायद ही किसी की आँखें इस दोष से मुक्त हों। कुछ लोगों में विन्दुत्व इतना बड़ा हुआ होता है कि वह देखने में बिल्कुल बाधक बन जाता है, दृष्टि की तीक्ष्णता काफी कम हो जाती है। ऐसे लोगों को विशेष प्रकार का चश्मा लगाना पड़ता है।

आँखों में अन्य आंतरिक दोष भी हैं, जिनसे कृत्रिम प्रकाशिकीय उपकरणों को मुक्त किया जा सकता है। हेल्महोल्टस ने आँख के इन दोषों को ही मद्देनजर रखते हुए कहा था "यदि कोई चश्माफरोश मुझे ऐसे दोषों से युक्त कोई प्रकाशिकीय उपकरण बेचने की कोशिश करता, तो मैं कहता कि उसे कुछ आता नहीं है और विरोध के साथ उपकरण उसे वापस कर देता।"

आँख की बनावट से उत्पन्न होने वाले इन भ्रमों के अतिरिक्त और भी कई दूसरे भ्रम हैं, जो बिल्कुल दूसरे कारणों पर आधारित होते हैं।

सजीव चित्र

शायद ऐसा चित्र देखने का अवसर सबों को मिला होगा जिसमें कोई व्यक्ति आपकी ओर देख रहा है और इतना ही नहीं, वह नजरों से आपका पीछा भी करता रहता है, जिधर आप जाते हैं, उसकी निगाह



चित्र 140 रहस्यमय चित्र

भी उधर ही घूम जाती है। ऐसी तस्वीरों की रोचक विशेषताओं को लोग काफी समय से जानते हैं, बहुतों को वे रहस्यमयी भी लगती हैं। गोगल की कहानी "तस्वीर" में इसी तरह की एक स्थिति का एक सुंदर वर्णन मिलता है

"आँखें उस पर टिक गयीं और लगता था कि उनमें अतिरिक्त और कुछ भी देखना नहीं चाहती तस्वीर सब कुछ को छोड़ कर सिर्फ उसे देख रही थी, मानों तस्वीर की दृष्टि उसमें घुस कर फंस गयी थी"

तस्वीरों में आँखों की इस रहस्यमयी विशेषता के साथ अंधविश्वास की कई कथायें जुडी हैं ("तस्वीर" कहानी को ही ले), पर राज यही है कि यह मात्र दृष्टि भ्रम है।

कारण इतना सा है कि इन तस्वीरों में आँख की पुतली आँख के ठीक बीच में बनी होती है। जब कोई व्यक्ति सीधा हमारी ओर देखता है, तो पुतली की स्थिति यही होती है। जब वह इधर-उधर देखता है, तो पुतली आँख के किनारे हो जाती है। जब हम तस्वीर बगल से देखते हैं, पुतलियां जाहिर है कि अपना स्थान नहीं बदलती, वे तस्वीर वाले व्यक्ति की आँखों के बीच ही में रहती हैं। इसके अतिरिक्त उस व्यक्ति की शक्ल भी हमारे सापेक्ष पहले की तरह ही रह जाती है। इसीलिये हमें लगता है कि चित्र वाला व्यक्ति हमें मुड-मुड कर देख रहा है।

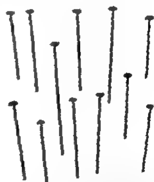
कुछ तस्वीरों की चक्करा देने वाली अन्य विशेषताओं का भी यही कारण होता है। जैसे, चित्र का घोडा ठीक आप पर छलांग लगाता सा दिखता है आदमी आप पर उंगली उठाये होता है, आदि आदि। इस तरह की एक तस्वीर चित्र 140 में दिखायी गयी है। ऐसे चित्र विज्ञापन प्रचार आदि में अक्सर प्रयुक्त होते रहते हैं।

यदि ऐसे भ्रमों के कारणों पर मनन किया जाये, तो स्पष्ट हो जाता है कि इनमें कोई आश्चर्य या चमत्कार की बात नहीं है। उल्टा, आश्चर्य तब होता, जब ऐसी तस्वीरों में ये विशेषतायें नहीं होतीं।

चित्र 141 क पिनों में कोई विशेषता नजर नहीं आती। अब किताब उठा कर आंखों के सामने रखें, और एक आंख बंद कर के इन रेखाओं को इस प्रकार से देखें, जैसे दृष्टि उनकी दिशा में फिसल रही हो। (दृष्टि को उस बिंदु पर टिकाना है जहां इन रेखाओं को बढ़ाने पर उनका कटान बिंदु मिले।) इस विधि से देखने पर लगता है कि पिन कागज पर बने (या पड़े) हुए नहीं हैं, वे कागज में उदग्र गड़े हुए प्रतीत होते हैं। यदि आप अपना सिर थोड़ा बगल ले जायेंगे, तो देखेंगे कि पिन भी उसी ओर थोड़ा झुक गये हैं।

इस भ्रम को परिप्रेक्ष्य (व्योमधर्मिता) के नियम से समझाया जा सकता है: चित्र में रेखायें इस प्रकार से खींची गयी हैं, जैसे कागज पर उदग्र गड़े पिन प्रक्षिप्त (चित्रित) किये जाते हैं।

भ्रम सिर्फ दृष्टि-दोष ही नहीं है। इससे बड़ा लाभ भी है, जिसके बारे में लोग अक्सर भूल जाते हैं। यदि आंखें इस तरह के भ्रमों में नहीं पड़तीं, तो चित्रकारी संभव नहीं होती और हम चित्रकला का पूर्णरूप से रसास्वादन नहीं कर पाते। चित्रकार अक्सर इन दृष्टि-दोषों का उपयोग करते हैं।



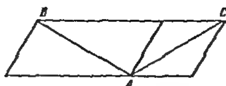
चित्र 141 ख. अब आंख से (दूसरी बंद कर के) उस बिंदु के करीब गौर से देखें जहां ये रेखायें बढ़ाने पर मिलतीं। आपको कागज पर सीधे गड़े हुए पिन दिखेंगे। सिर को हल्के से इधर-उधर हिलाने पर लगेगा कि पिन हिल-डुल रहे हैं।

'इसी धोखे पर सारी चित्र-कला आधारित है,—अपने प्रसिद्ध 'विभिन्न भौतिक घटनाओं के बारे में पत्र' में XVIII-वीं शती के प्रतिभावान वैज्ञानिक एइलर लिखते हैं।—यदि हम सिर्फ सच्चाई ही देखते, तो यह कला (अर्थात चित्र-कला) होती ही नहीं, या होती भी तो हम उसके लिये अंधे होते। चित्रकार रंगों के मिलान में सारी निपुणता खर्च कर देता और



चित्र 142 अक्षर सीधे हैं।

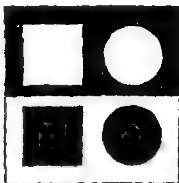
चित्र 143 वक्र रेखायें सर्पिलाकार लगती है पर ये वृत्ताकार हैं। सुई की नोक किसी रेखा पर घुमा कर देख ले सकते हैं।



चित्र 144 दूरी AB बडी लगती है AC से, पर दोनो बराबर हैं।



चित्र 145 पट्टियो को काटने वाली आडी रेखा टूटी-टूटी सी लगती है।

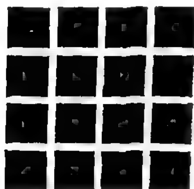


चित्र 146 काले और सफेद वर्ग बराबर हैं। वृत्त भी बराबर हैं।

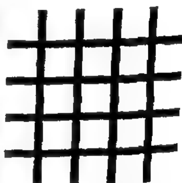
हम कहते इस तख्ते पर लाल धब्बा है, यह नीला धब्बा है, यहा काला है और वहा कुछेक सफेद रेखायें हैं, सब एक समतल पर स्थित है और आगे-पीछे की दूरियो म कोई अतर नही दिख रहा है। इस तरह, एक भी वस्तु का चित्र बनना सभव नही होता। हर चीज का चित्र कागज पर सपाट लिखावट सा होता यदि हमारी दृष्टि पूर्ण (दोष रहित) होती तो क्या हम दया के पात्र नही होते कि हम इतनी लाभदायक व सुखकर कला का कोई रसास्वादन नही कर सकते?"

प्रकाशिकीय भ्रम बहुत सारे हैं और उनसे पूरी किताब भरी जा सकती

है।[1] इनमे मे कई तो सर्वविदित हैं और कइयो को लोग बिल्कुल नही जानते। यहा प्रकाशिकीय भ्रमो के ऐसे ही नमून प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनका लोगो को बहुत कम ज्ञान है। जालीदार पृष्ठभूमि पर रेखाओ से सबधित दृष्टि भ्रम (चित्र 142 व 143) काफी प्रभावशाली हैं। आंखो को बिल्कुल विश्वास नही होता कि चित्र 142 म सारे अक्षर सीधे हैं। चित्र 143 म और भी कठिनाई से विश्वास होना है कि हमारे सामने सर्पिल नही, एककेद्री (एक सामूहिक केद्र वाले) वृत्त हैं। सिर्फ प्रत्यक्ष परीक्षण द्वारा आप यह देख सकते हैं। मिथ्या सर्पिल की किसी भी शाखा पर पेंसिल की नोक रख कर घुमायें। शीघ्र ही स्पष्ट हो जायेगा कि आप न तो केद्र के निकट आ रहे हैं और न उससे दूर जा रहे हैं, आप वृत्त की



चित्र 147 इस आकृति मे सफेद पट्टियो के कटान-स्थलो पर भूरे व वर्गाकार धब्बे लुक छिप कर प्रकट होते रहते हैं। पर असलियत म सफेद पट्टिया पूरी तरह से सफेद हैं। यदि विश्वास न हो, तो कागज से किसी पट्टी के अगल-बगल के काले वर्गों को ढक कर देख ले। भूरे धब्बे वण वपम्य के परिणाम हैं।



चित्र 148 काली पट्टियो के कटान स्थलो पर भूरे से धब्बे दिखते हैं।

---

[1] मेरी उपरोक्त पुस्तक "दृष्टि भ्रम" में 60 से अधिक प्रकाशिकीय भ्रम सग्रहित हैं।

परिधि पर घूम रहे हैं। इसी तरह परकार की सहायता से आप देख सकते हैं कि चित्र 144 में रेखा AC रेखा AB से छोटी नहीं है। चित्र 145, 146, 147, 148 में उलटप प्रभाव के बारे में उन चित्रों के नीचे पढ़ सकते हैं। चित्र 147 का भ्रम कितना प्रभावशाली है, इसका पता एक मजेदार घटना से चलता है इस पुस्तक के पिछले प्रकाशनों में से एक के प्रकाशक को जब इस चित्र का जस्तकारी मुद्रण दिखाया गया, तो वह उसे पुनः छापखाने में भेजने लगा, ताकि सफेद पट्टियों के कटान-स्थलों पर स्थित काले धब्बे पूरे धब्बों का साफ कर दिया जाये। अच्छा हुआ कि मैं संयोगवश इसी समय वहां पहुँच गया और प्रकाशक महोदय को समझा कर रोकने में सफल हो गया।

निकट दृष्टि की दृष्टि में

निकट दृष्टि वाले लोग बिना चश्मे के ठीक से नहीं देख पाते, पर वे क्या देखते हैं, वस्तुएं उन्हें कैसी दिखती हैं—इसके बारे में सही दृष्टि वाले लोग बहुत कम ही कुछ जानते हैं। पर निकट दृष्टि वालों की संख्या बहुत अधिक है और वे परिवेश को किस रूप में देखते हैं, यह जानना लाभदायक होगा।

प्रथमतः, निकट दृष्टि वाला व्यक्ति (जाहिर है कि बिना चश्मे के) कभी भी स्पष्ट आकृतियां नहीं देखता, उसके लिये सभी वस्तुओं की परिरेखायें अस्पष्ट व धुली हुई होती हैं। अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति जब पेड़ को देखता है, तो पत्ते-पत्ते को अलग व स्पष्ट देखता है। निकट दृष्टि वाला व्यक्ति सिर्फ एक बेतरतीब हरा पिंड देखता है, जिसमें उसे अजीबोगरीब आकृतियां नजर आ सकती हैं, उसके लिये छोटी वस्तुएं और छोटे विवरण एकदम ही लुप्त हो जाते हैं।

निकट दृष्टि वाले को दूसरों की शक्लें कुछ कम उम्र की तथा अधिक आकर्षक लगती हैं, अच्छी दृष्टि वालों की तरह वे महीन झुर्रियां और कई अन्य दोष नहीं देख पाते, चमड़े का भाड़ा लाल रंग (प्राकृतिक या कृत्रिम) उन्हें कोमल अरुणाभ लगता है। हम अपने कुछ परिचितों के भोलेपन पर आश्चर्य करते हैं कि वे लोगों की उम्र का अंदाजा लगाने में बीस बीस साल तक की गलती कर जाते हैं, जिसे हम सुंदर नहीं कहते, उसे वे सुंदर कह देते हैं। कभी-कभी वे बेशर्मी से हमारी ओर देखने लगते हैं,

जसे कोई रहस्य जान लेना चाहते हो। पर इन सबका कारण यही है कि वे निकट दृष्टि वाले हैं।

"लाइसियम (पुराने जमाने के अध्ययन केंद्र) में मुझे चश्मा लगाने की मनाही थी, — पुश्किन के मित्र कवि देलविग अपने संस्मरण में लिखते हैं, — पर इससे स्त्रियां कितनी मनोहर प्रतीत होती थी और पढ़ाई खत्म करने के बाद मुझे कितनी निराशा हुई थी।" जब निकट दृष्टि वाला व्यक्ति (बिना चश्मा लगाये) आप से बात करता है, तो वह आपकी शक्ल नहीं देखता, देखता भी है, तो वह चीज नहीं, जो आप सोचते होंगे उसके सामने अस्पष्ट आकृति होती है। हो सकता है कि एक घंटे बाद वह आपको सड़क पर देखे और पहचान न पाये। निकट दृष्टि वाला व्यक्ति लोगों को उनके रूप रंग से उतना नहीं पहचानता जितना उनकी आवाज के आधार पर। आप कह सकते हैं कि विकसित श्रवण शक्ति दृष्टि दोष का पूरक बन जाती है।

निकट दृष्टि वालों को रात की दुनिया कैसी लगती है, यह भी कम रोचक नहीं है। रात में सभी प्रकाशमान वस्तुएं — लैंप, प्रकाशित खिड़कियां आदि उन्हें काफी बड़े आकारों में दिखती है। दुनिया उनके लिये चमकीले धब्बों, काले व धुंधले सिलुएटों आदि से भरे बेतरतीब चित्र में परिणत हो जाती है। सड़क पर खंभों की रोशनी को वे दो-तीन बड़े-बड़े प्रकाश धब्बों के रूप में देखते हैं, जो उनकी दृष्टि में सड़क का बाकी सारा भाग ढक लेते हैं। सामने से आती मोटर-कार की जगह वे दो चमकीले गोल घेरे देखते हैं, जिनके पीछे एक काला पिंड दौड़ता होता है।

निकट दृष्टि वालों को रात में आकाश भी कुछ और ही नजर आता है। वे सिर्फ बड़े तारों को ही देख पाते हैं, अतः उन्हें कुछेक हजार की जगह कुछेक सौ तारे ही नजर आते हैं, और वे भी प्रकाश के बड़े-बड़े लोंदों जैसे नजर आते हैं। चांद उन्हें काफी बड़ा व निकट दिखता है। अर्द्ध चंद्र उनके लिये बिल्कुल विचित्र रूप रंग का होता है।

आकारों के प्रतीयमान परिवर्धन व इन विकृतियों का कारण निकट दृष्टि वाले की आंख की विशेष बनावट में छिपा होता है। ऐसे आदमी की आंख काफी गहरी होती है, इतनी गहरी कि अपवर्तन के बाद प्रकाश किरणें रेटीना (दृष्टिपटल) पर नहीं उससे कुछ पहले ही एकत्रित हो जाती हैं। रेटीना तक सिर्फ अपसृत किरण-पुंज पहुँचती हैं, जिसके कारण वस्तुओं का बिंब अस्पष्ट बनता है।

अध्याय 10

ध्वनि और श्रवण-शक्ति

प्रतिध्वनि की खोज

किसी ने देखा नहीं,
पर सुना उसे सबने है,
अंग नहीं, पर जीती है,
जीभ नहीं और चीखती है।

निम्रासव

अमरीकी व्यंग्यकार मार्क ट्वेन की कहानियों में से एक में एक आदमी प्रतिध्वनियों का संग्रह करता होता है। वह हर उस स्थान को खरीद लेता था, जहाँ की प्रतिध्वनि में कोई विशेषता थी, या वह कई बार दुहराई जाती थी।

'पहले उसने जार्जिया प्रांत में एक प्रतिध्वनि खरीदी, जो चार बार शब्दों को दुहराती थी। इसके बाद मेरीलैंड में छै बार स्वरों को दुहराने वाली प्रतिध्वनि और मेने में 13-बार वाली खरीदी। अगली खरीदारी में कन्सास की 9-बार वाली प्रतिध्वनि आयी। इसके बाद टेनेसी की 12 बार वाली, जो सस्ते में मिल गई थी, खरीदी गयी। सस्ते में, क्योंकि उसमें काफी कुछ मरम्मत करनी थी इसमें मुख्य चट्टान अपनी जगह से धँस गयी थी। उसने सोचा कि इसपर कोई

दीवार बना कर प्रतिध्वनि को वापस लौटाया जा सकता है, पर इंजिनियर का कभी प्रतिध्वनियों से पाला नहीं पड़ा था, अतः उसने स्थान को और भी बिगाड़ दिया। मरम्मत के बाद जगह इसी लायक रह गयी थी कि वहाँ सिर्फ बहरे-गूंगे शरण ले सकें ”

यह तो मजाक है, पर कई बार दुहरायी जाने वाली प्रतिध्वनियाँ सचमुच में होती हैं। उनमें से अधिकांश पहाड़ी जगहों पर होती हैं। कई तो विश्व भर में विख्यात हैं।

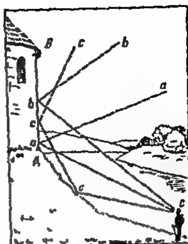
कुछ प्रसिद्ध प्रतिध्वनियों का वर्णन करते हैं। इंगलैंड में वुडस्टौक किले में प्रतिध्वनि 17 अक्षरों को दुहरा सकती है। हाल्बेरश्टाट के पास डेरेनबुर्ग किले के अवशेषों में 27 अक्षरों को दुहराने वाली प्रतिध्वनि थी, पर बाद में एक दीवार के ध्वस हो जाने के कारण वह सदा के लिये चुप हो गयी। चेकोस्लोवाकिया में आदेसबाख के पास गोलाकार चट्टानें एक स्थान विशेष से 7 अक्षरों की प्रतिध्वनि दुहरा सकती हैं। लेकिन यहाँ से चंद कदम हट जाने पर बंदूक की आवाज भी प्रतिध्वनित नहीं होती। मिलान के निकट एक किले में (जो अब नहीं है) प्रतिध्वनियों की संख्या बहुत बड़ी थी उसके एक भाग में गोली चलाने पर धमाके की आवाज 40-50 बार सुनायी देती थी और चिल्ला कर कहा गया शब्द—30 बार।

ऐसे स्थानों को ढूँढना कोई आसान काम नहीं है, जहाँ साफ-साफ एक बार भी प्रतिध्वनि सुनायी पड़ती हो। पर सोवियत संघ में ऐसे स्थान खोज निकालना अपेक्षाकृत सरल है। यहाँ जंगलों से घिरे अनेक मैदान व घाटियाँ हैं। किसी भी ऐसे मैदान में जोर से कुछ बोलने पर जंगल के पेड़ों की दीवार से टकरा कर स्पष्ट ध्वनि सुनायी दे सकती है।

पहाड़ियों में तरह-तरह की प्रतिध्वनियाँ मिलती हैं, पर उनकी संख्या बहुत कम है। पहाड़ी-स्थलों पर प्रतिध्वनि सुनना अधिक कठिन है, बनिस्बत कि जंगल से घिरे समतल पर।

आप अभी समझ जायेंगे कि ऐसा क्यों होता है। प्रतिध्वनि और कुछ नहीं, सिर्फ ध्वनि तरंग है जो किसी बाधा से टकरा कर परावर्तित हो जाती है। प्रकाश के परावर्तन की तरह इसमें भी "ध्वनि किरणों" के आपतन व परावर्तन कोण बराबर होते हैं (ध्वनि-किरण उस दिशा को कहते हैं, जिधर ध्वनि-तरंगें गतिमान होती हैं)।

अब कल्पना कर कि आप पहाड़ के नीचे खड़े हैं (चित्र 149) और ध्वनि को परावर्तित करने वाली बाधा AB आप से कुछ ऊपर ऊँचाई पर है। आसानी से देख सकते हैं कि Ca, Cb, Cc रेखाओं पर भ्रमण करने वाली ध्वनि-तरंगे परावर्तन के बाद आपके कान तक नही, बल्कि aa, bb, cc, दिशाओं में चली जाती हैं। दूसरी बात होती यदि आप उसी ऊँचाई पर उठ आते जिस पर बाधा है (चित्र 150) या थोड़ा ऊपर भी उठ आ सकते हैं। ध्वनि Ca, Cb, दिशाओं में



चित्र 149 प्रतिध्वनि नही सुनायी देगी।

जा कर पुन आपके पास भजित रेखाओ CaaC या CbbC पर लौट आयेगी। इसके लिये ध्वनि को एक या दो बार जमीन से भी परावर्तित होना पड सकता है। दोना स्थानों के बीच यदि जमीन गहरी हो, तो और भी अच्छा है, वह नतोदर दपण की तरह काम करती है। पर यदि C और B स्थानों के बीच का स्थान उत्तल होगा, तो प्रतिध्वनि काफी क्षीण होगी और हो सकता है कि वह आपके कानो तक पहुँचे ही नही, ऐसी सतह उत्तल दपण का काम करती है।

ऊबड-खाबड पहाडी स्थल पर प्रतिध्वनि को खोजने के लिये कुछ कौशलता की आवश्यकता पडती है। उपयुक्त स्थान के चयन हो जाने के बाद भी वहाँ प्रतिध्वनि उत्पन्न करना कोई आसान काम नही है। प्रथमत, बाधा के बहुत निकट नही खडा होना चाहिये ध्वनि का पथ काफी लबा होना चाहिये, ताकि उसे जाकर लौटने मे कुछ समय लगे, अन्यथा प्रतिध्वनि ध्वनि के साथ लीन हो जायेगी। ध्वनि 340m प्रति सेकेड की क्षिप्रता से चलती है, अत बाधा से 85 m की दूरी पर खडे रहने से प्रतिध्वनि आधे सेकेड के बाद सुनायी देगी।

यद्यपि किसी भी प्रकार की ध्वनि की प्रतिध्वनि उत्पन्न हो सकती है,



चित्र 150 स्पष्ट प्रतिध्वनि।

उसकी स्पष्टता एक जैसी नहीं होती। घनघोर जंगल में कोई पशु गरज रहा है या तुरगनाद हो रहा है बिजली कड़क रही है या पहाड़ी पार कोई बाला गीत गा रही है—इन सब की प्रतिध्वनियां समान नहीं होंगी। ध्वनि जितनी तीखी होगी, प्रतिध्वनि उतनी ही स्पष्ट होगी। सबसे अच्छी प्रतिध्वनि ताली बजाने की होती है। आदमी का स्वर इतना अच्छा काम नहीं आता, जितना स्त्रियों व बच्चों का। उच्च स्वर अधिक स्पष्ट प्रतिध्वनि देता है।

नापने के फीते की जगह ध्वनि

हवा में ध्वनि प्रसरण का वेग ज्ञात होने से दुर्गम स्थल पर स्थित वस्तुओं की दूरी नापी जा सकती है। जूल वेर्न के उपन्यास "पृथ्वी-केंद्र की यात्रा" में ऐसी एक घटना का वर्णन आता है। भूगत यात्रा के वक्त दो यात्री—प्रोफेसर और उनका भतीजा—एक दूसरे को खो देते हैं। ढूंढते ढूंढते आखिर जब वे एक दूसरे की आवाज सुनने लगे, तो उनके बीच इस प्रकार की बातचीत हुई

— चाचा जी! —मैंने चिल्ला कर कहा (कहानी भतीजे की ओर से कही जा रही है)।

—क्या है, बेटा? —कुछ क्षण बाद मैंने उत्तर सुना।

—कितनी दूर हैं हम लोग एक दूसरे से?

–यह जानना कठिन नही है।

–आपका क्रोनोमीटर ठीक-ठाक है?

–हाँ।

–उसे हाथ मे ले लीजिये। मेरा नाम जोर से पुकारें और बोलना शुरू करने के क्षण सेकेंड की सुई ठीक-ठीक देख कर याद कर लें। जैसे ही आपकी आवाज मुझ तक आयेगी, मैं भी जोर से अपना नाम दुहराऊगा। जब आप मेरी आवाज सुनेंगे, पुन सेकेंड की सुई देख लेंगे।

–अच्छी बात है। तब मेरे पुकारने और तुम्हारा उत्तर सुनाई देने म जो समय लगा है, उसका आधा समय लगता है ध्वनि को यहा से तुम तक पहुँचने मे। तुम तयार हो न?

–हाँ।

–रेडी! तुम्हारा नाम पुकार रहा हूँ।

–मैंने दीवार से कान लगा लिया। जैसे ही शब्द "आक्सेल" (कहानी कहने वाले का नाम) सुनायी दिया, मैंने झट से उसे दुहरा दिया और इतजार करने लगा।

–चालिस सेकेंड,–चाचा ने कहा,–अत तुम्हारी आवाज मुझ तक 20 सेकेंड म पहुँची है। और चूँकि ध्वनि एक सेकेंड में तिहाई किलोमीटर तय करती है, हम लोग एक दूसरे से लगभग सात किलोमीटर की दूरी पर है।"

यदि इस अवतरण की बाते आप अच्छी तरह से समझ गये हैं, तो आप एक ऐसे प्रश्न को स्वय हल करने की कोशिश करें दूर खड़े इजन से सीटी देने वाले अफेद वाष्प को मैंने जिस क्षण देखा, उसके ठीक डेढ सेकेंड बाद मुझे आवाज सुनायी दी। इजन से मैं कितनी दूर था?

ध्वनि-दर्पण

जगल की दीवार, ऊँची चहारदीवारी, मकान, पर्वत आदि सभी बाधायें, जो ध्वनि को परावर्तित कर सकती हैं, उसके लिये दर्पण का काम करती हैं। वे ध्वनि को उसी प्रकार परावर्तित करती हैं, जैसे चौरस दर्पण प्रकाश को परावर्तित करता है।

16

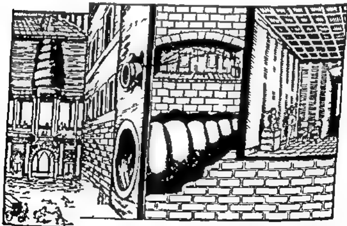


चित्र 151 ध्वनि के लिये नतोदर दर्पण।

ध्वनि-दर्पण सिर्फ समतल ही नहीं, वक्र भी होते हैं। नत ध्वनि-दर्पण रिफ्लेक्टर (परावर्तक) की तरह ध्वनि किरणों को अपनी नाभि पर एकत्रित करता है।

इससे संबंधित एक रोचक प्रयोग आप दो गहरी प्लेटों से कर सकते हैं। एक प्लेट को टेबुल पर रख लें और उसकी पेंदी से कुछ सेंटीमीटर ऊपर जेब घड़ी पकड़े रहें। दूसरी प्लेट चित्र 151 की भाँति कान के पास रखें। यदि घड़ी, कान और प्लेटों की आपसी स्थितियां सही चुनी गयी हैं (इन वस्तुओं को कई बार इधर-उधर खिसका कर सही स्थान "टटोलते" हैं), तो आपको ि टिक की आवाज उस प्लेट से आती सुनायी देगी, जिसे आप कान के पास पकड़े हैं। यदि आँखें बंद कर ली जायें, तो भ्रम और भी स्पष्ट हो ज ायेगा। इस स्थिति में कहना मुश्किल हो जायेगा कि किस हाथ में घड़ी है और किस में प्लेट।

मध्य-युगीन मिल ों के निर्माता ध्वनि के गुणों के आधार पर तरह-तरह



चित्र 152 प्राचीन किले में ध्वनि-चमत्कार—बोलती मूर्तियां (अफानासी कीरखेर, 1560 की पुस्तक से)।

के मजूबे बनाया करते थे। मत ध्वनि-दर्पण की नाभि या दीवार में छिपी ध्वनि-वाहक नली के एक सिरे पर कोई प्रतिमा रख दी जाती थी। चित्र 152 म XVI-वी शती की एक पुरानी किताब से लिया गया एक भारेख दिखाया गया है, जो ऐसी ही एक युक्ति का रहस्य बताता है। बाहर सडक पर से आवाजें दीवार में छिपी ध्वनि-वाहक नली द्वारा भीतर आती हैं और वहाँ से गुबज पर परावर्तित होने हुए प्रतीमा की होठ तक पहुँच जाती हैं। दीवारो म जगह-जगह छिपी बडी-बडी ध्वनि-वाहक नलिया बाहर की आवाजें मातर रखी प्रतिमाभ्रा के होठा तक लाती हैं। इन युक्तियो के कारण किले के भीतर स्थित लोगो को लगता है कि मूर्तिया रो रही हैं, बातें कर रही हैं, आदि।

थियेटर कक्षों में ध्वनि

जो लोग सगीत-कायक्रम, नाटक आदि देखने के लिये अक्सर थियेटरो में जाया करते हैं, वे जानते हैं कि कुछ कक्षों मे ध्वनि-सचरण अच्छा होता है और कुछ मे बुरा। किसी कक्ष मे कलाकारो की आवाज किसी भी दूरी से सुनाई देती है, तो किसी में नजदीक से भी अस्पष्ट सुनायी देती है। इन बातों का कारण अमरीकी भौतिकविद् वुड की पुस्तक "ध्वनि-तरगें और उनका उपयोग" मे बहुत अच्छी तरह समझाया गया है।

"ध्वनि-स्रोत के चुप हो जाने पर भी भवन के भीतर देर तक उसकी आवाज सुनायी देती रहती है। परावर्तनो के कारण वह भवन के भीतर ही भीतर चक्कर काटती रहती है। इस बीच यदि ध्वनि-स्रोत चुप नही रहता, अर्थात उससे और भी नयी-नयी ध्वनिया निकलती रहती हैं, तो सुनने वाले उन्हें सही क्रम मे ग्रहण नही कर पाते और इसीलिये उनकी समझ म कुछ भी नही आता। उदाहरणार्थ यदि ध्वनि तीन सेकेंडो तक भ्रमणशील रहती है और वक्ता एक सेकेंड मे तीन अक्षरो की गति से बोल रहा है, तो 9 अक्षरो वाली ध्वनि-तरगें कक्ष मे एक साथ घूमना शुरू कर देंगी और वहा इतना बेतरतीब शोर होगा कि श्रोता कुछ समझ नही सकेंगे।

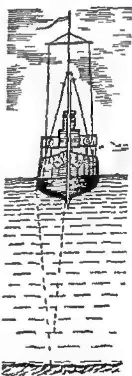
इन परिस्थितियो म वक्ता अक्सर जोर से बोलने की कोशिश करते हैं और शोर उल्टा बढ जाता है। यहा अधिक उपयुक्त होगा कि वे धीरे-धीरे, स्पष्ट व कुछ धीमे स्वर में बोलें।

अच्छे ध्वनि-सचरण वाले हौल का निर्माण अभी हाल तक सिर्फ सयोग की बात मानी जाती थी, पर आज के जमाने मे अनुनादन (रिवबरेशन) के कारण ध्वनि की अवाछनीय लबाई से सघर्ष की उत्तम विधिया ज्ञात हैं और स्पष्ट श्रवण कोई समस्या नही रह गयी है। इस पुस्तक मे इन्हें सविस्तार देखने की कोई आवश्यकता नही है, क्योंकि यह सिर्फ वास्तुइजिनियरो के काम आयेगी। इतना बता देते हैं कि बुरे ध्वनि सचरण के साथ सघर्ष करने के लिये ध्वनि शोषक सतहो का निर्माण करना पडता है। सबसे अच्छा ध्वनि शोषक खुली खिडकी है (जैसे प्रकाश शोषक का काय कोई भी छेद करता है)। खुली खिडकी का एक वग मीटर जितनी ध्वनि शोषित करती है, उसे ध्वनि शोषण की इकाई मानते हैं। थियेटर के दशक भी खुद बहुत अच्छे ध्वनि शोषक होते हैं, पर खुली खिडकी की तुलना मे सिर्फ आधी ध्वनि ही सोख पाते हैं। इसका मतलब है कि हर आदमी आधे वग मीटर खुली खिडकी की बराबरी करता है और यदि एक भौतिकविद का कहना बिल्कुल सही है कि "श्रोता वक्ता के भाषण को बिल्कुल सीधे अर्थों मे सोखते है," तो यह भी गलत नही है कि वक्ता के लिये खाली हौल बिल्कुल सीधे अर्थों मे कष्टकर है।

यदि ध्वनि शोषक बहुत अधिक है, तो इससे भी सुनने मे कठिनाई होती है। प्रथमत , अत्यधिक अवशोषण ध्वनि को क्षीण कर देता है और, दूसरे अनुनादन को इतना कम कर देता है कि स्वर का तारतम्य छिन्न हो जाता है और वह सूखा-सूखा सा लगता है। इसीलिये यदि बहुत लबा अनुनादन बुरा है, तो बहुत लघु अनुनादन भी वाछनीय नही है। अनुनादन की इष्टतम दीघता हौल के आकार पर निभर करती है, अत उसे बनाते वक्त ही इसका खयाल रखना चाहिये।

थियेटर मे भौतिकी के दृष्टिकोण से एक और रोचक चीज होती है, जिसे अनुप्रेरक कक्षिका कहते है। आपने ध्यान दिया होगा कि उसका रूप व आकार सभी थियेटरो मे एक सा होता है। इसका कारण यह है कि कक्षिका अपने आप मे एक भौतिकीय उपकरण है। उसका गुबज ध्वनि के लिये नतोदर दपण का काम करता है। इसके दो काय हैं अनुप्रेरक जब फुसफुसाता हुआ कलाकारो को उनके सभाषण की याद दिलाता है, तो उसकी आवाज को यह गुबज दशको की ओर जाने से रोकता है और उसे रगमच की ओर भेजता है।

दीर्घकाल तक आदमी को प्रतिध्वनि से कोई लाभ नहीं था, लेकिन अब उसका उपयोग सागर की गहराई नापने में होने लगा है। यह विधि संयोगवश आविष्कृत हुई थी। 1912 ई० में "टिटानिक" नामक एक समुद्री जहाज अपने सारे यात्रियों समेत डूब गया। दुर्घटना का कारण था एक विशाल हिमखंड, जिससे जहाज की टक्कर हो गयी थी। रात को या कुहासे के समय कहीं फिर ऐसी दुर्घटना न हो जाये, इसके लिये प्रतिध्वनि का उपयोग किया गया, जो रास्ते में पड़े हिमखंड का पता दे सके। प्रयत्न असफल रहा, पर इसी चक्कर में प्रतिध्वनि से समुद्र की गहराई नापने का विचार उत्पन्न हुआ।



चित्र 153 ध्वनि की सहायता से गहराई मापना।

चित्र 153 में ऐसी युक्ति का आरेख दिखाया गया है। जहाज के पार्श्व में पेंदे के पास से बारूद की गोली दागी जाती है, जिससे काफी तीक्ष्ण ध्वनि उत्पन्न होती है। ध्वनि पानी से होता हुआ सागर-तल तक पहुँचता है और उससे परावर्तित हो कर पुनः जहाज तक आता है। पेंदे में लगा एक अत्यंत संवेदनशील अभिग्राहक प्रतिध्वनि को ग्रहण करता है। ध्वनि भेजने और प्रतिध्वनि ग्रहण करने के बीच के अंतराल को उच्च कोटि की घड़ी द्वारा नापा जाता है। पानी में ध्वनि का वेग ज्ञात है, अतः कलन द्वारा ध्वनि परावर्तित करने वाली बाधा की दूरी (अर्थात् सागर-तल की गहराई) ज्ञात कर लेना कठिन नहीं है।

इस विधि को प्रतिध्वनन (एक्को साउंडिंग) का नाम दिया गया और इसने सागर की गहराई नापने की विधि में क्रांति पैदा कर दी। पुरानी विधियों का उपयोग

करने के लिये जहाज को एक ही जगह पर काफी देर तक रोक कर रखना पड़ता था। चक्के पर लपेटी रस्सी से लगर बाध कर नीचे गिराना पड़ता था (150 m प्रति मिनट की दर से)। रस्सी नीचे लटकाने व उसे पुन वापस लपेटने म काफी समय लगता था। 3 km की गहराई नापने म करीब पौन घटे लग जाते थे। प्रतिध्वनि की सहायता से गहराई चद सेकेडो मे ज्ञात हो जाती है और जहाज को रोकना भी नही पडता। परिणाम काफी सही और विश्वस्त होते हैं। मापन-त्रुटि चौथाई मीटर से अधिक की नही होती (इसी के लिये तो समय के अतराल को सेकेड के 3000-वे अश की शुद्धता से नापा जाता है)।

आधुनिक प्रतिध्वनण मे साधारण ध्वनि नही, श्रव्यातीत प्रचड पराध्वनि का उपयोग किया जाता है, जिसकी कपनावत्ति प्रति सेकेड कुछेक मिलियन तक की होती है। ऐसी ध्वनि उच्च प्रत्यावर्ती विद्युत-क्षेत्र मे रखे स्फटिकपत्र द्वारा प्राप्त की जाती है।

भनभनाहट

उडने वाले कीट-पतगे अक्सर भनभनाहट की ध्वनि क्यो उत्पन्न करते हैं? उनके पास अधिकाशत इसके लिये कोई विशेष अग भी नही होता। भनभनाहट का कारण इतना ही है कि उडते वक्त उनके पखो की फडफडाहट कुछेक सौ तक पहुँच जाती है। उनका पख इस स्थिति मे कपनरत पत्र माना जा सकता है और हम जानते हैं कि पर्याप्त आवत्ति से कपन करने वाला पत्र (अक्सर एक सेकेड मे 16 बार), एक विशेष तारता की ध्वनि देता है।

अब आप जानना चाहेंगे कि पतगो के पखो की आवत्ति कसे ज्ञात की जाती है। इसके लिये कानो से सुनना पर्याप्त है कि वह किस तारता का स्वर उत्पन्न कर रहा है। हर तारता के लिये एक निश्चित कपनावत्ति होती है। काल विशालक" (दे अध्याय 1) से पता चला है कि किसी भी पतगे के पखो की फडफडाहट की आवत्ति लगभग हमेशा समान रहती है। उडान नियत्रित करते वक्त पतगा सिर्फ फडफडाहट का "आयाम" बदलता है या पखो का झुकाव बदलता है। सेकेड मे फडफडाहट की सख्या सिर्फ

ढह के कारण बढ़ती है। इसीलिये भनभनाहट की तारता (हर उड़ने वाले कीड़े के लिये) हमेशा एक सी रहती है।

निर्धारित किया गया है कि F तारता से उड़ने वक्त घरेलू मक्खी एक सेकेंड में 352 बार पख फड़फड़ाती है। भौंरा एक सेकेंड मे 220 बार फड़फड़ाता है। A तारता देते हुए उन्मुक्त उड़ती मधुमक्खी 440 बार एक सेकेंड में पख फड़फड़ाती है। जब उसके साथ बोझ (शहद) होता है, तब वह सेकेंड में सिर्फ 330 बार पख फड़फड़ाती है। इससे B तारता की ध्वनि प्राप्त होती है। भोंगरे बहुत ही सुस्ती से उड़ते हैं। मच्छड़ के पखो मे प्रति सेकेंड 500-600 बार कपन होता है। तुलना के लिये बता दू कि हवाई जहाज का प्रोपेलर एक सेकेंड में सिर्फ 25 बार घूमता है।

श्रवण भ्रम

यदि किसी कारणवश हम यह मान बैठें कि किसी हल्के शोर का स्रोत हमसे काफी दूर है, तो उसकी आवाज हमे काफी तेज लगेगी। इस तरह के श्रवण भ्रम अक्सर अनुभूत होते रहते हैं, पर अक्सर हम उस पर ध्यान नहीं देते।

इस तरह की एक रोचक घटना का वर्णन अमरीकी वैज्ञानिक विलियम जेम्स अपने "मनोविज्ञान" मे करते हैं

"एक बार काफी रात को मैं बैठा पढ रहा था, अचानक ऊपर के तल्ले से जोरों का एक शोर सुनायी दिया। शोर तुरत बद हो गया और एक मिनट बाद फिर से शुरू हो गया। मैं बाहर हौल मे निकल आया और ध्यान से सुनने लगा, पर कुछ सुनायी नही दिया। पर जैसे ही किताब खोली, शोर फिर से शुरू हो गया। शोर काफी जोरों का और भयावना था, जैसे कोई आंधी चलने वाली हो। वह हर तरफ से आ रहा था। मैं काफी घबडा गया और फिर से हौल मे निकल आया। शोर फिर गायब हो गया।

अपने कमरे मे दूसरी बार लौटने पर मैंने अचानक देखा कि शोर फर्श पर सोये छोटे से कुत्ते की खर्राहट के कारण हो रहा है।

दिलचस्प बात तो यह है कि शोर का वास्तविक कारण जान लेने के

बाद मैं लाख कोशिश कर के भी उस पुराने भ्रम को दुबारा नहीं कर सका।"

शायद पाठकों को भी अपने जीवन की कोई ऐसी घटना याद आ... मुझे ऐसे भ्रमों का बहुत बार अनुभव हुआ है।

टिड्डा कहां है?

ध्वनि-स्रोत की दूरी तो नहीं, पर दिशा बताने में हम अक्सर ... कर जाते हैं।



चित्र 154 किधर गोली छूटी बायें या दायें?

हमारे कान सही-सही बता सकते हैं कि गोली बायें दागी गयी ... दायें (चित्र 154)। लेकिन यदि ध्वनि-स्रोत ठीक हमारे आगे या ... है, तो हम अक्सर उसकी स्थिति बताने में असमर्थ रहते हैं आगे से ... गयी गोली की आवाज अक्सर पीछे से आती प्रतीत होती है।

इस स्थिति में हम सिर्फ यह बता सकते हैं कि गोली कहीं नज... से दागी गयी है या दूर से।

एक प्रयोग है, जिससे हमें बहुत सारी जानकारी मिल जायेगी।

की आँखों पर पट्टी बाँध कर कमरे के बीच में बैठा दें और उससे कहें कि वह सिर इधर-उधर न घुमाये। हाथों में दो सिक्के लेकर आप एक से दूसरे पर चोट करें। यदि आप हमेशा उस उदग्र समतल पर हैं, जो आपके मित्र के सिर को आँखों के बीच से दो बराबर भागों में बाँटती है, तो आपका मित्र कभी नहीं बता सकेगा कि किस जगह से खनखनाहट की आवाज आयी है आवाज कमरे के एक कोने में होगी और आपका मित्र दूसरे कोने की ओर दिखायेगा।

यदि आप सममिति के इस समतल से इधर-उधर हो जायेंगे, तब इतनी बड़ी गलतियाँ वह नहीं करेगा। कारण स्पष्ट है अब ध्वनि आपके मित्र के निकटतम कान तक कुछ पहले और अधिक जोर से पहुँचेगा।



चित्र 155 किस स्थान पर गोली दागी गयी?

इस प्रयोग से समझ में आ जाता है कि घास में छिप कर चरचराते टिड्डे को देख पाना इतना कठिन क्यों है। उसका तीखा स्वर आप से पथ के दायें दो कदम की दूरी पर सुनायी देता है। आप उधर मुड़ते हैं, पर कुछ दिखता नहीं है, आवाज बायें से आ रही है। आप उधर मुड़ते हैं, पर आवाज किसी तीसरी जगह से आती प्रतीत होती है। जितना ही आप अपना सर इधर-उधर चरचराहट की दिशा में घुमायेंगे, यह अदृश्य "संगीतकार" उतनी ही तेजी से छलांगें लगायेगा। पर वास्तविकता यह है कि टिड्डा एक ही स्थान पर बैठा रहता है। उसकी छलांगें आपकी कल्पना शक्ति या श्रवण भ्रम के परिणाम हैं। आपकी गलती यह है कि आप सिर इस तरह घुमाते हैं कि टिड्डा आपके सिर के सममिति-समतल पर आ जाता है और हम जानते हैं कि इस स्थिति में ध्वनि के आने की दिशा बताने में गलती की अधिक संभावना है टिड्डे की चरचराहट आगे से आती है और आप उसे पीछे से आती हुई मान लेते हैं।

यहाँ से एक व्यावहारिक निष्कर्ष निकाला जा सकता है यदि आप

निर्धारित करना चाहते हैं कि टिड्डे की चरचराहट या कोयल की कू-कू जैसी दूर की आवाजें कहाँ से आ रही हैं, तो आप को सिर ठीक आवाज की ओर नहीं घुमानी चाहिये। वैसे, हम करते भी यही हैं, जब हम "सतर्क" या "सजग" हो उठते हैं।

आवाज की शरारतें

जब हम सूखी डबल रोटी चबाते हैं, तो हम काफी जोर का शोर सुनायी देता है। पास बैठा व्यक्ति भी वही चीज खा रहा होता है, पर उससे कोई खास शोर नहीं सुनायी देता। ऐसा क्यों होता है?

बात यह है कि यह शोर सिर्फ हमारे कानों में होता है और पड़ोस में बैठे व्यक्तियों को परेशान नहीं करता। खोपड़ी की हड्डी या कोई भी ठोस सुनम्य पिंड ध्वनि का बहुत अच्छा चालक होता है और ऐसे घने माध्यम में ध्वनि अत्यधिक तेज लगती है। हवा के माध्यम से कान तक पहुँचने वाली ध्वनि हल्के शोर सी प्रतीत होती है, पर वही ध्वनि जब खोपड़ी के ठोस रेशों से होकर हमारी श्रवण-संवेदनाओं की वाहक शिराओं तक पहुँचती है, तो वह तेज शोर में परिणत हो जाती है। इसी बात को सिद्ध करने वाला एक प्रयोग करें जेबी घड़ी को लटकाने वाले छल्ले को दाँतों से पकड़ लें, आपको टिक टिक की आवाज हथौड़े की चोट सी प्रतीत होगी।

"उदर-वाणी का चमत्कार"

उदर वक्ताओं द्वारा दिखाये जाने वाले "चमत्कारों" का रहस्य उन्हीं बातों से खुलता है जो पृ 241 244 पर बतायी गयी हैं।

"यदि कोई व्यक्ति —श्री हैंपसन लिखते हैं —छप्पर की कलगी पर घूम रहा है, तो उसका स्वर घर के भीतर फुसफुसाहट के रूप में सुनायी देगा। जैसे-जैसे वह किनारी की ओर बढ़ेगा उसकी आवाज और क्षीण होती जायेगी। यदि हम घर के किसी कमरे में बैठे हैं, तो हमारे कान उस व्यक्ति की दूरी और उससे आने वाली ध्वनि की दिशा के बारे में कुछ भी नहीं बता सकते। लेकिन स्वर में बदलाव के आधार पर हमारी बुद्धि यह निष्कर्ष निकाल सकती है कि बोलने वाला व्यक्ति हमसे दूर होता जा

रहा है। यदि स्वर खुद सूचित कर दे कि उसे बोलने वाला व्यक्ति छप्पर पर घूम रहा है, तो हम आसानी से विश्वास कर लगे। और यदि कोई उस व्यक्ति के साथ बातें करने लग जाये, जो मानों की बाहर खड़ा है, और उस का उत्तर भी प्राप्त करे, तो भ्रम और भी प्रभावशाली हो जाता है।

ये ही वे परिस्थितियां हैं, जिनमें उदर-वक्ता काम करता है। जब छप्पर पर खड़े आदमी के बोलने की बारी आती है, उदर-वक्ता फुसफुसाना शुरू कर देता है, जब उसकी खुद की बारी आती है, वह अपने स्पष्ट व पूरे स्वर में बोलने लगता है, ताकि दोनों आवाजों में अन्तर किया जाये। उसकी बातों का सार किसी अतिरिक्त साथी की उपस्थिति का भ्रम और भी बढ़ा देता है। यदि इसमें कोई पकड़ी जाने वाली बात है, तो यह कि मिथ्या साथी की आवाज छप्पर से नहीं, रंगमंच से आती सुनायी दे सकती है।"

यहां यह बता देना आवश्यक है कि उदर-वाणी शब्द यहां ठीक नहीं बैठता। उदर-वक्ता को यह तथ्य छिपाना पड़ता है कि जब उसके मिथ्या साथी के बोलने की बारी आती है, तो वह स्वयं बोलता है। इसके लिये उसे नाना तिकड़म रचने पड़ते हैं। विभिन्न भाव-भंगिमाओं से वह दर्शक का ध्यान अपनी ओर से हटाने की कोशिश करता है। एक तरफ झुक कर और हाथ कान के पास रख कर सुनने का बहाना करते हुए वह अपने होंठ छिपाने की कोशिश करता है। जब वह अपनी शक्ल नहीं छिपा सकता, तो होंठों की गति-विधि न्यूनतम कर देता है। इसमें उसे इस बात से सहायता मिलती है कि उसे अपने "साथी" की ओर से फुसफुसाहट में बोलना पड़ता है। होंठों की गति इतनी अच्छी तरह से छिपायी जाती है कि कुछ लोग सोचते हैं कि कलाकार के शरीर की गहराइयों में से आवाज आ रही है। इसीलिये उसका नाम उदरवक्ता पड़ा।

इस प्रकार उदरवाणी का मिथ्या चमत्कार पूर्णतः इस बात पर आधारित है कि हम ध्वनि के आने की दिशा और उसका स्रोत सही-सही नहीं बता सकते। साधारण परिस्थितियों में हम सिर्फ खींच-तीर कर काम चला लेते हैं। लेकिन यदि परिस्थिति साधारण न हो, तो हम ध्वनि-स्रोत के निर्धारण में बड़ी-बड़ी गलतियां कर बैठते हैं। उदरवक्ता को रंगमंच पर देखते समय मैं भी इस भ्रम को दूर नहीं कर पाया, यद्यपि मुझे मालूम है कि बात क्या है।

पाठकों से

"मीर" प्रकाशन इस पुस्तक के अनुवाद और डिजाइन संबंधी आप के विचारों के लिये आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये

"मीर" प्रकाशन
पेर्वी रीज्स्की पेरेऊलोक, 2
मास्को, सोवियत संघ

नवीन प्रकाशन

भौतिकीय परिभाषाओं, सूत्रों तथा
अन्य सूचनाओं की शीघ्र जानकारी
के लिये
'मीर' प्रकाशन-गृह
की नवीन छात्रोपयोगी पुस्तक

नि. इ. कोशकिन, मि. ग्रि. शिरकेविच

सरल भौतिकी निर्देशिका

पुस्तक से विद्यालय की उच्च
कक्षाओं के विद्यार्थी ही नहीं, तकनीकी
संस्थानों के छात्र और भौतिकी से
संबद्ध अन्य पेशे के लोग भी
लाभान्वित होंगे।

नवीन प्रकाशन

गणितीय सिद्धांतो, सूत्रो व
विधियो की शीघ्र जानकारी के लिये
'मौर' प्रकाशन-गृह
की नवीन छात्रोपयोगी पुस्तक

मा या विगवृस्की

सरस गणित निर्देशिका

विद्यालय की उच्च कक्षाओ के
विद्यार्थी इसका पाठ्य-पुस्तक
की भांति भी उपयोग कर सकते हैं।